काशी हिंदू विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध—

हिन्दी क्रिया : स्वरूप और विश्लेषण

लेखक

डॉ० बालमुकुन्द

एम० ए० पी-एच० डी०

सीनियर फेलो, हिंदी विभाग

काशी हिंदू विश्वविद्यालय

प्रकाशक

आनन्द पुस्तक भवन, वाराणसी

दानों का भी आदान प्रदान हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप सभी भाषाओं की सरचना इतनी समीकृत रूप में साधर्म्य रखती है।

यह अवश्य है कि ऐसे अध्ययन भावना प्रधान न हों, तभी उनका मूल्य होगा और उनका स्वस्थ बौद्धिक प्रभाव भी पड़ेगा।

प्रस्तुत अध्ययन इस दृष्टि से बहुत ही मूल्यवान है, इसमें सामग्री के सकलन, प्रस्तुतीकरण और विश्लेषण में प्रखर बौद्धिकता से काम लिया गया है।

अन्त म 'अयमारम्भ शुभाय भवतु' कहकर अपनी बात समाप्त करता हूँ।

वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय
१।३।७०

विद्यानिवास मिश्र

प्रस्तावना

हिन्दी क्रिया के सम्बन्ध म प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक और समकालिक दोनों स्तरों पर किया गया है। तथ्य सकलन की दृष्टि से यह अ ययन बहुत ही सर्वांगीण है। विश्लेषण में कुछ विस्तार से जरूर काम लिया गया है, पर विश्लेषण कल्पनाश्रित न होकर तथ्य विवेचनात्मक होने के कारण वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

यह अत्यन्त सन्तोष का विषय है कि हि दी भाषा के माध्यम से हिन्दी भाषा के स्वरूप का इतना स्पष्ट और विशद विवेचन प्रस्तुत होना प्रारम्भ हो रहा है। पुरानी लातिनी पद्धति पर हि दी के व्याकरण रचने का युग समाप्ति पर आ रहा है, अब अर्थ के साथ सामजस्य रखते हुए रूप के वैविध्य का वितरण मूलक विश्लेषण भाषा की सरचना को अधिक सुस्पष्ट और पारदर्शी रूप में प्रस्तुत करने म समथ हो रहा है।

लेखक से मैं भविष्य म और अधिक प्रौढ़ और गहरे अध्ययन से हिन्दी म भाषा शास्त्र के वाङ्मय को उपकृत करने की अपेक्षा रखता हूँ। वस्तुत हिन्दी की सरचना जितने सघातों, आघातों प्रतिघातों और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की परिणति है, उनका सही-सही परिमापन अभी शताश म भी नहीं हो पाया है, इसीलिए हि दी भाषा की सूक्ष्म अभि यजन क्षमता के बारे में भी सही पहचान सामान्य हिन्दी भाषी को नहीं है। जो लोग सस्कृत का पूरा ढाँचा हि दी पर आरोपित करना चाहते हैं, वे हि दी के इतिहास को भूल जाते हैं। आज स्थिति यह है कि हि दी सरचना की दृष्टि से सस्कृत की अपेक्षा तमिल के अधिक समीप है। इसलिए मेरा ऐसा विश्वास है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं की सरचनाओं का अलग अलग और तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत होने पर चार भाषा परिवारों की बात केवल इतिहास का तथ्य बनकर सीमित रह जायगी और कुछ आधुनिक मनीषियों की यह धारणा उसकी अपेक्षा अधिक वास्तविक लगेगी कि भारत सरचना की दृष्टि से एक भाषा-क्षेत्र है, जिसके अन्तगत समान प्रकार की सरचना वाली अनेक परिवारों की भाषायें बोली जाती हैं। इन भाषाओं म परस्पर केवल श दराशि का ही नहीं, सरचना के विभिन उपा-

Hindi Kriya Swaroop Aur Vishleshan

Dr BALMUKUND

प्रथम सस्करण, १९७०

मूल्य वास रपय

प्रकाशक
डॉ॰ सम्पूर्णानन्द
एम॰ए॰ पी-एच॰डी॰
प्रानन्द पुस्तक भवन
ईश्वरगगी, वाराणसी

मुद्रक
दयानन्द 'सतीश'
सीमा प्रेस
ईश्वरगगी वाराणसी

प्रस्तावना

हिन्दी क्रिया के सम्बन्ध में प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक और समकालिक दोनों स्तरों पर किया गया है। तथ्य सकलन की दृष्टि से यह अध्ययन बहुत ही सर्वांगीण है। विश्लेषण में कुछ विस्तार से जरूर काम लिया गया है, पर विश्लेषण कल्पनाश्रित न होकर तथ्य विवेचनात्मक होने के कारण वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

यह अत्यन्त सन्तोष का विषय है कि हिन्दी भाषा के माध्यम से हिन्दी भाषा के स्वरूप का इतना स्पष्ट और विशद विवेचन प्रस्तुत होना प्रारम्भ हो रहा है। पुरानी लातिनी पद्धति पर हिन्दी के व्याकरण रचने का युग समाप्ति पर आ रहा है, अब अर्थ के साथ सामजस्य रखते हुए रूप के वैविध्य का वितरण मूलक विश्लेषण भाषा की सरचना को अधिक सुस्पष्ट और पारदर्शी रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ हो रहा है।

लेखक से मैं भविष्य म और अधिक प्रौढ़ और गहरे अध्ययन से हिन्दी म भाषा शास्त्र के वाङ्मय को उपकृत करने की अपेक्षा रखता हूँ। वस्तुत हिन्दी की सरचना जितने सघातों, आघातों प्रतिघातों और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की परिणति है, उनका सही-सही परिमापन अभी शताश म भी नहीं हो पाया है, इसीलिए हिन्दी भाषा की सूक्ष्म अभिव्यजन क्षमता के बारे म भी सही पहचान सामान्य हिन्दी भाषी को नहीं है। जो लोग सस्कृत का पूरा ढाँचा हिन्दी पर आरोपित करना चाहते हैं, वे हिन्दी के इतिहास को भूल जाते हैं। आज स्थिति यह है कि हिन्दी सरचना की दृष्टि से सस्कृत की अपेक्षा तमिल के अधिक समीप है। इसलिए मेरा ऐसा विश्वास है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं की सरचनाओं का अलग अलग और तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत होने पर चार भाषा परिवारों की बात केवल इतिहास का तथ्य बनकर सीमित रह जायगी और कुछ आधुनिक मनीषियों की यह धारणा उसकी अपेक्षा अधिक वास्तविक लगेगी कि भारत सरचना की दृष्टि से एक भाषा-क्षेत्र है, जिसके अन्तगत समान प्रकार की सरचना वाली अनेक परिवारों की भाषायें बोली जाती हैं। इन भाषाओं में परस्पर केवल शब्दराशि का ही नहीं, सरचना के विभिन्न उपा-

दानों का भी आदान प्रदान हुआ है, जिससे परिणामस्वरूप सभी भाषाओं की संरचना इतनी समीकृत रूप में साधम्य रखती है।

यह अवश्य है कि ऐसे अध्ययन भावना प्रधान न हों, तभी उनका मूल्य होगा और उनका स्वस्थ बौद्धिक प्रभाव भी पड़ेगा।

प्रस्तुत अध्ययन इस दृष्टि से बहुत ही मूल्यवान है, इसमें सामग्री के संकलन, प्रस्तुतीकरण और विश्लेषण में प्रखर बौद्धिकता से काम लिया गया है।

अन्त में 'अयमारम्भ शुभाय भवतु' कहकर अपनी बात समाप्त करता हूँ।

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय
१।३।७०

विद्यानिवास मिश्र

दृष्टिकोण

किसी भाषाविशेष के व्याकरण या संघटना का अध्ययन अपने आप में न केवल महत्त्व का विषय है, बल्कि इसलिए मनोरंजन का विषय भी है कि भाषातत्त्वों के ह्रास और विकास का विचित्र परिस्थितियों का परिचय अनुसंधित्सु को प्रतिपद पर मिलता चलता है। शुद्ध विवरणात्मक दृष्टि से भाषा की पदरचनात्मक संघटना का अध्ययन करने वाले व्यक्ति के समक्ष इतने मनोरंजक पहलू नहीं आते जितने उस शोधकर्ता के सामने जो तुलनात्मक ऐतिहासिक दृष्टि से किसी भाषा विशेष की संघटना का अध्ययन करता है। उसके सामने भाषा का पूरा इतिहास, पूरी संस्कृति भाषा-सरिता के मूलस्रोत से लेकर आजतक बहती जीवन की निरर्गल अजस्र धारा की कहानी उपस्थित करती है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक-तुलनात्मक अध्ययन को लेकर चलने वाला भाषावैज्ञानिक केवल एक कालावस्थित भाषा का यांत्रिक अध्ययन नहीं करता, बल्कि उस साहित्य के परिप्रेक्ष्य में उसे अपनी गवेषणा का विषय बनाता है, जो भाषा विशेष के प्रयोक्ता समाज के अतीत की गाथा को भी कहता चलता है।

यह अवश्य है कि किसी भाषा के शब्दकोश और अर्थ विकास का अध्ययन उसकी संस्कृति को अधिक स्पष्ट रूप में उपस्थित करता है, उसकी ध्वनि संघटना और पद संघटना इस पक्ष को उतना उजागर नहीं कर पाती, फिर भी ध्वनि और पद-संघटना पर किन विजातीय तत्त्वों का प्रभाव पड़ा है, उसके आज के रूपायन में किन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव है, इसकी थोड़ी झलक इस अध्ययन से अवश्य मिल जाती है। उदाहरण के लिए प्राकृत युग से पहले ही परवर्ती वैदिक भाषा म तिङन्तज क्रियाओं के साथ साथ कृदन्तज और संयुक्त क्रियाओं का बीजारोपण और प्राकृत काल में उसका और अधिक विकास किन कारणों से हुआ, इसे भारतीय आर्य भाषा पर आर्यतर द्रविड़ भाषा प्रकृति का प्रभाव कहा जा सकता है। यहाँ क्रियापद संस्कृत के तिङन्तज रूपों की तरह शुद्ध क्रियापद नहीं बल्कि विशेषणवत् भी प्रयुक्त होते हैं, औ इस प्रभाव ने प्राकृत पर इतना अधिक असर डाला कि भूतकाल के लिए प्रयुक्त होने वाले प्रा० भा०

दानों का भी आदान प्रदान हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप सभी भाषाओं की सरचना इतनी समीकृत रूप में साधम्य रखती है।

यह अवश्य है कि ऐसे अध्ययन भावना प्रधान न हों, तभी उनका मूल्य होगा और उनका स्वस्थ बौद्धिक प्रभाव भी पड़ेगा।

प्रस्तुत अध्ययन इस दृष्टि से बहुत ही मूल्यवान है, इसमें सामग्री के सकलन, प्रस्तुतीकरण और विश्लेषण में प्रखर बौद्धिकता से काम लिया गया है।

अन्त में 'अयमारम्भ शुभाय भवतु' कहकर अपनी बात समाप्त करता हूँ।

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय
१।३।७०

विद्यानिवास मिश्र

किसी भाषाविशेष के व्याकरण या शब्दों का अध्ययन अपने आप में न केवल महत्त्व का विषय है, बल्कि इसलिए मनोरंजन का विषय भी है कि भाषातत्त्वों के ह्रास और विकास की विचित्र परिस्थितियों का परिचय अनुसंधित्सु को प्रतिपद पर मिलता चलता है। शुद्ध विवरणात्मक दृष्टि से भाषा की पदरचनात्मक संघटना का अध्ययन करने वाले व्यक्ति के समक्ष इतने मनोरंजक पहलू नहीं आते जितने उस शोधकर्ता के सामने जो तुलनात्मक ऐतिहासिक दृष्टि से किसी भाषा विशेष की संघटना का अध्ययन करता है। उसके सामने भाषा का पूरा इतिहास, पूरी संस्कृति भाषा-सरिता के मूलस्रोत से लेकर आजतक बहती जीवन की निरर्गल अजस्र धारा की कहानी उपस्थित करती है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक-तुलनात्मक अध्ययन को लेकर चलने वाला भाषावैज्ञानिक केवल एक कालावस्थित भाषा का यांत्रिक अध्ययन नहीं करता, बल्कि उस साहित्य के परिप्रेक्ष्य में उसे अपनी गवेषणा का विषय बनाता है, जो भाषा विशेष के प्रयोक्ता समाज के अतीत की गाथा को भी कहता चलता है।

यह अवश्य है कि किसी भाषा के शब्दकोश और अर्थ विकास का अध्ययन उसकी संस्कृति को अधिक स्पष्ट रूप में उपस्थित करता है, उसकी ध्वनि संघटना और पद संघटना इस पक्ष को उतना उजागर नहीं कर पाती, फिर भी ध्वनि और पद-संघटना पर किन विजातीय तत्त्वों का प्रभाव पड़ा है, उसके आज के रूपायन में किन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव है, इसकी थोड़ी झलक इस अध्ययन से अवश्य मिल जाती है। उदाहरण के लिए प्राकृत युग से पहले ही परवर्ती वैदिक भाषा में तिङन्तज क्रियाओं के साथ साथ कृदन्तज और संयुक्त क्रियाओं का बीजारोपण और प्राकृत काल में उसका और अधिक विकास किन कारणों से हुआ, इसे भारतीय आर्य भाषा पर आर्येतर द्रविड़ भाषा प्रकृति का प्रभाव कहा जा सकता है। यहाँ क्रियापद संस्कृत के तिङन्तज रूपों की तरह शुद्ध क्रियापद नहीं बल्कि विशेषणवत् भी प्रयुक्त होते हैं, और इस प्रभाव ने प्राकृत पर इतना अधिक असर डाला कि भूतकाल के लिए प्रयुक्त होने वाले प्रा० भा०

आ० (संस्कृत) के तीन लकारों में से एक भी बाकी नहीं बचा और उसका स्थान समापिका क्रिया के लिए भी निष्ठा प्रत्यय जनित रूपों ने ले लिया। यह एक छोटा सा निदर्शन है कि किस तरह एक भाषा-संस्कृति दूसरी भाषा संस्कृति के संपर्क में आकर भाषा के आन्तरिक ढाँचे में भी कुछ न कुछ प्रभावित अवश्य होती है, यद्यपि यह प्रभाव उसके बाहरी ढाँचे पर अधिक पड़ता है।

कहा जाता है कि भाषा जटिलता से सरलता की ओर बढ़ती है। वह अपने मूल उद्गम के पार्वत्य प्रदेश को छोड़कर, जहाँ उसकी गति ऊबड़ खाबड़ शिला खण्डों के बीच टेढ़े मेढ़े रास्ते से होकर गुजरी है, समतल भूमि आने पर सरल और ऋजुगति का आश्रय लेती है। भाषा भाषी समाज (किसी विशेष भाषा का प्रयोक्ता समाज) जब यह महसूस करने लगता कि उसकी भाषा में कतिपय पद या शब्द या पदरचनात्मक तत्त्व निरर्थक से हैं, तो धीरे धीरे उनका प्रयोग कम होने लगता है और एक स्थिति वह आती है, जहाँ अप्रयोग के कारण वे तत्त्व स्वयं उसी तरह लुप्त हो जाते हैं, जैसे प्राणिशास्त्र के एक सिद्धान्त के अनुसार सरीसृप वर्ग के प्राणियों के पैर अप्रयोग के कारण लुप्त हो गये। लेकिन किन्हीं परिस्थितियों में यह भी देखा जाता है कि जहाँ पुराने भाषा तत्त्व अप्रयोग के कारण लुप्त होते हैं, वहाँ प्रयोग की माँग पर नये भाषा तत्त्व उदित होते दिखाई देते हैं, भले ही संस्कृत के तीन तरह के भूतकालिक तिङन्तज रूप, दो तरह के भविष्यत्कालिक तिङन्तज रूप और कुछ और अप्रसिद्ध लकार प्राकृत से हो धीरे धीरे छूटने में आने लगे, पर हिंदी जैसी नव्य भारतीय आर्य भाषा में विविध सहायक क्रियाओं के समायोजन के माध्यम से प्रयोग की दृष्टि से अपनी क्रिया सम्बन्धी पद संघटना में कुछ नये विकास कर डाले हैं, जिसने हिंदी क्रियाओं की विधियों (Moods) का ढाँचा उन विधियों से भिन्न बना दिया है, जो संस्कृत में थीं। इसी तरह हिंदी ने अपने ढंग से नाम धातुओं और संयुक्त क्रियाओं का एक विकास किया जो वस्तुतः सभी नव्य भारतीय आर्यभाषाओं की अपनी भी पहचान है।

हिंदी पदरचना के हर-तत्त्व नामिक रूप, सार्वनामिक रूप, क्रियापद, अव्यय आदि के विकास का अध्ययन इस लिहाज से भाषा विज्ञान की कई समस्याओं को हमारे सामने रखता है, और इस अध्ययन के आलोक में कई नई दिशायें प्रकाशित होती दिखाई देती हैं। डॉ० बालमुकुन्द ने

अपने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'हिंदी क्रिया स्वरूप और विश्लेषण' में हिंदी क्रिया रूपों के विकास की इस जटिल प्रक्रिया का अनुसंधान बड़े आश्वस्त भाव से किया है। हिन्दी क्रिया रूपों की प्रकृति का विवरणात्मक अध्ययन तो इसमें मिलेगा ही, (यद्यपि यह अध्ययन अमरीकी पद्धति के शुद्ध यांत्रिक ढंग पर नहीं है,) इसका विशेष श्लाघ्य अंश वह है, जहाँ वैदिक संस्कृत से लेकर हिंदी तक के क्रियापदों की बदलती रूपाकृतियाँ हमारे सामने उभरती नजर आती हैं। इस गवेषणा में विद्वान् लेखक ने संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरण के सम्बन्ध में भी अपने गंभीर अध्ययन का परिचय दिया है।

भाषा तत्त्व तब तक मृतकल्प हैं, जबतक कि वे वाक्य में प्रयुक्त होकर व्यवहार योग्य नहीं बनते। यह व्यवहार योग्यता सदा वक्तृ श्रोतृ सापेक्ष अर्थात् प्रयोग सापेक्ष है। क्रियापदों की विविध रूपाकृतियों का परस्पर भेद न केवल आकार का है, बल्कि प्रकार का भी है, और इस प्रकार के भेद का महत्त्व वे शोधकर्ता नजरंदाज कर जाते हैं, जो केवल यांत्रिक पद्धति का आश्रय लेते हैं। इस प्रबन्ध में डॉ॰ बालमुकुन्द ने भाषा तत्त्वों की इस प्रयोग सापेक्षता को भुलाया नहीं है, और पुरानी हिंदी से लेकर आधुनिक हिंदी (खड़ीबोली हिंदी गद्य) तक के भाषा प्रयोगों से उपयुक्त उदाहरण देते हुये क्रियापदों की आकृति और प्रकृति दोनों को प्रकाशित किया है। हिंदी भाषा के ऐतिहासिक अध्ययन में प्रस्तुत प्रबंध निस्सदेह एक और महत्त्वपूर्ण कड़ी जोड़ता है और इस उत्तम प्रयास के लिये लेखक बधाई के पात्र हैं। मुझे पूरी आशा है कि उनके इस ग्रंथ का हिंदी भाषाविज्ञान और व्याकरण के अध्येता समुचित स्वागत करेंगे और लेखक भी इस क्षेत्र में यहीं विरत न होकर कुछ और महत्त्वपूर्ण कार्य करेंगे।

भोलाशंकर व्यास

हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
२६ फरवरी, १९७०

पुरोवाक्

यह बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि भाषावैज्ञानिक अध्ययन की ओर विद्वानों और अनुसंधित्सुओं का ध्यान निरंतर बढ़ता जा रहा है। संसार के अन्य महान् देशों की भाँति भारतीय विद्वान् भी इस क्षेत्र में अपना हाथ बँटा रहे हैं। किसी भी विषय का अध्ययन ऐतिहासिक, तुलनात्मक अथवा वर्णनात्मक ढंग से किया जा सकता है। ऐतिहासिक पहलू के आधार पर किया गया अध्ययन विषय की महत्ता को तो अवश्य बढ़ा देता है, परंतु सम्यक् जानकारी प्रदान करने में प्राय असमर्थ ही रहता है। इसी प्रकार से केवल तुलनात्मक अथवा वर्णनात्मक दृष्टि से किया गया अध्ययन भी विषय की सीमा को संकुचित कर देता है, जिससे अनेक जानने के योग्य बातें उपेक्षित हो जाती हैं। अनेक भाषावैज्ञानिकों ने प्राय अध्ययन के एक पहलू को अपनाया है। इस प्रकार या तो विषय शुद्ध सैद्धांतिक हो गया है अथवा पूरा ऐतिहासिक। मेरे विचार से किसी भी विषय का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता, जब तक कि उक्त तीनों दृष्टियों को लक्ष्य बनाकर उसका सम्यक् विवेचन प्रस्तुत नहीं किया जाता।

'हिंदी क्रिया स्वरूप और विश्लेषण' शोध प्रबंध में मैंने सैद्धांतिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और वर्णनात्मक सभी दृष्टियों से क्रिया के सम्बन्ध में विचार किया है। इससे न केवल क्रिया की व्युत्पत्ति और विकास का दिग्दर्शन हुआ है, अपितु उसके प्रयोग के सम्बन्ध में भी दार्शनिक तथा भाषावैज्ञानिक दृष्टि से यथोचित विचार किया गया है। क्रियाओं के अध्ययन के सम्बन्ध में मेरा यह प्रथम प्रयास हो, यह तो नहीं कहा जा सकता परंतु इतनी बात जरूर है कि इस विषय को आधार लेकर जो अध्ययन हुए हैं, वे प्रायः एकपक्षीय हैं। विषय का चयन करते समय मैंने अनेक विद्वानों से परामर्श लिया और इस निर्णय पर पहुँचा कि क्रिया के सम्बन्ध में ऐसा विचार होना चाहिए, जिससे उसकी पूरी पूरी जानकारी हो सके। प्रस्तुत शोध प्रबंध में मैंने संस्कृत से लेकर खड़ीबोली तक में प्राप्त क्रियारूपों का पृथक्-पृथक् तथा तुलनात्मक अध्ययन किया है। 'भूमिका' नामक प्रथम परिच्छेद

में क्रिया के सम्बन्ध में सैद्धांतिक दृष्टि से विचार किया गया है। साथ ही संस्कृत व्याकरण के अनेक विद्वानों के मतों का उल्लेख कर क्रिया की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। इस परिच्छेद में क्रिया के सम्बन्ध म भारतीय तथा कतिपय पाश्चात्य दार्शनिकों के मतों का उल्लेख किया गया है, जो क्रिया के अध्ययन में काफी महत्त्व रखते हैं।

किसी भी विषय के सम्बन्ध म सम्यक् ज्ञान रखने के लिये यह अपेक्षित होगा कि हम उसके मूलरूप का ज्ञान रखें। जबतक विषय की मूल पृष्ठभूमि ज्ञात नहीं है, तबतक उसका यथोचित ज्ञान नहीं हो सकता। हिंदी के अधिकांश क्रिया रूप प्राचीन भारतीय आर्यभाषा 7 मध्यभारतीय आर्य भाषा 7 नव्य भारतीय आर्यभाषा के क्रम से आये हैं। अत इस शोध प्रबन्ध में लेखक ने विकासक्रम का ध्यान रखकर ही अध्ययन किया है। द्वितीय परिच्छेद म प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के क्रिया रूपों का विवेचन किया गया है, जो हिन्दी क्रियाओं के मूल रूप का ज्ञान कराने में सहायक हैं। साथ ही संस्कृत के दोनों रूपों—वैदिक और लौकिक रूपों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। मध्य भारतीय आर्यभाषा म यद्यपि अनेक नये रूपों का उद्भव हुआ, फिर भी संस्कृत के रूपों का स्पष्ट प्रभाव उन पर विद्यमान है। तृतीय परिच्छेद में प्राकृत, पालि, अपभ्रंश के क्रिया रूपों का प्रकृति, व्युत्पत्ति और प्रयोग के सम्बन्ध म विचार किया गया है। चतुर्थ परिच्छेद 'पुरानी हिन्दी के क्रिया रूपों का अध्ययन' प्रस्तुत करता है। इस काल में परिनिष्ठित हिन्दी के क्रिया-रूपों के स्पष्ट बीज दिखलाई देने लगते हैं। जहाँ एक ओर ये मध्य भारतीय आर्यभाषा के रूपों को न छोड़ सके हैं, वहीं दूसरी ओर नव्य भारतीय आर्यभाषा के कगार पर खड़े होकर उसम प्राप्त क्रिया रूपों का प्रतिनिधित्व करते पाये जाते हैं। पंचम परिच्छेद म मध्ययुगीन हिन्दी का कृतियों म प्राप्त क्रिया रूपों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है, साथ ही उनकी व्युत्पत्ति और विकास पर भी यथोचित दृष्टि डाली गई है। षष्ठ परिच्छेद आधुनिक हिन्दी (खड़ी बोली) के क्रिया रूपों का रचनागत अध्ययन प्रस्तुत करता है। साथ ही इस परिच्छेद में तुलनात्मक दृष्टि से आधुनिक ब्रज, अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, गुजराती आदि बोलियों में प्राप्त क्रिया रूपों की भी चर्चा की गई है। सप्तम परिच्छेद में क्रिया रूपों का प्रायोगिक अध्ययन किया गया है, जिसमें इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि क्रियायें काल-बोध के

अतिरिक्त अन्य जिन शब्दों का पालन कराती है। इस प्रकार सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध में हिन्दी क्रियाओं का ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं सैद्धान्तिक मूल्यांकन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लेखन की प्रेरणा आरम्भ में पूज्य गुरुवर डॉ० भोलाशंकर व्यास रीडर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, से मिली है। उनके निर्देशन में कार्य करते हुये मेरी अभिलाषा की पूर्ति सम्भव हुआ है। प्रबन्ध के लेखन काल में अनेक गुत्थियाँ सामने आईं, जिनका उचित समाधान उन्हीं के द्वारा सम्भव हो सका। विषय को हर प्रकार से परिपुष्ट बनाने के लिये, क्रमबद्ध अध्ययन का सूत्र उन्होंने ही बताया। इस प्रकार प्रबन्ध की सम्पन्नता का समस्त श्रेय डॉ० व्यास को है। साथ ही उनकी अनेक कृतियाँ भी विषय के अध्ययन में सहायक रहीं। ऐसे विद्वान् एवं भाषा मर्मज्ञ के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कोरी वाग्मिता होगी। उनके आभार को तो मेरी वाणी नहीं, हृदय स्वीकार करता है।

प्रबन्ध लेखन में भाषा तत्त्वज्ञ डॉ० करुणापति त्रिपाठी से काफी सहायता मिली है। अनुपलब्ध पुस्तकें प्रदान कर उन्होंने श्रम और समय दोनों की बचत की है। साथ ही प्रबन्ध में सम्पादित उनके कार्यों से भी मुझे पर्याप्त लाभ हुआ है। मैं ऐसे विद्वान् के समक्ष विनयावनत हूँ। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी भाषाविज्ञान के प्रवक्ता डॉ० एस० के० रोहरा से भी प्रबन्ध के सुधार के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निर्देश मिले हैं मैं उनका आभारी हूँ। आदरणीय भाई आशुतोष उपाध्याय, प्रवक्ता पुराणेतिहास विभाग, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रबन्ध लेखन के बीच समय समय पर प्रोत्साहन मिलता रहा है। सामग्री संकलन में उन्होंने मेरी पर्याप्त सहायता की है, मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

श्रद्धेय गुरुवर डॉ० विद्यानिवास मिश्र ने अतिव्यस्त रहते हुये भी समय की कटौती कर, प्रस्तुत प्रबन्ध को आद्यन्त पढ़ने के पश्चात् जो सुझाव मुझे दिये हैं, उससे मुझे भाषावैज्ञानिक अध्ययन के लिये आवश्यक अनेक तत्त्वों की जानकारी प्राप्त हुई है। भविष्य में मैं उन उपयोगी तत्त्वों को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा। प्रबन्ध की प्रस्तावना

के रूप म लिखे गये उनके एक एक शब्द मेरे लिये विशेष महत्त्व रखते हैं। मैं ऐसे भाषा मर्मज्ञ विद्वान् के समक्ष श्रद्धावनत हूँ।

प्रस्तुत प्रबंध को मैंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय की पी एच० डी० उपाधिक लिये सन् १९६७ इ० म प्रस्तुत किया था। प्रबंध के स्वीकृत हो जाने पर मैंने सोचा था कि इसको परिष्कृत रूप म प्रकाशित करवाऊँ। पर परिस्थितिवश सोचना मात्र सोचना ही रह गया और समय की गति को देखते हुये इसे प्रकाशित करवाना पड़ा। भविष्य में मेरा विचार है कि 'हिंदी धातुओं' के सम्बध में नये सिरे से अध्ययन करूँ और विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करू।

प्रस्तुत प्रबध 'हिन्दी क्रियारूपों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन' शीर्षक के रूप म स्वीकृत हुआ था। प्रबध मुद्रित कराते समय एक दिन भाइ डॉ० मोहन लाल तिवारी ने बात ही बात म कहा कि प्रबध का अध्ययन भाषा वैज्ञानिक है या ऐतिहासिक, या किसी अन्य प्रकार का इसके लिये प्रमाणपत्र देने की जरूरत नहीं। बात मुझे भी जच गयी और मैंने उक्त शीर्षक के स्थान पर 'हिंदी क्रिया स्वरूप और विश्लेषण' रखना अधिक उचित समझा। डॉ० तिवारी को इस परामर्श के लिये धन्यवाद देता हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को समष्टि रूप प्रदान करने के लिये मुझे अन्य अनेक विद्वानों तथा उनके ग्रन्थों से भी बड़ी सहायता मिली है। मैं उनके परामर्शों तथा उनके सराहनीय कार्यों से ली गइ सुविधाओं के लिये उनका आभारी हूँ।

प्रबध प्रकाशित रूप में भाषा प्रेमियों के समक्ष आ रहा है, इसका श्रेय हिन्दी प्रेमी डॉ० सम्पूर्णानन्द, प्रकाशक, आनन्द पुस्तक भवन, वाराणसी को है। इनके सहयोग के अभाव म इतने शीघ्र ऐसे शोधप्रबन्ध का जिसका बाजारू मूल्य नहीं के बराबर है प्रकाशित होना 'टेढ़ी खीर' हो जाता। मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

हर प्रकार की सावधानी रखने पर भी मुद्रण सम्बन्धी अनेक अशुद्धियाँ रह गयी हैं। 'शाब्दबोधो के स्थान पर 'शब्दबोधो' (पृ० १) बोधत के स्थान पर 'बोधते' (पृ० १) 'भ्वादयो' के स्थान पर भ्वादयो (पृ० २२)

अतिरिक्त अन्य किन अर्थों का द्योतन कराती है। इस प्रकार सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध में हिन्दी क्रियाओं का ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं सैद्धान्तिक मूल्यांकन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के चयन की प्रेरणा वास्तव में पूज्य गुरुवर डॉ० भोलाशंकर व्यास रीडर, हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, से मिली है। उनके निर्देशन में कार्य करते हुये मैं अपने लक्ष्य की पूर्ति में समर्थ हुआ हूँ। प्रबंध के लेखन काल में अनेक गुत्थियाँ सामने आई, जिनका उचित समाधान उन्हीं के द्वारा संभव हो सका। विषय को हर प्रकार से परिपुष्ट बनाने के लिये, क्रमबद्ध अध्ययन की प्रवृत्ति उन्होंने ही जगायी। इस प्रकार प्रबंध की सम्पन्नता का समस्त श्रेय डॉ० व्यास को है। साथ ही उनकी अनेक कृतियाँ भी विषय के अध्ययन में सहायक रहीं। ऐसे विद्वान् एवं भाषा प्रेमी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कोरी वाग्मिता होगी। उनके आभार को तो मेरी वाणी नहीं, हृदय स्वीकार करता है।

प्रबन्ध लेखन में भाषा तत्त्वज्ञ डॉ० करुणापति त्रिपाठी से काफी सहायता मिली है। अनुपलब्ध पुस्तकें प्रदान कर उन्होंने श्रम और समय दोनों की बचत की है। साथ ही प्रबंध से सम्बंधित उनके कार्यों से भी मुझे पर्याप्त लाभ हुआ है। मैं ऐसे विद्वान् के समक्ष विनयावनत हूँ। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी भाषाविज्ञान के प्रवक्ता डॉ० एस० के० रोहरा से भी प्रबंध के मुद्रण के सम्बंध में महत्त्वपूर्ण निर्देश मिले हैं, मैं उनका आभारी हूँ। आदरणीय भाई आशुतोष उपाध्याय, प्रवक्ता पुराणेतिहास विभाग, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रबंध लेखन के बीच समय समय पर प्रोत्साहन मिलता रहा है। सामग्री संकलन में उन्होंने मेरी पर्याप्त सहायता की है, मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

श्रद्धेय गुरुवर डॉ० विद्यानिवास मिश्र ने अतिव्यस्त रहते हुये भी समय की कटौती कर, प्रस्तुत प्रबंध को आद्यन्त पढ़ने के पश्चात् जो सुझाव मुझे दिये हैं, उससे मुझे भाषावैज्ञानिक अध्ययन के लिये आवश्यक अनेक तत्त्वों की जानकारी प्राप्त हुई है। भविष्य में मैं उन उपयोगी तत्त्वों को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा। प्रबंध की प्रस्तावना

के रूप म लिखे गये उनके एक एक शब्द मेरे लिये विशेष महत्त्व रखते हैं। मैं ऐसे भाषा मर्मज्ञ विद्वान् के समक्ष श्रद्धावनत हूँ।

प्रस्तुत प्रबंध को मैंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय की पी एच० डी० उपाधिक लिये सन् १९६७ ई० म प्रस्तुत किया था। प्रबंध के स्वीकृत हो जाने पर मैंने सोचा था कि इसको परिष्कृत रूप म प्रकाशित करवाऊँ। पर परिस्थितिवश सोचना मात्र सोचना ही रह गया और समय की गति को देखते हुये इसे प्रकाशित करवाना पड़ा। भविष्य में मेरा विचार है कि 'हिंदी धातुओं' के सम्बंध में नये सिरे से अध्ययन करूँ और विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करूँ।

प्रस्तुत प्रबंध 'हिन्दी क्रियारूपों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन' शीर्षक के रूप म स्वीकृत हुआ था। प्रबंध मुद्रित कराते समय एक दिन भाई डॉ० मोहन लाल तिवारी ने बात ही बात म कहा कि प्रबंध का अध्ययन भाषा वैज्ञानिक है या ऐतिहासिक, या किसी अन्य प्रकार का इसके लिये प्रमाणपत्र देने की जरूरत नहीं। बात मुझे भी जच गयी और मैंने उक्त शीर्षक के स्थान पर 'हिंदी क्रिया स्वरूप और विश्लेषण' रखना अधिक उचित समझा। डॉ० तिवारी को इस परामर्श के लिये धन्यवाद देता हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को समष्टि रूप प्रदान करने के लिये मुझे अन्य अनेक विद्वानों तथा उनके ग्रन्थों से भी बड़ी सहायता मिली है। मैं उनके परामर्शों तथा उनके सराहनीय कार्यों से ली गई सुविधाओं के लिये उनका आभारी हूँ।

प्रबंध प्रकाशित रूप में भाषा प्रेमियों के समक्ष आ रहा है, इसका श्रेय हिन्दी प्रेमी डॉ० सम्पूर्णानन्द, प्रकाशक, आनन्द पुस्तक भवन, वाराणसी को है। इनके सहयोग के अभाव में इतने शीघ्र ऐसे शोधप्रबन्ध का जिसका बाजारू मूल्य नहीं के बराबर है प्रकाशित होना 'टेढ़ी खीर' हो जाता। मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

हर प्रकार की सावधानी रखने पर भी मुद्रण सम्बन्धी अनेक अशुद्धियाँ रह गयी हैं। 'शाब्दबोधो' के स्थान पर 'शब्दबोधो' (पृ० १) बाधत' के स्थान पर 'बोधते' (पृ० १) 'भूवादयो' के स्थान पर भ्वादयो (पृ० २२)

Part के स्थान पर Past (पृ० १४) 'मारा है' के स्थान पर 'मारता हूँ' (पृ० २०८) मुद्रित हो जाना निश्चय ही ध्यातव्य है। इस प्रकार की सभी अशुद्धियों के लिये मैं 'शुद्धिपत्र' जोड़ना चाहता था, पर समयाभाव के कारण ऐसा सभव नहीं हो सका। विद्वान् अशुद्धियों को तो सुधार ही लेगें, साथ ही अपेक्षित सुझाव देकर अनुगृहीत करेंगे—ऐसा मेरा विश्वास है।

हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
३ मार्च, १९७०

बालमुकुन्द

संकेत चिह्न

अप०	—अपभ्रंश
अव०	—अवधी
अ०पु०	—अन्यपुरुष
आ०भा०आ०	—आधुनिक भारतीय आर्यभाषा
उ०पु०	—उत्तम पुरुष
उ०ना०ति०	—उदयनारायण तिवारी
उदा०	—उदाहरण
ए०व०	—एकवचन
कवि०	—कवितावली
कहा०	—कहावत
का०प्र० गु०	—कामता प्रसाद गुरु
खड़ी०	—खड़ी बोली
चिन्ता०	—चिंतामणि प्रथम भाग
टि०	—टिप्पणी
टी०	—टीका
नरो० सुदा०	—नरोत्तमदास सुदामाचरित
नासि०	—नासिकेतोपाख्यान
ने०	—नेपाली
ने० को०	—नेपाली कोश
प्रा०	—प्राकृत
प्रेम०	—प्रेमसागर
पं०	—पंजाबी
प्रा० भा० आ०	—प्राचीन भारतीय आर्यभाषा
ब्र०	—ब्रज
ब० व०	—बहुवचन
बं०	—बंगाली
बिहा०	—बिहारी

भार० या भारत०	—भारत भारती
भोज०	—भोजपुरी
म० पु०	—मध्यम पुरुष
म० भा० आ०	—मध्यम भारतीय आर्यभाषा
राज०	—राजस्थानी
ल०	—लहंदी
शकु०	—शकुन्तला
सत्य०	—सत्य हरिश्चंद्र
स्क० स्कद०	—स्कंदगुप्त
सं०	—संस्कृत
सिं०	—सिंधी
सूर०	—सूरसागर
हिं०	—हिंदी
हेम०	—हेमचंद्र प्राकृत व्याकरण
>	—उत्पन्न करता है
<	—उत्पन्न हुआ है
*	—कल्पित रूप
√	—धातु चिह्न

———

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

प्रथम परिच्छेद

प्रथम परिच्छेद

भूमिका

वाक्य रचना मे क्रिया का महत्त्व

भाषा का मुख्य इकाई वाक्य है। यह विचारों की अभिव्यक्ति का सबसे उत्तम साधन है। अकेले शब्दों क माध्यम से विचारों का आदान प्रदान नहीं होता। जगदीश का कथन है कि शब्दबोध केवल वाक्य द्वारा ही सम्भव है। उनके अनुसार जब अनेक अर्थपूर्ण शब्द जोकि परस्पर आकांक्षा और योग्यता के साथ वाक्य-रचना के निमित्त सम्बद्ध होते हैं, तो उनमें अर्थ बोध की क्षमता आ जाती है—

वाक्यभावमवाप्तस्य सार्थकस्यावबोधत ।
सम्पद्यते शब्दबोधो न तन्मात्रस्य बोधते ।।[1]

जगदीश ने इस बात की विवेचना बड़े सूक्ष्म ढग से की है कि शब्दबोध तत्त्वत 'शब्दार्थ' नहीं है। वाक्य का अर्थ इसके अगों के अभिप्राय के योग की अपेक्षा कुछ विलक्षण है।[2]

इसे किसी भी प्रकार से अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनम एकमात्र शब्द एक पूर्ण विचार की अभिव्यक्ति में उसी प्रकार समर्थ हो जाता है, जिस प्रकार से कि एक पूरा वाक्य। बच्चो का भाषा का उदाहरण लिया जा सकता है। वे अपने माता पिता द्वारा व्यक्त किये गये पूरे वाक्य की अनुकृति करने में असमर्थ होकर किसी उचित शब्द को सुनकर वाणी द्वारा अभिव्यक्त करते हैं, जिससे पूरे वाक्य का अर्थ द्योतित हो जाता है।

१—शब्द शक्ति प्रकाशिका, पृ० १२।
२—वही, पृ० १२।

व्यास ने योगसूत्र ३।१७ के अन्तगत इस बात पर विचार किया है कि सभी शब्दो में स्वय एक वाक्य बनाने की क्षमता होती है–सवपदेषु चास्ति वाक्य शक्ति । व्यास के अनुसार वाक्य से अलग शब्द की कोई स्थिति नहीं होती। जब 'वृक्ष' शब्द अकेले उचरित होता है, तो हम निश्चय ही 'है' शब्द की परिकल्पना कर लेते हैं, जोकि वृक्ष है' पूर्ण वाक्य के अर्थ द्योतन म समर्थ हो जाता है। व्यास पुन सकेत करते हैं कि ससार म कोइ भा ऐसी वस्तु नहीं है जिसकी सत्ता एक गुण के रूप में विदित हो।[३] अधिकाश वैयाकरणों ने इस सिद्धात को स्वीकार किया है।

उक्त समस्त विवेचन का सारांश यह है कि कोई भी शब्द स्वय विचार को व्यजित करने म समर्थ नहा हो सकता, उसकी वास्तविक अभिव्यजना वाक्य द्वारा ही सभव है। फिर भी हम कह सकते हैं कि वह शब्द जाकि अथपूर्ण शब्द विभाग के रूप म प्रयुक्त होता है, उसमें भी विचार व्यक्त करने की क्षमता वतमान रहती है। एसा शब्द सकुचित रूप में एक 'वाक्य' ही होता है। वाक्य ही एक ऐसी इकाई है जोकि भाषा क प्रारभिक एव आवश्यक विशेषताओ को सूचित करती है। विचारों की मूर्तिमत्ता के रूप में भाषा हमारे सामने वाक्य के रूप में आती है, अलग अलग शब्दो के रूप में नहीं।[४]

भाषा का उद्गम ही वाक्य से हुआ अकले शब्द से नहीं। वैदिक मत्र चाहे ऋषियो द्वारा बनाये गये हो, चाहे वे सहज रूप म उत्पन्न हुये हो, हमारे सामने वाक्य रूप में ही आयें हैं। यह इस बात को सूचित करता है कि आदि कालीन मनुष्य उसी प्रकार से वाक्य के रूप म विचारो को अभिव्यक्त करता था, जैसा आज हम करते हैं।

स्फोटवादियो के अनुसार वाक्य एक अखड इकाई है। वाक्य का विभाजित करने के लिये वैयाकरणो ने विश्लेषण विधि का आधार लिया। वाक्य में प्रयुक्त शब्दो में प्रकृति और प्रत्यय का सयाग रहता है। वाक्य के द्वारा सूचित विचार भी अखड होते हैं। जिस प्रकार से एक शब्द (शब्द-स्फोट) अथवा एक वाक्य के खड नहीं हो सकते उसी प्रकार

३—वही, पृ० १२।

४—Chakravarti The Linguistic speculation of Hindus, p 102

से शब्द या वाक्य के द्वारा सूचित होने वाले अर्थ के भी भाग नहीं किये जा सकते।[५] इस प्रकार अखण्डता एक विशेष लक्षण है जोकि वाक्य और उसके अर्थ के लिये समान रूप से लागू होता है।

ऊपर संक्षिप्त रूप में वाक्य को परिभाषित किया गया है। अब यहाँ पर तार्किक दृष्टिकोण से थोड़ा वाक्य-रचना पर विचार कर लेना अनुचित न होगा। जगदीश का कथन है कि वाक्य केवल शब्दों का समूह मात्र नहीं है, अपितु वाक्य रचना करने वाले शब्दों को अभीप्सित विचार प्रदान करने के लिये पारस्परिक समीपता, आकांक्षा और योग्यता के अनुसार सम्बद्ध होना चाहिये। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि 'शब्दों का समूह मात्र' चाहे वह सुबन्त हो अथवा तिङन्त वाक्य रचना की क्षमता नहीं रख सकता।

मीमांसकों के अनुसार वाक्य शब्दों का संयुक्त रूप है, जिसके द्वारा एक ही पूर्ण विचार की अभिव्यक्ति होती है अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद्विभागे स्यात्।[७] एकार्थः पदसमूहो वाक्यम्। इस विवेचन में 'विचार की एकता' पर अधिक बल डाला गया है, जिसका तात्पर्य है—वाक्य अपने समन्वयात्मक रूप में केवल एक ही विचार को उत्पादित करता है, यद्यपि उसके विश्लेषण के उपरांत यह ज्ञात होता है कि वह ऐसे शब्दों के योग से बना है जोकि परस्पराकाङ्क्षी है। साकाङ्क्षावयवं भेदे परानाकांक्ष शब्दकम्। धर्मप्रधानं गुणवेदकार्थं वाक्यमिष्यते।[८]

शब्दों का एक संयुक्त रूप, जिसमें कि बहुत से अभिप्रायपूर्ण भाग होने की क्षमता निहित रहती है, मीमांसकों के अनुसार वह एक ही वाक्य समझा जाता है जोकि एक ही संयुक्त विचार व्यक्त करता है। वाक्य संयुक्त रूप में एक ऐसे विचार की व्यंजना के लिये प्रयुक्त होता है, जोकि स्वयं अपने में पूर्ण हो।

मीमांसकों ने वाक्य में क्रियापद को सबसे अधिक महत्ता प्रदान की है। उनके अनुसार क्रिया 'यजेत्' वाक्य में विशिष्ट तत्त्व है। 'स्वर्गकामो यजेत्' (स्वर्ग के लिये यज्ञ करना चाहिए) पूरे वाक्य की शक्ति अथवा मुख्य उद्देश्य (स्वर्ग प्राप्ति) विशेष रूप से क्रिया (यजेत्) के द्वारा

५—वाक्यपदीय, २।१३। ६—लघुमञ्जूषा, पृ० ४६७।
७—मीमां० सूत्र, २।१४६। ८—शबर भाष्य, २।१४६।

निर्धारित होता है। अपूर्व फल जिसकी ओर व्यापार प्रतत ले जाता है, वह क्रिया द्वारा ही व्यक्त समझा जाता है, किसी अन्य शब्द के द्वारा नहीं।[९]

भर्तृहरि ने अपने 'वाक्यपदीय' में वाक्य रचना के विषय में दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। इस विषय में उन्होंने आठ विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इनमें से प्रथम सिद्धान्त भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से काफी विचारणीय है। इसमें इस बात का संकेत किया गया है कि आख्यात शब्द वाक्य बनाने में अपने ही पर्याप्त है—

आख्यात शब्द संघातो जाति संघातवर्त्तिनी।
एकोऽनवयव शब्द क्रम ।

वार्तिक का एक भाग जिसमें वाक्य को परिभाषित करने के लिये तिङन्त या एक एकतिङ् की सत्ता को स्वीकार किया गया है, ऊपर के कथन को परिपुष्ट करता है। उदा०—'वर्षति' क्रिया उसी अभिप्राय के साथ प्रयोग में आ सकती है जैसे कि 'वर्षति देवजलम्' सम्पूर्ण वाक्य। विचारों के संयोग में कर्ता और कर्म दोनों आक्षिप्त हैं। इस विचारधारा के अनुसार जिसमें एक ही शब्द एक पूर्ण और अभिप्राय युक्त वाक्य के रूप में व्यवहृत होने में समर्थ हो सकता है, वाक्य का वह महत्वपूर्ण तत्त्व निश्चय रूप से क्रिया ही है—

आख्यात शब्दो वाक्यस्मिन् पक्षे क्रियागाक्यार्थ ।[१०]

वार्तिककार ने भी वाक्य को परिभाषित करते समय क्रिया की विशिष्टता का प्रतिपादन किया है —आख्यातसाव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्। कात्यायन का कथन है कि क्रिया अव्यय, कारक विशेषण या क्रियाविशेषण के संयोग से वाक्य बनाने में पूर्ण समर्थ है। उदाहरणार्थ-'उच्चै पठति' (वह जोर से पढ़ता है) वाक्य में एक क्रिया 'पठति' (पढ़ता है) और एक अव्यय 'उच्चै' (जोर से) निहित है। इसी प्रकार से 'ओदन पचति'— वह चावल (भात) पकाता है, ऐसा वाक्य है जो एक क्रिया (पचति) और एक कारक (ओदन-कर्मकारक) के संयुक्त रूप को सूचित करता है। उक्त दोनों उदाहरण यह प्रकट करते हैं कि वाक्य निर्माण में

९—मीमां०सूत्र, २।१।४।
१०—पुण्यराज वाक्य० २।१।

क्रिया का सबसे प्रमुख हाथ है। अत यह नि सकोच कहा जा सकता है कि क्रिया वाक्य का प्राण है। ऐसे लोग जोकि क्रिया को अव्यय, कारक और क्रिया विशेषण पर आश्रित मानते हैं, वे भूल करते हैं और उक्त विवेचन को सकुचित रूप प्रदान करते हैं।

क्रिया अपने सभावित गुणों के साथ वाक्य बनाने में स्वय सक्षम है। दूसरा वार्तिक भी मुख्यतया वही है, जैसा कि हमने पहले सकेत किया है। उसके अनुसार तिङन्त या क्रियापद को उतना ही अच्छा समझना चाहिये जितना अच्छा एक वाक्य को-एकतिङ् (वार्तिक १०)। इन दोनों वार्तिकों ने जैसा सकेत किया है, उसके अनुसार एक वाक्य म केवल एक ही 'क्रिया' की स्थापना की जाना चाहिए। पर तु एक ही वाक्य म एक से अधिक क्रियायें व्यवहृत देखी जाती हैं, यथा—पूर्व स्नाति, पचति, ततो व्रजति। (वह पहले स्नान करता है, तब (भोजन) पकाता है, तब जाता है)। यहाँ हमारे लिये यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि ऊपर के अश 'एक वाक्य' के अन्तर्गत आते हैं अथवा अनेक वाक्य एक साथ प्रयुक्त हुये हैं

> यथानेकमपि क्त्वान्त तिङन्तस्य विशेषकम्।
> तथा तिडन्त तत्राहुस्तिङन्तस्य विशेषकम् ॥[११]

दूसरे वार्तिक के आधार पर कोई भी उक्त अशों का तीन क्रियाओं से निर्मित तीन वाक्य मान सकता है। लेकिन सूत्रकार का निश्चय इसके विपरीत है। उसके अनुसार उक्त वाक्य की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति को एक वाक्य समझना चाहिए, अनेक क्रियाओं के प्रयोग स उसे कई वाक्यों म विभाजित करना ठीक नहीं। यहाँ 'व्रजति' (जाता है) मुख्यक्रिया है और शेष क्रियायें इसकी आश्रित हैं अथवा इसकी विशेषता सूचित करने के लिये प्रयुक्त हुई हैं—

नास्त्यत्र वाक्यभेद", व्रजतीत्येतत् प्राधान्येनैक क्रियापदमत्र स्थितमन्यानि क्रियान्तराणि तद्विशेषणान्येव। तिङन्तेपु साकाङ्क्षेष्वेकवाक्यता।[१२]

उक्त उदाहरण म व्रजति, कार्य को सूचित करता है, जोकि कर्ता के

११—वाक्यपदीय, २।६

१२—वही, २।४५०

द्वारा मुख्य उद्देश्य के रूप में आकांक्षित हैं। 'नहाना' (स्नाति) 'पकाना' (पचति) आदि क्रियायें इसके सहायक रूप में प्रयुक्त हुई हैं।

अन्य दूसरे लोगों ने भी पद' म वाक्य के पूर्ण अर्थबोध की परिकल्पना की है। इनके अनुसार केवल क्रियापद ही वाक्य का स्थान प्राप्त करने में समर्थ नहीं हैं, अपितु यदि पद में धातु रूप के द्वारा सूचित व्यापार के प्रकट करने की क्षमता है, तो वह भी क्रियावत् वाक्य-रचना में सक्षम है— वाक्य तदपि मन्यते यत् पद चरितक्रियम्।[१३] इस बात को हम अस्वीकार नहीं कर सकते कि कुछ वाक्य ऐसे हैं जिनमें कुछ शब्द अपनी प्रकृति के अनुसार इतने विलक्षण हैं, कि वे बिना किसी अन्य शब्द की सहायता के स्वयं सम्पूर्ण अर्थ द्योतित करने में समर्थ हैं। 'गायक गाता है' (गायक गायति) वाक्य का अकेले 'गायक' शब्द सम्पूर्ण वाक्य के अर्थ को सूचित करता है। यहाँ क्रियारूप 'गाता है' गायति) की आवश्यकता नहीं के बराबर है।

हमें यहाँ इस बात को भी सूचित कर देना चाहिए कि कोई वाक्य चाहे वह एकमात्र शब्द हो अथवा शब्दों का सामूहिक रूप हो नियमत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में किसी क्रिया-व्यापार को अवश्य सूचित करता है। भारतीय वैयाकरणों के लिए बिना क्रिया के किसी वाक्य की रचना असम्भव है।

उपर्युक्त व्याख्या यह स्पष्ट करता है कि क्रिया रूप ही वाक्य का मुख्य निर्माता है। शरीर के लिये आत्मा का जो स्थान है, वाक्य के लिए वही क्रिया का। स्वसन के अनुसार क्रिया एक जीवनदायक तत्व है, जो वाक्य रचना में सहायक है। वाक्य में प्राय सदा क्रिया वर्तमान रहती है, अपवाद रूप में हमें ऐसे पूरा वाक्य मिल सकते हैं, जिनकी रचना बिना क्रिया के हुया हो।[१४]

अत यह बिना किसी हिचक के कहा जा सकता है कि व्याकरणिक विचारधारा के आधार पर बिना क्रिया की सहायता के वाक्य का निर्माण नहीं हो सकता। नैयायिक उन वैयाकरणों से सहमत नहीं हैं जो क्रिया को वाक्य में प्रथम और अनिवार्य रूप में उपस्थित रहने के लिए जोर डालते हैं। जहाँ तक वाक्य विचार का प्रश्न है, अरस्तू ने भी वाक्य में क्रिया की

१३—वही, २।३२६

१४—Jespersen Philosophy of Grammar, p 86

अनिवार्यता पर बल नहीं दिया। उसका कथन है कि वाक्य क्रिया के बिना भी निर्मित हो सकता है—

A sentence may dispense even with the verb [१५]

विशेष रूप से उस समय जब प्रसग की प्रवृत्ति के अनुसार क्रिया आक्षिप्त रहे, तो नियमत क्रिया निर्दिष्ट रह, यह आवश्यक नहीं। जगदीश ने प्राचीन वैयाकरणों के उस मत को कि बिना क्रिया के वाक्य की रचना नहीं हो सकती, स्वीकार नहीं किया–क्रिया रहित न वाक्यमस्तीति प्राचा प्रवादो नियुक्तिकत्वाद श्रद्धेय ।[१६]

क्रिया की स्वीकृति प्रचलित प्रयोग पर आधारित है जबकि शब्द समूह-'आप कहाँ से' (कुतो भवान्) किसी क्रिया रूप को नहा रखता लेकिन (आप कहाँ से आ रहे हैं।) पूर अर्थ का स्पष्ट रूप से बोध कराता है। अत यह दावे क साथ कहना ठीक नहीं है कि बिना क्रिया के कोइ वाक्य व्यावहारिक दृष्टि से अचिंत्य है।

भर्तृहरि ने वाक्य रचना के लिए जिन आठ विचारों का उल्लेख किया है, उन्हें मुख्य रूप से दो भिन्न श्रेणियों म विभाजित किया जाता है–अखड पक्ष और खड पक्ष। स्फोटवादी जो वाक्य को एक अविभाज्य इकाइ मानते हैं, उनके विचार अखड पक्ष क अन्तगत और मीमासक तथा नैयायिक जिन्होंने वाक्य को शब्दों का सयुक्त रूप माना है, दूसर पक्ष के अन्तगत आते हैं।

भर्तृहरि और पुण्यराज के अनुसार वाक्य क प्रत्येक पद कुछ विशष अभिप्राय रखते हैं, यथा—कमत्व, कर्तृत्व आदि। वे क्रम से दूसर शब्दों के द्वारा सूचित विशेष अथ क रूप म आते हैं। यदि हम ठोस व्याकरण क सिद्धान्तों के आधार पर देवदत्तो ग्राम गच्छति (देवदत्त गाँव जाता है।) का उदाहरण लें, तो हम इसे इस रूप म व्यक्त करना उचित समझेंगे-उक्त वाक्य में जाने का कार्य जिसका कि देवदत्त कर्ता और ग्राम कर्म है, सूचित होता है। यहाँ 'कर्मत्व आदि का विचार' जोकि प्रत्येक पद से अथ

१५—Poetics XX, Butcher's ed p 71, Chakravarti, p 125

१६—शब्दशक्ति प्रकाशिका, कार १३।

के विशेष गुण को प्रदर्शित करता है, विशेष्य कहलाता है, वह एक निश्चित अथवा स्थिर क्रम में प्राप्त है।[१७]

यही निश्चित क्रम जिसमें कि अतिरिक्त विलक्षणता हमारे लिए ग्राह्य है वही वाक्य का मुख्य पक्ष है। इस क्रम के व्यतिक्रमण होने पर किसी वाक्य की रचना नहीं हो सकती

क्रमव्यतिरेकेण शब्दात्कं न वाक्यमभिधायकमस्तीत्युच्यते।[१८]

खण्डपक्ष का आधार लेकर चलने वाला मीमांसकों का एक वर्ग ऐसा है जोकि वाक्य रचना के लिए क्रियापद अथवा परस्परकांक्षी पद (सब पद साकांक्षम्) को समर्थ बताता है। ऐसे लोग जोकि क्रियापद के रूप में वाक्य की परिभाषा देते हैं, उनके लिए वाक्य का अर्थ क्रिया है, जोकि वाक्य द्वारा सूचित होती है। जो कुछ भी हो वाक्य में क्रिया की महत्ता को स्वीकार करने वाले वैयाकरणों की कमी नहीं है। व्याकरणिक और व्युत्पत्ति जन्य दोनों वृत्तियों से विद्वानों ने क्रिया की महान सत्ता को स्वीकार किया है। आख्यात की महत्ता इस बात पर निर्भर है कि वह स्वयं शब्द भेद का अभिप्राय पूर्ण तत्त्व है।

पाणिनि के सूत्र १।४।१४ के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिकांश वैयाकरणों ने पद को दो भागों में विभाजित किया है—सुबन्त और तिङन्त। दूसरे शब्दों में इन्हें नाम और आख्यात कह सकते हैं। जब हम किसी वाक्य को व्याकरणिक दृष्टि से सूक्ष्मतापूर्वक विश्लेषित करते हैं, तो हम पाते हैं कि एक वाक्य के दो मुख्य भाग हो सकते हैं—(१) नाम या कारक और (२) क्रिया। दूसरे अंश इनमें से किसी एक के आश्रित रूप में जुड़े रहते हैं। हेलाराज ने हमारे ध्यान को इस तथ्य की ओर आकर्षित किया है कि सूक्ष्म परीक्षा करने पर दो ही शब्द विभाग—नाम और आख्यात बचते हैं। निपात, जोकि केवल नाम के मुख्य अभिप्राय का द्योतक है, उसी की श्रेणी (नाम की श्रेणी) में रखा जाना चाहिये और उपसर्ग तथा कर्म प्रवचनीय, क्रियापद के द्वारा सूचित व्यापार की विशेषता बतलाते हैं, अतः वे क्रिया के ही अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।[१९]

---

१७ Chakravarti The Linguistic speculation of Hindu, p 129

१८—पुण्यराज, वाक्य २।५०। १९—हेलाराज वाक्य ३।१

महाभाष्य भी उक्त तथ्य की पुष्टि करता है। भाष्यकार का कथन है कि अव्यय जैसे हिरुक् और पृथक् जोकि व्यापार को सूचित करते हैं, उन्हें भी एक विशेष प्रकार की क्रिया ही समझना चाहिए–हिरुक् पृथगिति क्रिया प्रधानम्। उसने क्रिया के विशाल क्षेत्र का उद्घाटन करते हुये कहा है–आख्यात का अर्थ केवल तिङन्त से नहीं है, जोकि तिङ् में अन्त होते हैं, अपितु इसके अन्तर्गत वे सभी शब्द आते हैं जिनके द्वारा कार्य-व्यापार प्रभावित हों–

नहि तिङन्तमेवाख्यातं क्रिया प्रधानस्य सर्वस्यैव तल्लक्षणत्वात्[२०]

क्रिया और कारक

संस्कृत व्याकरण के प्रचलित प्रयोग के अनुसार लिंग, कारक और क्रिया विशेषण की संख्या में कुछ प्रतिबन्ध हैं। क्रियाविशेषण नियमतः सदा नपुंसकलिंग, कर्मकारक और एकवचन में प्रयुक्त होते हैं। सामान्य विशेषणों की भाँति, जोकि संज्ञा की विशेषता बतलाते हैं, वे (क्रियाविशेषण) क्रिया के साथ सामानाधिकरण्य रखते हैं–

क्रियायाश्च विशेषणं कदाचित् सामान्याधिकरण्येन भवति।[२१]

कारक के सम्बन्ध में पुण्यराज ने उल्लेख किया है कि क्रियाविशेषण कर्मकारक में रहते हैं। क्रिया के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि क्रिया की सिद्धि निवर्त्य (प्रयत्न) पर आधारित है–क्रियायाश्च निवर्त्यत्वात् कर्मत्वमिति न्यायसिद्धमेव कर्मत्वम्।[२२] 'शीघ्रम् गच्छति' (वह शीघ्र जा रहा है) वाक्य में 'जाने की शीघ्रता' तार्किक दृष्टि से क्रियासाध्य है, जोकि शारीरिक प्रयत्न द्वारा पूर्ण होती है। क्रियाविशेषण के कर्मकारक में रहने के लिये कोई व्याकरणिक प्रतिबन्ध नहीं है।

व्याकरणिक दृष्टि से यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि सम्बोधन पद किसके साथ रखे जायँ। इसमें संदेह नहीं कि वे संज्ञा के साथ प्रयुक्त होते हैं, जिनके साथ निश्चित विभक्ति होती है, तथा वे किसी वस्तु या व्यक्ति के ध्यानाकर्षण के लिये होते हैं। किन्तु वाक्य में इनका

२०—हेलाराज : वाक्यपदीय, ३।१।

२१—वही, ३।१।

२२—पुण्यराज : वाक्य० २।५।

प्रयोग विलक्षण दिखलाई पड़ता है, क्योंकि संस्कृत व्याकरण में सम्बोधन पद न तो व्याकरणिक कारक के रूप में व्यवहृत होते हैं और न तो उनका अर्थ प्रातिपदिकार्थ समझा जाता है। 'आख्यात साव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्'[२३] 'सूत्र के अनुसार' 'व्रजानि देवदत्त!' (देवदत्त, मैं जाऊँ) एक अभिव्यक्ति के अन्तर्गत पूर्णतया लागू नहीं होता। इस प्रकार सम्बोधन पद विशेषक संयोजक के साथ न तो अव्यय के अन्तर्गत आता है और न तो कारक के। भर्तृहरि ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सम्बोधन पद क्रिया विशेषण है, जोकि क्रिया की विशेषता बतलाता है—

सम्बोधन पद यच्च तत् क्रियाया विशेषकम्।
व्रजानि देवदत्तेति निघातोऽत्र तथा सति॥

यह खास रूप से कहा जा सकता है कि क्रियाविशेषण साधारण विशेषण की भाँति न केवल सामान्याधिकरण्य के रूप में ही पाये जाते हैं, अपितु ऐसे भी उदाहरण वर्तमान हैं, जहाँ पर क्रियाविशेषण व्यधिकरण्य के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। ऐसी दशा में व्याकरणिक रूप से क्रिया विशेषण और क्रिया का कोई साथ नहीं होता। यह बिल्कुल तथ्य की बात है कि 'व्रजानि देवदत्त' में कोई सम्बोधन शब्द देवदत्त और क्रिया व्रजानि में सामान्याधिकरण्य नहीं निकाल सकता।[२४]

इस व्याख्या का सामान्य अर्थ यह है कि देवदत्त को सम्बोधित करने के बाद एक मनुष्य की गति निश्चित रूप से देवदत्त की क्रिया से विशेषित होती है, अर्थात् मन्त्रणा की क्रिया द्वारा मनुष्य की गति को प्रेरित होने का अवसर मिलता है।[२५]

वाक्यपदीय के उक्त विशेष विवेचन के प्रसंग में व्याकरण भूषण के रचयिता ने सम्बोधन को एक प्रकार का शब्द माना है, जिसका सम्बन्ध क्रिया से है—(सम्बोधनान्तस्य क्रियायामन्वयः)।[२६] यद्यपि सम्बोधन के सम्बन्ध में विचार उसने उद्देश्य और विधेय के सन्दर्भ में किया है।

---

२३ – वार्तिक ६। पाणिनि २।१।१
२४—पुण्यराज वाक्य० २।५।
२५ पुण्यराज वाक्य० २ ५।
२६—व्याकरण भूषणसार, १६।

उसने इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि विभक्ति जोकि सम्बोधन पदों में जोड़े जाते हैं, वे क्रिया के साथ अन्वित होते हैं—

सम्बोधनविभक्तेरनुवाद्य विषयत्वादनुवाद्यस्य विधेय साकाक्षत्वाद्विधेयस्य च क्रिया रूपत्वात् क्रियान्वयोऽर्थायात ।[२७]

नैयायिकों ने भी सम्बोधन को विशेषण के रूप में स्वीकृत किया है, क्रिया-विशेषण के रूप में नहीं, यह सम्बोधन धातु द्वारा सूचित क्रिया की विशेषता बतलाता है। गदाधर सम्बोधन को सज्ञा के एक भेद के रूप में मानने को तैयार नहीं। उन्होंने सम्बोधन के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है-सम्बोधन उस सज्ञा और सर्वनाम की विशेषता बतलाता है, जोकि क्रिया के सम्बन्ध में कर्ता कारक के रूप में सम्बोधित करने के लिये प्रयुक्त होते हैं-प्रथमार्थताद्दशच्छया विषयतासम्बन्धेन प्रकृत्यर्थं विशेषणतया भानम्। (व्युत्पत्तिवाद)।

इस बात का सकेत पहले ही किया जा चुका है कि प्राय सभी वैयाकरणों ने क्रिया की महत्ता को स्वीकार किया है। अब यहाँ क्रिया के तात्पर्य के सम्बन्ध पर विचार कर लेना आवश्यक है। यास्क ने अपने उल्लेखनीय उद्धरण में क्रिया की परिभाषा इस प्रकार दी है-'क्रिया ऐसा शब्द है जो भाव को सूचित करता है—भावप्रधानमाख्यातम्।[२८] साधारण रूप में भाव, कर्म, क्रिया और धात्वर्थ पर्यायवाची हैं भाव कर्मक्रियाधात्वर्थ इत्यस्थान्तरम्-दुर्गा)। दार्शनिक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि भाव अव्यक्त से व्यक्त की स्थिति को सूचित करता है, अथवा भाव वह महासत्ता है, जोकि सम्पूर्ण सत्तात्मक जगत में विद्यमान है। यह भाव जोकि यद्यपि निश्चित रूप से एक अखण्ड है, छः भिन्न अंशों में विभाजित किया हुआ देखा जाता है, यथा—उत्पत्ति, सत्ता, परिवर्तन, वृद्धि, पतन और विनष्टीकरण या प्रलय।[२९] इन भेदों के विभिन्न स्तरों के पीछे एक अपरिवर्तनीय वास्तविकता छिपी हुई है, वह यह है कि उक्त सभी भावविचारों के अन्दर रचना शक्ति का सामर्थ्य निहित रहता है-(कारणात्मनि भावे सर्वे एते भावविकाराः सन्ति। सामर्थ्यं प्रसशक्तित्वातस्य-दुर्गा)।

२७—वही, १६।
२८—निरुक्त, १।१।
२९—वही, १।२।

विस्तृत दृष्टिकोण से विचार करने पर हम पाते हैं कि भाव को सत् या सत्ता से अलग नहीं किया जा सकता। ये एक दूसरे से इतने घनिष्ठतया सम्बद्ध हैं कि हम ऐसे भाव के बारे म सोच भी नहीं सकते जिसका उद्गम स्थल असत हो (नासतोविद्यते भावो नाभावो विद्यते सत)।

क्रिया का व्याकरणिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुये पतञ्जलि ने 'वार्ष्यायणि' के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मत का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार 'भाव-क्रम' के रूप में स्थिति की व्याख्या करना कठिन है। इसका मुख्य कारण यह है कि 'स्था' एक धातु है जिसका व्याकरणिक अर्थ भाव नहीं होता, अपितु वह क्रिया निवृत्ति की पूर्ण सूचना देता है–सर्वथा स्थित इत्यत्र धातु सज्ञा न प्राप्नोति।[१०]

यदि हम क्रियापद का सही अर्थ–'भाववचनो धातु' मानें तो यह कहना होगा कि धातु भाव या व्यापार की सूचना देती है। ऐसी दशा म तो 'निष्पत्ति' को निश्चित रूप से 'भावविकार' के रूप में समझने म कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। क्योंकि यह 'गति निवृत्ति' को द्योतित करती है। लेकिन यह इस रूप म 'वार्ष्यायणि' के द्वारा उल्लिखित रूपभेद की तालिका म स्पष्टतया सम्मिलित नहीं की गई है। जबकि प्रत्येक रूपभेद किसी न किसी खास व्यापार की सूचना देता है, तो ऐसी दशा म 'तिष्ठति' क्रिया (व्यापार सूचक के रूप म) अनियमित सिद्ध होती है क्योंकि यह क्रिया निवृत्ति का बोध कराती है। पतञ्जलि का कथन है कि 'तिष्ठति' के सम्बन्ध म हम यह पाते हैं कि किस प्रकार से एक क्रिया (भाव) दूसरी क्रिया को द्योतित करने में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार क्रिया क्रियानिवर्तिका होती है– 'एव तर्हि क्रियाया क्रियानिवर्तिका भवति'[११]। पतञ्जलि पुन उक्त बात का समर्थन करते हुए कहते हैं कि काल विभाग—वर्तमान, भूत और भविष्य क्रिया के द्वारा प्रभावित होते हैं और 'अस्ति' तथा 'जायते' जैसे क्रिया रूपों से उसी प्रकार के उद्देश्य सिद्ध होते हैं—'नान्तरेण क्रिया भूतभविष्यद्वर्तमाना कालाव्यज्यन्ते। अस्त्यादिभिश्च भूतभविष्यद्वर्तमाना काला व्यज्यन्ते।'[१२]

१०—महाभाष्य वार्तिक २, पाणिनि १।३।१।
११—महाभाष्य वार्तिक २, पाणिनि १।३।१।
१२—वार्तिक २ पाणि० १।३।१।

आख्यात की परिभाषा देते समय पतजलि ने 'सत्त्व' का पुनरुद्घाटन किया है। यास्क और पतजलि के विचारों म यहाँ इतना ही भेद है कि उसन भाव के स्थान पर क्रिया का प्रयोग किया है—'क्रियापदानामाख्यातम्।'[३३] आख्यात शब्दों के एक ऐसे वर्ग के अन्तर्गत आता है, जिसम क्रिया सिद्धि की प्रधानता रहती है। पतजलि क अनुसार क्रिया निश्चित रूप से एक है और इसकी प्रकृति (भाव) म कोई विभेद नहीं दिखाई देता—एका च क्रिया भाव पुनरेक एव।[३४]

जहाँ तक व्याकरणिक व्याख्या का प्रश्न है, भाव और द्रव्य म कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। प्रगतिशील विचारधारा के आधार पर विचार करने पर हम पाते हैं कि प्रत्येक वस्तु के पास अपने उत्तराधिकार रूप म प्राप्त क्रियाशीलता (गतिशीलता) होती है। व्यापार के पयाय के रूप म क्रिया सभी वस्तुओं के सनस मुख्य अश का सूचित करती है। यह क्रियाशीलता स्वय दो मुख्य तत्वों की उद्घोषणा करती है—भाव और द्रव्य। इसम प्रथम क्रियाशील और दूसरा अजित व्यापार है। वैयाकरणों ने ऐसी परिस्थितियों का भी उल्लेख किया है जबकि भाव का द्रव्यीकरण हो जाता है—क्वदभिहितो भावो द्रव्यवद्भवताति।[३५]

जब भाव को कृत् प्रत्यय (जैसे पाक) क द्वारा अभिहित करते हैं और वहाँ व्यापार की पूति उसके द्वारा सूचित हाता है, तो भाव निश्चित रूप से द्रव्य के रूप में आवर्तित हो जाता है और व्याकरणिक दृष्टिकोण से यह समझा जाता है कि यह सज्ञा अथवा द्रव्य है, जिसक लिंग, वचन और कारक रूपांतरित होते हैं—

क्रियाभिनिवृत्तिवशोपजात कृदतशब्दाभिहितो यदा स्यात्।
सख्याविभक्तयव्ययलिगयुक्तो भावस्तदा द्रव्यमिवापलक्ष्य ॥[३६]

इस प्रकार द्रव्य और क्रिया परस्पराश्रित होते हैं तथा उन्हें एक दूसरे म परिवर्तित किया जा सकता है। नाम और आख्यात म अन्तर यह है कि जब व्यापार पर जोर दिया जाय तो क्रिया और जब द्रव्य का विचार अधिक

---

३३ - महाभाष्य, पाणिनी ५ ३।६६।
३४—वही १।१।६७।
३५—महाभाष्य, वही ५।७।११९।
३६—बृहद्देवता १।४४।

प्रभावशाली ढग से आये तो 'नाम' होता है। अधिकांश वैयाकरणों ने उक्त मत की पुष्टि की है। अरस्तू ने अनुसार 'क्रिया ध्वनि का एक महत्वपूर्ण सरचना है, जोकि समय की सूचना देती है, जिसमें सज्ञा की भाँति स्वय कोइ अश अर्थपूर्ण नहीं होता।'[१७]

अरस्तू ने अपनी सज्ञा की परिभाषा म क्रिया के प्रधान अभिप्राय का जिक्र किये बिना ही काल को असगत ढग स महत्ता प्रदान की है। इसम सदेह नहीं कि क्रियायें अपने विभिन्न रूपों न द्वारा काल क विभिन्न रूपों—वतमान, भूत और भविष्य की सूचना देती हं। दूसर शब्दों म हम कह सकते हैं कि क्रिया और काल एक दूसर से अविभाज्य रूप से जुड़ हुए हैं, फिर भी क्रिया का अन्य शब्दों व भावों स कम सम्बन्ध नहीं है।

स्वीट के मत का उल्लेख करते हुए स्पसन का कहना है—क्रियायें गोचर शब्द हैं और उन्हें दो वर्गों में बाँटा जा सकता है-(१) ऐसी क्रियायें जो के व्यापार की सूचना देती हैं, यथा—वह खाता है, स्नान करता है, मारता है, बोलता है इत्यादि। (२) ऐसी क्रियायें जो कि दशा सूचित करती हैं यथा—वह सोता है, रहता है, प्रतीक्षा करता है आदि। यद्यपि ऐसी भी क्रियायें हैं जिनको उक्त दोनों वर्गों के अन्तगत नहीं रखा जा सकता जैसे—वह रोकता है, धिक्कारता है, प्रसन्न करता है आदि।[१८]

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि किसी वस्तु विशेष की स्थिति सूचित करने का काय क्रिया करती है। क्रिया के अतिरिक्त अन्य शब्द उद्देश्य क रूप में आते हैं। इस प्रकार एसे शब्द जो किसी वस्तु की स्थिति की सूचना देते हैं, क्रिया कहलाते हैं। 'राम अच्छा लड़का है' वाक्य म 'है' क्रिया है, जो राम की स्थिति (अच्छापन) की सूचना देता है। इसमें अच्छा 'राम के अच्छे लड़के होने की' विशेषता बतलाता है तथा लड़का या राम का विशेषण है। कहीं कहीं 'है' क्रिया का प्रयोग किये बिना भी अर्थ की प्रतीति हो जाती है, यथा—राम अच्छा लड़का है और तू मूर्ख। 'मूर्ख' क पश्चात् 'है' के प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी।

१७—A verb is a composite significant of Sound, marking time, in which, as in the noun, no part is itself significant Poetics XX Butcher's ed p 71, Chakravarti, p 6–11

१८—Jespersen Philosophy of Grammar

हिन्दी के अधिकांश व्याकरणों में क्रिया का लक्षण उसके अर्थ के अनुसार बतलाया गया है, यथा—जिस शब्द से करना या होना पाया जाय, उसे क्रिया कहते हैं। परन्तु इस प्रकार के लक्षण भ्रामक हैं। ऐसी स्थिति में हम 'पढ़ना' क्रियार्थक संज्ञा', 'पढ़ता हुआ' (वर्तमानकालिक कृदंत) आदि को भी क्रिया मान लेना पड़ेगा। वास्तव में क्रिया से किसी वस्तु के विषय में विधान सूचित होता है और किसी वस्तु के विषय में विधान करने वाला शब्द ही 'क्रिया' कहलाता है[३९] यथा 'राजा विद्वान् है।' इसमें 'है' शब्द राजा की विद्वत्ता सूचित करता है। यह विधान करने वाला शब्द है, अतएव 'है' क्रिया है। क्रिया के साथ 'विद्वान्' शब्द (राजा का विशेषण) भी वाक्य में प्रयुक्त है, परन्तु इसके रहने या न रहने से क्रिया की विधेयता में कोई अन्तर नहीं आता। विशेष अर्थ के द्योतन के निमित्त क्रिया के साथ शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। इन शब्दों का क्रिया के लक्षण बताने में महत्व प्राय नहीं के बराबर है।

धातु

क्रियाओं का मूल रूप धातु है। व्याकरण विज्ञान में धातु को प्रकृति की संज्ञा दी जाती है। धातुयें वे मूल तत्व हैं जिनसे सभी शब्द-रूप उत्पन्न हुये माने जाते हैं। ये तत्व अथवा ध्वनि रूप भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उन सभी क्रिया रूपों के उद्गम को सूचित करते हैं, जिनसे कि हम भलीभाँति परिचित हैं। इन धातुओं की महत्ता वैयाकरणों और व्युत्पत्ति वादियों दोनों ने समान रूप से स्वीकार किया है। इसका मुख्य कारण यह है कि धातुयें केवल भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण के अंतिम परिणाम ही नहीं हैं, अपितु सभी शब्दों के यथार्थ आधार हैं। धातु का शब्दों से वही सम्बन्ध है, जो जीवन का प्राणिमात्र से। भाषा की प्रकृति की तुलना उस वृक्ष से की गई है, जिसकी विभिन्न शाखायें और प्रशाखायें होती हैं[४०] शब्दों का इतिहास वास्तव में इस प्रकार के भाषा के मूल रूप से आरम्भ होता है, जिसको भारतीय वैयाकरणों ने धातु की संज्ञा दी है और सभी शब्दों के उद्गम को इसी मूल रूप से माना है।[४१]

३९—का०प्र०गु०—हिन्दी व्याकरण, १९८७ पृ० १२५।
४०—Sayce The Science of Language Vol II,p 3
४१—Chakravarti The Linguistic Speculation of Hindus, p 219

धातुयें शब्दों के निर्माण के मुख्य आधार हैं, इस निष्कर्ष का आश्रय लेकर वाक्य के विभाग किये गये' जिनमें मुख्य रूप से दो सूक्ष्म तत्व दिखाई देते हैं—प्रकृति और प्रत्यय। प्रकृति को समझने के लिये हम केवल धातु की ओर ध्यान देना चाहिए, दूसरे शब्दों की ओर नहीं। प्रकृति को संज्ञा और धातु दो भागों में विभाजित करना पूर्णतया ठीक नहीं है, क्योंकि तत्वों के सूक्ष्म परीक्षण करने पर संज्ञायें भी धातुओं से उत्पन्न हुई पाई जाती हैं। शब्दों की एक प्रकृति होती है और वह धातु के अतिरिक्त दूसरी नहीं है। इसके विपरीत कुछ भाषा वैज्ञानिक संज्ञा और क्रिया में विशेष अन्तर स्वीकार नहीं करते। प्रो॰ Sayce ने स्पष्ट रूप में कहा है—'आर्य क्रियायें मौलिक रूप में संज्ञा थीं।'[४२]

क्रिया और संज्ञा में जो वास्तविक सम्बन्ध है, वह यह है कि दोनों का उद्गम स्थान एक ही है। एक दीर्घ समय के पश्चात् क्रिया को समानता और समीकरण के फलस्वरूप भिन्न शब्द विभाग समझा जाने लगा। Sayce ने अपनी भाषा में उद्धृत करते हुए कहा है—अधिकांश क्रियायें संज्ञा की पूर्वकल्पित रूप है, अर्थात् संज्ञा के साथ उनकी मूल अनुरूपता है।[४३] अनेक दशाओं में क्रियायें संज्ञा के ह्रास रूप को सूचित करती हैं, यथा—गच्छति क्रिया गम्, गमी अथवा गामी से विकसित हुई होगी।

अन्य भाषा परिवारों की भाँति संस्कृत के पास धातु का अपना भाण्डार है। ये धातुयें यद्यपि अभिप्रायपूर्ण हैं, तथापि ये निश्चित रूप से क्रियायें नहीं हैं। आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों ने भारतीय वैयाकरणों के विरुद्ध एक गंभीर आक्षेप प्रस्तुत किया है कि ये क्रियाओं के साथ इन धातुओं को रखने में भ्रम करते हैं। लेकिन हम यह नहीं जानते कि इसका कारण क्या है? 'भू' और 'भवति' के अन्तर से भारतीय वैयाकरण नहीं परिचित थे, ऐसी बात नहीं। Sayce के अनुसार क्रिया ही व्यापार की सूचना देती है, धातु नहीं। भारतीय वैयाकरणों ने एक मात्र धातुओं को व्यापार सूचक

४२—The Science of Language Vol 1, preface to second edition, p XXVIII, Chakravarti The L S H, p 219

४३—Chakravarti The Linguistic Speculation of Hindus, p 220

मानकर एक बड़ी भूल की है। तथ्य यह है कि धातु प्रयोग के लिये तब तक सक्षम नहीं बन सकती, जबतक कि यह प्रत्ययों से युक्त होकर क्रिया के रूप में विकसित नहीं हो जाती।[४४]

भाषा वैज्ञानिकों के मतानुसार धातु एक ध्वनि रूप है, जोकि सगोत्री शब्दों के एक समूह में सामान्य तत्व को सूचित करती है, उदाहरणार्थ—भवति, भवामि, भविष्यामि आदि केवल रूप म ही समान नहीं हैं, अपितु ये एक सामान्य उत्पत्ति 'भू' भी रखते हैं, जहाँ से वे विभिन्न प्रकार के प्रत्ययों की सहायता से अस्तित्व म आये हैं। ठीक उसी प्रकार से रूप और अथ सामान्य तत्व के अन्वेषण के लिये सदा एक विचार-क्रम नहीं प्रदान करते, क्योंकि विभिन्न व्युत्पत्ति वाले, अथवा वाह्य दृष्टि से समान दिखलाई देने वाले शब्द परस्पर सम्बन्धित शब्दों की तरह दिखाइ देते हैं और ये सामान्य रूप म सयुक्त होकर आते हैं। अधिकाश धातुयें ऐसी हैं, (यथा—धन, जन, वध, मान, काल, गवेप, कुमार आदि) जोकि पदार्थ (नाम) के रूप म दिखाइ देती हैं। संस्कृत में भाषाजन्य विभेदता के कारण ऐसे उदाहरण मिलते है कि पदार्थ के रूप में प्रयुक्त देश के एक भाग का शब्द दूसरे भाग में क्रियापद के रूप म प्रयुक्त देखा जाता है जबकि 'जाने' क अथ में 'शवति' का प्रयोग क्रियागत, कम्बोजिया म प्रचलित था, आर्या ने उसे केवल सज्ञा के रूप म ग्रहण किया, यथा—शव (मुर्दा)।[४५]

जबकि सेमेटिक भाषा में धातुयें तीन व्यजनों के सयोग से बनी हुई हैं, संस्कृत की धातुयें प्राय एकाक्षरी हैं और अधिकाश शब्द एकमान धातु स उत्पन्न हुये पाये जाते हैं। अपवाद रूप म कदाचित ही कहा वहाँ त्र्यक्षरी धातुयें (चकास, कुमार) तथा द्वयक्षरी धातुयें (कुट्ट, अट्ट, घट्ट आदि) पाइ जाती हैं।

धातुओं का वर्गीकरण

धातुयें जिनके अध्ययन के लिये एक विशाल क्षेत्र है, व्याकरण के विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर वर्गीकृत की गइ हैं। संस्कृत म सर्वप्रथम धातुओं को एकाच् और अनेकाच् दो भागों म विभाजित किया गया है।

४४—Chakravarti The Linguistic speculation of Hindus, p 220

४५—Ibid, p 222

पुन उनके रूप के आधार पर ये दो वर्गों म विभक्त की गई हैं-परस्मैपदी और आत्मनेपदी। एक तीसरे प्रकार की भी धातु है, जिसे उभयपदी कहते हैं। यह उक्त दोनों पदी धातुओं के रूप में प्रयुक्त होती है। इनका विवेचन दूसरे अध्याय में प्रसगानुसार किया जायगा। पुन धातुओं को तीन भागों म बांटा जाता है—

(१) साधारण या मूलधातु।
(२) सौत्र धातु (य केवल व्याकरण के नियमों के अन्तगत आती हैं।)
(३) प्रत्ययान्त धातु-ये प्रत्ययों में अन्त होती हैं।

धातुओं का उक्त विभाग भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अपत्ताकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। आज भी हम इन्हें भाषाओं में गृहीत पाते हैं। णिजत, यजत, नामधातु, सन्नन्त, प्रत्ययांत धातुयें गौण धातु कहलाती हैं क्योंकि ये मुख्य धातुओं से विशेष भिन्नता रखती हैं। नामधातु अध्ययन के लिये एक रोचक अवस्था प्रदान करता है। पाणिनि न कुछ निश्चित गण रूपों का उल्लेख किया है, जो यह बतलाते हैं कि किस प्रकार से एक नाम (प्राति पदिक) व्याकरणिक दृष्टि स क्रियापद के रूप म परिवर्तित हो जाता है और क्रिया के समस्त कार्यों की गतिविधि का परिचय देने लगता है [४६] यथा-पटयति (पटु) अश्वयति (अश्व)। सन्, क्यच् आदि प्रत्ययों म अन्त होने वाली धातुयें भी धातु की सज्ञा प्राप्त करती हैं, और इस प्रकार का रूप प्रदान करती हैं-पुत्रकामयति (पुत्र की कामना करना है।), जिगमिषति (जाने का इच्छा करता ह)। सौत्र धातुओं की सख्या बहुत कम है। पाणिनि के सूत्रों में हम इस प्रकार की केवल २० (बीस) धातुयें पाते हैं। वोपदेव ने स्तम्भ, स्तुम्भ, स्कम्भ, स्कुम्भ जैसी केवल चार धातुओं का उल्लेख किया है।[४७]

साधारण या मूल तथा गौण रूप म वर्गीकृत धातुओं से भाषा वैज्ञानिक सहमत हैं, लेकिन यही वर्गीकरण बिल्कुल दृढ़ आधार पर किया गया नहीं कहा जा सकता। सस्कृत म ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जहाँ पर अभि प्रायवश साधारण धातुयें गौण हो जाती हैं। कृ, भू और अस् तीन मुख्य

४६—पाणिनि ३।१।२३।
४७—Chakravarti—The Linguistic speculation of Hindus, p 226

धातुयें दीर्घ स्वरों के साथ जुड़ने पर गौण समझी जाती हैं तथा 'आम' से अनुसरित होती हैं।

पश्चिमी भाषा वैज्ञानिकों ने धातुओं को साधारण और यौगिक रूप में वर्गीकृत किया है। लेकिन ये भारतीय वैयाकरणों की स्तुति करते हुये नहीं पाये जाते। संस्कृत के मुख्य (भू, स्था आदि) और गौण (क्यङ्, क्यच् आदि प्रत्ययों के संयोग से निष्पन्न) धातुओं की चर्चा पहले ही की जा चुकी है, किन्तु संस्कृत में यौगिक धातु की तरह कोई भी रूप उपलब्ध नहीं होता, सिवाय उनके जोकि प्रत्ययान्त के नाम से विख्यात हैं। भारतीय वैयाकरणों ने इस बात को विवेचित करने का प्रयत्न कभी नहीं किया कि युद्ध (लड़ाई करना), दो सामान्य धातुओं का संयुक्त रूप है, यथा— यु + ध या धा।[४८]

व्युत्पत्ति के आधार पर हिन्दी धातुओं के दो विभाग किये जाते हैं— (१) मूल धातु (२) यौगिक धातु। वे धातुयें जिनकी निर्मिति किसी अन्य शब्द की सहायता लिये बिना ही होती है, मूल धातु कहलाती हैं, यथा—पढ़, लिख, चल, देख आदि। यौगिक धातुयें दूसरे शब्दों की सहायता से निर्मित होती हैं, अर्थात् मूल धातु में विशेष प्रत्यय जोड़कर बनाई गई धातुयें यौगिक धातु कहलाती हैं, जैसे—पढ़ (ना), लिख (ना), चल (ना), देख (ना) से बने क्रमशः पढ़ा(ना), लिखा(ना), चला(ना), दिखा(ना), आदि रूप यौगिक धातुओं के अन्तर्गत आते हैं। मूल धातुओं को सिद्ध और यौगिक धातुओं को भी संज्ञा दी जाती है।[४९] इन धातुओं (मूल और यौगिक) के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से छठे अध्याय में वर्णन किया जायगा। यहाँ पर इनका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

मूल धातु—हिन्दी में अनेक धातुयें ऐसी हैं जिनका विकास संस्कृत > प्राकृत > हिन्दी में हुआ है। ऐसी धातुएँ मूल धातु के ही वर्ग में समाविष्ट की जाती हैं, यथा—सं० कृ > प्रा० कर > हिं० कर। संस्कृत से विकसित हुई धातुयें जो मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं से होकर हिन्दी में आई हैं वे वहाँ चाहे मूल हों या यौगिक, किन्तु हिन्दी में उन्हें मूल धातु की ही संज्ञा दी जाती है।

४८—Sayce—The Science of Language Vol II p 17

४९—डॉ० तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास। ३५४

यौगिक धातु—हिन्दी म अपने ही शब्दों से अथवा प्रत्ययों के सयोग से जो धातुये निष्पन्न होती हैं, उन्हें यौगिक धातु कहते हैं। यौगिक धातुओं को मुख्य रूप से तीन वर्गों में बाँटा जाता है—

(१) णिजत (प्रेरणाथक)

(२) नाम धातु

(३) सयुक्त धातु

(१) णिजत (प्रेरणाथक घातु)—मूल धातु में विशप प्रत्यय लगा कर जब उसम इस प्रकार का विकार ला दिया जाता है कि उस धातु रूप से कता पर किसी के द्वारा प्रेरणा का भाव सूचित होने लगे, तो उसे प्रेरणाथक धातु कहते हैं, यथा—अध्यापक विद्यार्थी से पुस्तक पढवाता है। इस वाक्य म 'पढवाता' [पढ़वा(ना)] प्रेरणाथक धातु है। यहाँ पर अध्यापक 'पुस्तक पढ़ने' का कार्य स्वय नहीं करता, अपितु विद्याथी से करवाता है। विद्यार्थी भी पुस्तक स्वय नहीं पढता अपितु अध्यापक द्वारा प्रेरित होकर एसा करता है। प्रेरणार्थक क्रिया म कता के दो रूप पाये जाते हैं—(१) प्रेरक कता (२) प्रेरित कता। इनमें से प्रथम (प्रेरक कता) कार्य करने की प्रेरणा देता है और दूसरा (प्रेरित कर्ता) प्रेरक कता से प्रेरित होकर कार्य करता है। उपयुक्त उदाहरण में अध्यापक प्रेरक कता और विद्यार्थी प्रेरित कता ह। प्रेरक कता प्राय कता कारक (प्रथमा विभक्ति) और प्रेरित कता करण कारक (तृतीया विभक्ति) का रूप धारण कर वाक्य म प्रयुक्त होता है।

प्रेरणार्थक धातु के दो रूप हिन्दी म पाये जाते है-प्रथम प्रेरणाथक रूप और द्वितीय प्रेरणाथक रूप। प्रथम प्रेरणाथक रूप प्राय सकमक क्रिया के ही अथ में प्रयुक्त होता है। द्वितीय प्रेरणार्थक रूप सकर्मक रूप के साथ साथ प्रेरणा के यथार्थ रूप को भी सूचित करता है, यथा-'किसान हल चलाता है' वाक्य म 'चलाता' प्रथम प्रेरणाथक रूप सकमक क्रिया के रूप म प्रयुक्त हुआ है। इसका यथाथ प्रेरणाथक रूप, जिसम प्रेरक कता और प्रेरितकता दोनों का प्रयोग होता है-'चलवाता' होगा, यथा-किसान मजदूर से हल चलवाता है।

(२) नामधातु—जब किसी सज्ञापद तथा नियामूलक विशेषण के पश्चात् कोइ प्रत्यय जोड़कर उस धातु का रूप प्रदान कर देते हैं, तो उसे नामधातु की सज्ञा दी जाती है। हिन्दी में नामधातुओं की निष्पत्ति में तद्भव, तत्सम और विदेशी रूप सहायक हैं, यथा, स्वीकार स्वीकार (ना)

अनुराग-अनुराग (ना), लाठी-लठिया (ना) बात-बतिया (ना), बदल बदल (ना), खर्च-खर्च (ना)।

(३) संयुक्त धातु—ऐसी धातुयें धातुओं के योग से या धातु से पूर्व कोई संज्ञा, क्रियाजात विशेष्य अथवा कतिपय कृदन्तों के योग से निर्मित होती हैं। आधुनिक भारतीय आर्यभाषा में संज्ञापद, क्रियाजात विशेष्य अथवा कृदन्तों के योग से बनी हुई संयुक्त धातुओं के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं, यथा, चल देना, पढ लेना, जान पड़ना, देख सकना, सुन रखना इत्यादि।

अनुकरणात्मक धातु—जो धातु किसी वस्तु या पदार्थ की ध्वनि के अनुकरण पर बनती है, उसे अनुकरणात्मक धातु कहते हैं, यथा—कूद(ना), टप(ना), बड़बड़ा(ना), खटखटा(ना) इत्यादि।

धातु और क्रिया

धातुओं को सार्थक ध्वनि कहा गया है, चूँकि वे सदा किसी न किसी प्रकार के कार्य-व्यापार की सूचना देती हैं। संस्कृत में ऐसी कोई धातु नहीं है, जिसकी व्याख्या अर्थ की दृष्टि से स्वतन्त्र रूप में की जाय। धातु के अर्थ (धात्वर्थ) के द्वारा भारतीय वैयाकरण निश्चित रूप से क्रिया को समझते हैं। धातुओं के यथार्थ अभिप्राय के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। प्रत्येक कार्य-व्यापार अपने साथ किसी न किसी प्रकार के फल को लाता है और वह व्यापार जो अपने साथ 'फल' नहीं लाता, या नहीं उत्पन्न करता, उसे क्रिया नहीं समझा जाता। प्रश्न यह है कि कोई धातु कार्य को सूचित करती है अथवा इससे अनुगत फल को। मीमांसकों के अनुसार 'फल' अकेले धातु का अर्थ होता है और व्यापार तिङ् जैसे धातु रूपों द्वारा सूचित होते हैं।[५०] 'गम्' का अर्थ सामान्यतया 'गति' से नहीं है अपितु 'गति' के फलीभूत उत्तर संयोग से है—गमेरुत्तरसंयोगोऽर्थो, न तु तत् फलजनक स्पन्द।[५१]

इसके विपरीत कुछ वैयाकरण यह कहते हुये पाये जाते हैं कि व्यापार

५०—अत्र मण्डन मिश्रा—फलमात्रं धात्वर्थं, व्यापारः प्रत्ययार्थः (मञ्जूषा) धात्वर्थः फलमिति मण्डनाचार्याः।
—तत्त्वचिंतामणि (धातुवाद)

५१—तत्त्वचिंतामणि (धातुवाद)।

केवल धातु द्वारा सूचित होता है और फल विभक्ति [illegible] रूप से प्रत्ययों द्वारा उत्पन्न होता है। [illegible] के बाद स्पष्ट [illegible] उक्त दोनों विवादास्पद सिद्धान्तों में से प्रथम सिद्धान्त 'फल [illegible]' धातु द्वारा सूचित होता है, की कड़ी आलोचना की। [illegible] ने [illegible] पर बहुत जोर दिया और साधारण रूप से धातुओं के साधारण अर्थ को 'फलानुकूल व्यापार ही मानना है' बतलाया।[५२] [illegible] ने इस विषय पर आलोचना की है। उन्होंने [illegible] की आलोचना कर [illegible] कहता है कि [illegible] धातु केवल व्यापार की सूचना देता है [illegible] 'जाना' और 'जाता' के [illegible] ही नहीं रहता।[५३]

यह सत्य है [illegible] कि एक वाक्य [illegible] चाहे उसमें एक शब्द हो अथवा अनेक, कुछ [illegible] निहित होता है। [illegible] यहाँ के इस मत पर अवश्य ध्यान देना [illegible] कि '[illegible]' रूप केवल एक पृथक शब्द नहीं है, अपितु यह उतना ही [illegible] और सार्थक है, जितना कि एक वाक्य जैसे 'जाति का एक व्यक्ति' अथवा 'सद्गुण युक्त' व्यापार के आधार भूत व्यक्ति का अर्थ रखता है। वाक्य के शब्दबोध के रूप में धातु अकेले शब्दों के द्वारा सूचित व्यापार का [illegible] कुछ और अर्थ रखता है। इस बात को कोई शायद ही माने कि धातुयें बिना किसी गुण के व्यापार की सूचना देती हैं। कुछ लोग इसके विपरीत यह व्यवस्था देते हुए बतलाते हैं कि 'गम्' धातु का अर्थ 'गमनादि [illegible] के द्वारा विशेषित गति है'।[५४]

'भ्वादयो धातवः' नियम के आधार पर धातु किसे कहा जाय, पाणिनि ने इसका विवेचन [illegible] रूप से प्रस्तुत किया है। क्रिया शब्द जोकि साधारणतया धातु के द्वारा सूचित 'अर्थ को अभिव्यक्त' करता है, पाणिनि के सूत्रों और वार्तिक में कई बार आया है। पतंजलि के अनुसार वे शब्द रूप जो किसी क्रिया की सूचना देते हैं, धातु कहलाते हैं (क्रियावचनो धातुः)।' पतंजलि ने धातु की उक्त केवल एक ही परिभाषा नहीं दी है, अपितु क्रिया के आंतरिक अर्थ को स्पष्ट करने के लिए उसने कई 'पर्याय' परिभाषायें भी दी हैं। उसके अनुसार क्रिया मुख्य रूप से प्रयत्न को सूचित करती है, चाहे वह प्रयत्न शारीरिक हो अथवा बौद्धिक। उदाहरण के तौर पर हम कह

५२—फलानुकूलव्यापार एवधात्वर्थ । तत्त्वचिन्तामणि (धातुवाद)।

५३—वही, (व्युत्पत्तिवाद)।

५४—वही, पृ० ३७।

सकते हैं कि जब 'गच्छति' किसी शारीरिक प्रयत्न को प्रदर्शित करता है, तो शरीर का 'गतिशील भाग' (पैर) एक स्थान से दूसरे स्थान पर गतिशील हो जाता है, स्मरति (स्मरण करता है), चिंतयति (सोचता है) मानसिक प्रयत्न हैं, जो मस्तिष्क को क्रियाशील बनाते हैं। इसी को उसने क्रिया की संज्ञा दी।[५५]

पतञ्जलि के द्वारा दी गई उक्त व्याख्या में हमें त्रुटियाँ मिल सकती हैं, उसने (पतञ्जलि ने) क्रिया व्यापार के सूक्ष्म अर्थ को 'पर्याय परिभाषाओं' की एक तालिका के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। जो कुछ भी हो क्रिया की निश्चित व्याख्या देना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। पतञ्जलि ने स्पष्टतया यह स्वीकार किया है कि क्रिया पूर्ण रूप से अपरिदृष्ट है और इसका निदर्शन भी अशक्य है 'क्रिया नामेयमत्यन्तापरिदृष्टा। अशक्या क्रिया पिण्डीभूता निदर्शयितुम्'।[५६] क्रिया केवल अनुमानगम्य है—'सा ऽसावनुमानगम्या। कोऽसावनुमान'।[५७] आखिर क्रिया के अनुमान का ढंग क्या है? जिस प्रकार से समस्त उपकरणों के वर्तमान रहने पर भी, यदि हम उसका सुगठित ढंग से उपयोग नहीं करते, तो उनसे किसी निष्कर्ष की प्राप्ति नहीं होगी, उसी प्रकार से यदि व्यापारगत सभी साधन मौजूद हैं, परन्तु वे क्रियाशील नहीं होते, तो 'क्रिया' की निष्पत्ति नहीं हो सकती। 'क्रिया' की निष्पत्ति के लिये ऐसे प्रयत्न की आवश्यकता है, जिससे किसी न किसी वाञ्छित फल की प्राप्ति अवश्य हो—'इह सर्वेषु साधनेषु सन्निहितेषु कदाचित्पचतीत्येतद्भवति, कदाचिन्नभवति। यस्मिन् साधने सन्निहित पचतीत्येतद्भवति सा नून क्रिया।' अर्थात् भोजन के सभी साधन बर्तन, आग, ईंधन, अन्न आदि रखे हों, तो हम उसे 'पकाना' नहीं कह सकते, जबतक कि प्रत्येक चीज को कार्यरूप में ढालने के लिये प्रयत्नशील नहीं होते। क्रिया की भी यही स्थिति है। इस प्रकार 'प्रयत्न' ही क्रिया के निर्धारण का मुख्य तत्व है। क्रिया (जैसे पचति) के अनेक भाग होते हैं, जो बौद्धिक दृष्टि से अविभाज्य समझे जाते हैं। ये अपने संगठित रूप में वांछनीय फल की सूचना देते हैं-'गुणभूतैरवयवै समूह, क्रमजन्मनाम्।

५५—महाभाष्य, पाणिनि १।३।१।
५६—वही, १।३।१।
५७—वही।

बुध्या प्रकल्पिताभेद' सा क्रियेत्यभिधीयते (वाक्यपदीय)। लेकिन हम यह किस प्रकार से समझ सकते हैं की पच् धातु की भाँति सभी क्रियायें व्यापार सूचक होती हैं ? इसे जानने के लिये हम 'करोति' (करना-करता है) का आश्रय ले सकते हैं। 'करने' का विचार क्रिया के समस्त भेदों में सामान्य रूप से पाया जाता है। कोई भी क्रिया ऐसी नहीं है जिसे 'करना' के सम्पर्क में रखकर विवेचित न किया जा सके। यथा-गच्छति गमन करोति पठति-पठन करोति। इस प्रकार प्राय प्रत्येक क्रियापद के अर्थ 'करोति' (करना) से घनिष्ठतया सम्बंधित हैं-सर्वोधात्वथ करोत्यर्थे नाभिसम्बध्यते।

दार्शनिक भाषा में क्रिया एक जन्मजात शक्ति है, जिसकी स्थिति प्रायः समस्त पदार्थों में वर्तमान है। जहाँ तक व्युत्पत्तिजन्य व्याख्या का प्रश्न है, कारकों (क्रिया करोति कारकम्) की व्याख्या क्रिया या शक्ति के विभिन्न अंगों के रूप में की जा सकती है। मीमांसकों के अनुसार क्रिया वह शब्द है जिसका उच्चारण, सूचित होने वाले उद्देश्य को हमारे सामने उपस्थित नहीं करता।[५८] उन्होंने दो प्रकार के व्यापारों की बात कहा है—मुख्य और गौण। पुन उसको (व्यापार को) दो भागों-सिद्धस्वभाव और साध्य स्वभाव में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग के अन्तर्गत पाक, पक्ति और पचन क्रियात्मक सज्ञायें आती हैं, जो लिंग, वचन और कारक का अनुसरण करता है। दूसरे वर्ग में 'करोति' (करता है), करिष्यति (करेगा) आदि अपूर्ण व्यापार द्योतक रूप आते हैं। सभी शब्द व्यापार के प्रतीक के रूप में समझे जा सकते हैं। सज्ञायें भी अपने अन्दर व्यापार को अन्तर्मुक्त रखती हैं।[५९] भर्तृहरि का कथन है कि क्रिया, चाहे वह सिद्ध स्वभाव वाली (पूर्ण) हो अथवा साध्य स्वभाववाली (अपूर्ण व्यापार द्योतक) हो, शब्दों द्वारा विधित होता है और प्रयत्नों की सहायता से सिद्ध होती है।[६०]

वैयाकरण भूषण के रचयिता का मत है कि धातु व्यापार के साथ-साथ फल को भी सूचित करती है तथा आश्रय रूपान्तर तिङ् द्वारा सूचित होवे

५८—मीमा० सूत्र २।१।४।
५९—दुर्गा, निरुक्त १।१।
६०—वाक्यपदीय, चक्रवर्ती (दी फि० स्पे० हि०) पृ० २३७।)

हैं—फलव्यापारयोर्धातुराश्रये तु तिङ् स्मृता'।[६१] कुछ लोगों का कथन है कि व्यापार, काल, वचन और कारक सभी क्रियार्थक प्रत्यय के द्वारा सूचित होते हैं। यह बात स्मरणीय है कि सर्वप्रथम आर्य क्रियायें समय, भाव और व्यापार के सूचक के रूप म दिखाइ देती ह। जहाँ तक पुरुष भेद (ति, सि, मि आदि) का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध म फिक और सेइस का मत उल्लेखनीय है। उनके अनुसार ये प्राचीन सम्प्रदान कारक वाले रूप हैं और साधारण तद्धित प्रत्ययों से निर्मित क्रियार्थक सज्ञायें ह।[६२]

सकर्मक और अकर्मक क्रियायें

ऐसी क्रियायें जिनसे निष्पन्न होने वाले काय या व्यापार से कर्म प्रभावित होता है, उन्हे सकर्मक क्रिया कहते हैं, यथा—मैंने पुस्तक पढी। तुमने गाय देखी। मैंने आम खाया। जब क्रिया से सूचित होने वाला व्यापार कर्ता से निष्पन्न होकर कर्ता को ही प्रभावित करता है तो उसे अकर्मक क्रिया की सज्ञा दी जाती है, यथा—मैं चलता हूँ। वे यहाँ रहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कर्म की उपस्थिति में क्रिया सकर्मक और उसके अभाव म अकर्मक होती है।

खुजलाना, मरना, लजाना, भूलना, घिसना, बदलना, ललचाना, घबराना आदि कुछ ऐसी क्रियायें हैं जो प्रयोगानुसार सकर्मक और अकर्मक दोनों अर्थों म दिखाई देती हैं[६३]—

वह सिर खुजलाता है। (सकर्मक)
आपका सिर खुजलाता है। (अकर्मक)
तुम राम को लजाते हो। (सकर्मक)
आप वहाँ जाते लजाते हैं। (अकर्मक)
तुम उसे ललचाते हो। (सकर्मक)
मिठाई देख लड़कों का जी ललचाता है। (अकर्मक)

सकर्मक क्रिया का 'कर्म' सर्वदा प्रकट नहीं किया जाता। जब सकर्मक क्रिया का सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति या पदार्थ से नहीं रहता, अपितु उसका

६१—वैयाकरण भूषण, भाग २।

६२—Chakravarti The Linguistic Speculation of Hindus, p 238

६३—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण १६२ पृ० १२५-२६।

क्षेत्र व्यापक होता है, ऐसी स्थिति में कर्म छिपा दिया जाता है,[६४] यथा—विद्यालय में छात्र पढ़ते हैं। यहाँ पर 'छात्र' क्या पढ़ते हैं का उत्तर विभिन्न विषयों को पढ़ते हैं में विभिन्न विषयों को (कर्म) प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है।

अकर्मक क्रियायें भी दो प्रकार की होती हैं—(१) पूर्ण अकर्मक क्रियायें। (२) अपूर्ण अकर्मक क्रियायें। ऐसी क्रियायें जो कार्य या व्यापार की सूचना के लिए केवल कर्ता की सहायता लेती हैं, पूर्ण अकर्मक क्रियायें कहलाती हैं, यथा—आप चलते हैं। लड़का सोता है। ऐसी क्रियायें जो केवल कर्ता के द्वारा पूर्ण अर्थ व्यक्त करने में असमर्थ होती हैं, तथा आशय की अभिव्यक्ति के लिये पूर्ति (संज्ञा या विशेषण) की आवश्यकता होती है, अपूर्ण अकर्मक क्रियायें कहलाती हैं।[६५] होना, रहना, निकलना, ठहरना आदि ऐसी ही क्रियायें हैं, यथा—आप बड़े अच्छे हैं। वह निकम्मा निकला। आप घर रहे। तुम अमीर ठहरे।

सकर्मक क्रियाओं के सम्बन्ध में भी यह बात कही जा सकती है कि 'बिना कर्म' के वह पूरा आशय व्यक्त करने में समर्थ नहीं होती। 'कर्म' वहाँ पर पूर्ति का काम करता है। इस प्रकार सकर्मक क्रिया भी एक प्रकार से अपूर्ण क्रिया है। फिर भी दोनों में अन्तर यह है कि अपूर्ण अकर्मक क्रिया की पूर्ति कर्ता से सम्बन्धित होता है और सकर्मक क्रिया की पूर्ति 'कर्म' से।[६६]

कभी-कभी एक वाक्य में दो कर्म की आवश्यकता पड़ती है, उनमें से एक मुख्य तथा दूसरा गौण कर्म होता है, यथा—

मैंने अपने भाई को पुस्तक दी।
आपने मुझे सलाह दी थी।

उक्त वाक्य में 'भाई को' और 'मुझे' गौण कर्म है, 'पुस्तक' और 'सलाह' मुख्य कर्म। मुख्य कर्म बहुधा वस्तु या पदार्थ वाचक और गौण कर्म प्राणिवाचक होता है। गौण कर्म कभी-कभी वाक्य में छिपा रहता है, यथा—पंडित जी कथा सुनाते हैं। गुरु जी वेद पढ़ाते हैं।

६४—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण १६३ पृ० १२६।
६५—वही १९४, पृ० १२।
६६—वही १६७ (इ) पृ० १२६।

फम की उपस्थिति म भी कभी-कभा अर्थ की पुष्टि के लिये सकमक क्रियाओं के साथ पूर्ति (सज्ञा या विशेषण) की आवश्यकता पड़ती है, यथा —

गुरू जी ने विद्यार्थी को व्युत्पन्न समझा।
पिता ने पुत्र को चिकित्सक बनाया।

वाच्य

सस्कृत व्याकरण म 'वाच्य' और 'प्रयोग' दोनों पयायवाची हैं। अनेक विद्वान् हिन्दी में इसको समान रूप प्रदान करने में किसी प्रकार की हिचक नहा रखते। कता, कम या भाव का अन्विति में सहायक होने वाले क्रिया रूप 'प्रयोग' के अन्तर्गत आते हैं, वाच्य के अन्तर्गत नहीं, उन्हें क्रमश कतरि, कर्मणि और भावे प्रयोग की सज्ञा दी जाती है। प्रयोग के सम्बन्ध में हम इसी अध्याय में आगे विचार करेंगे।

सस्कृत व्याकरण की पद्धति पर केवल रूप के अनुसार हिन्दी म वाच्य का निर्णय करना उचित नहीं है। हिन्दी म क्रिया के अनेक ऐसे प्रयोग मिलेंगे जो रूप और अर्थ की दृष्टि से भिन्न भिन्न वाच्य श्रेणी को ग्रहण करते हैं-उदा० —

उसने रोटी खायी (कर्तृ वाच्य)
तेन रोटिका खादिता। (कमवाच्य)

उक्त वाक्य रूप की दृष्टि स कर्म वाच्य है, परन्तु अर्थ की दृष्टि से कर्म-वाच्य। 'खायी' क्रिया 'रोटी' (कर्म) के अनुसार निष्पन्न हुई है। 'उसने आम खाया' वाक्य म 'आम' (कम) के अनुसार 'खाया' क्रिया रूप की निष्पत्ति हुई है और सभी लिंग, पुरुष और वचनों में तबतक यही क्रिया रूप प्रयुक्त होगा, जब तक कि उसके कर्म में कोइ परिवर्तन नहीं किया जाता। इस आधार पर विद्वान् कमवाच्य तो नहीं, कर्तृ वाच्य कर्मणि प्रयोग इसे अवश्य कह सकते हैं, परन्तु वास्तव म यह हिन्दी का 'कर्तृवाच्य' क्रिया रूप है।

उक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि-क्रिया के उस रूपान्तर को वाच्य कहते हैं, जिससे वाक्य में प्रयुक्त कर्ता, कर्म या भाव के *विषय म विशेषता सूचित होती है,*[६७] *यथा-बालक पुस्तक पढ़ता है (कर्ता),* पुस्तक पढ़ी जाती है (कर्म), यहाँ रहा नहीं जाता (भाव)।

६७—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण। ३४६ पृ० २५५।

हिन्दी में वाच्य के तीन रूप उपलब्ध होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य।

कर्तृवाच्य—क्रिया का वह रूपान्तर जो यह सूचित करता है कि वाक्य का मुख्य उद्देश्य क्रिया का कर्ता है कर्तृवाच्य कहलाता है, यथा–बालक कलम से लिखता है। बालिकाओं ने पुस्तकें पढ़ी। हमने आप सभा लोगों को आमन्त्रित किया। कर्तृवाच्य अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं के द्वारा सम्पादित होता है, यथा–मैं वहाँ जाता हूँ। (अकर्मक) वह शेर देखता है (सकर्मक)।

कर्मवाच्य—क्रिया का वह रूपान्तर जो वाक्य में कर्म को 'क्रिया का उद्देश्य' रूप प्रदान करता है, उसे कर्मवाच्य कहते हैं, यथा, पुस्तक पढ़ी जाती है, पत्र लिखा जाता है। मुझसे लेख लिखा जायगा।

कर्मवाच्य की निष्पत्ति केवल सकर्मक क्रियाओं के द्वारा होती है। इसमें कर्ता प्रायः लुप्त रहता है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसे करणकारक में लिखते हैं।

अप्रत्यय कर्ता कारक की भाँति कर्मवाच्य में भी उद्देश्य कभी-कभी अप्रत्यय कर्मकारक में आता है, यथा, ग्रन्थ पढ़ा गया। कहानी सुनायी गयी। पर अनेक स्थानों पर इसका उद्देश्य सप्रत्यय कर्मकारक के साथ भी आता है, यथा–उसे उतारा गया, किरण को पढ़ाया गया।

हिंदी में कर्मवाच्य का उपयोग प्रायः अशक्तता, अभिमान आदि भाव द्योतित करने के लिये होता है, यथा–मुझसे रोटी नहीं खायी जाती। उससे पुस्तक नहीं लिखी जायगी। (अशक्तता), आप का कोई बात न सुना जायगा। उन्हें बुलाया गया है। (अभिमान)

क्रिया के कर्ता के अज्ञात होने की स्थिति में भी कर्मवाच्य का प्रयोग किया जाता है, यथा–सभी चोर मार जायेंगे। आज परीक्षा फल सुनाया जायगा। प्रभुता प्रदर्शित करने के लिये प्रायः कर्मवाच्य का प्रयोग करते हैं, यथा–आपको चेतावनी दे दी गई है। समय से न आने पर सख्त कारवाई की जायगी।

भाववाच्य—क्रिया का वह रूप जो यह सूचित करता है कि क्रिया का उद्देश्य कर्ता और कर्म दोनों में से कोई नहीं है, उसे भाववाच्य कहते हैं। भाववाच्य की क्रिया सदा अकर्मक होती है और वह अन्य पुरुष, पुल्लिंग, एकवचन में प्रयुक्त होती है, यथा—

मुझसे चला नहीं जाता।
तुमसे रहा नहीं जाता।
यहाँ कैसे बैठा जायगा।

भाववाच्य की क्रिया बहुधा अशक्तता के अर्थ में प्रयुक्त होती है। उ दिये गये उदाहरण क्रिया की अशक्तता सूचित करते हैं।

काल रचना

हिन्दी क्रियाओं के मुख्यतया दो रूप पाये जाते हैं—समापिका क्रिया और असमापिका क्रिया। जिस धातुज रूप के द्वारा क्रियागत व्यापार का समापक अर्थ अधिक व्यक्त किया जाता है, उसे समापिका क्रिया कहते हैं, जैसे—राम पुस्तक पढता है। वह घर गया। वे धातुज शब्द जिनका प्रयोग विशेषणवत् या अव्ययवत् किया जाता है, उन्हें असमापिका क्रिया कहते हैं, जैसे—वह सोकर उठा। उसने जाते ही पुस्तक खरीदी। वह बैठे-बैठे ऊब गया।

समापिका क्रिया का प्रयोग प्राय कालरचना में होता है। काल क्रिया का वह रूपान्तर है, जिससे क्रिया के व्यापार का समय तथा उसकी अवस्था की सूचना मिलती है। क्रिया का विस्तृत दृष्टिकोण से विचार करने पर हम उसके अनगिनत रूप पाते हैं। वाक्य म क्रिया की उपस्थिति आवश्यक होती है, और हमें अपवाद रूप में ही एसे पूर्ण वाक्य मिलते हैं, जिसमें क्रिया वर्तमान न हो। यदि हम 'कुत्ता भूँकता है' 'और भूँकता हुआ कुत्ता' की तुलना करें, तो हम देखते हैं कि भूँकता है और भूकता हुआ घनिष्ठतया सम्बन्धित हैं और एक ही 'शब्द' (भूँक) के विभिन्न रूप हैं। वाक्य निमाण में प्रथम रूप (भूँकता है) वाक्य की निमिति म समथ है, दूसरे म इस शक्ति का अभाव है। अत प्रथम रूप को समापिका क्रिया के नाम से अभिहित करते हैं।[६८] दूसरा रूप विशेषणवत् प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार क्रिया के अनेक रूप जोकि सज्ञावत् या अव्ययवत् प्रयुक्त होते हैं, हिन्दी व्याकरण में इन्हें असमापिका क्रिया के अन्तर्गत रखा जाता है। यहीं पर श्री वी० ए० चेर्निशोव का मत उल्लेखनीय है, इन्होंने अपने 'हिन्दी के साधारण वाक्य म स्वतत्र कर्ता और असमापिका क्रिया वाले वाक्यांश'

६९—Jespersen Philosophy of Grammar p 87

नामक एक लेख में क्रियार्थक संज्ञा को क्रियापद माना है। हिन्दी व्याकरण में भी इसे असमापिका क्रिया के अन्तर्गत समाविष्ट किया जाता है। 'युद्ध आरम्भ होने पर प्राय रक्षा के लिए आवश्यक पदार्थों को उत्पन्न करना बन्द कर नाश के ही साधन बनाये जाते हैं', उदाहरण में प्रयुक्त 'युद्ध आरम्भ होने पर' अंश को स्वतन्त्र वाक्यांश माना है और 'आरम्भ होना' को क्रिया पद।[६९] श्री चेनिशेव ने उक्त मत की आलोचना प्रस्तुत करते हुए श्री बदरीनाथ कपूर ने लिखा कि है 'आरम्भ होना' क्रियापद नहीं संज्ञापद है। उनके अनुसार क्रियार्थक संज्ञा वस्तुत संज्ञा ही है तथा अधिकांश आकारान्त पुल्लिंग एकवचन संज्ञाओं की भांति विभक्ति लगने पर इनके भी एकारान्त रूप पाये जाते हैं, इसके विपरीत क्रियाओं में विभक्तियाँ नहीं लगतीं। वे कृदन्तों को भी विशेषण मानते हैं, क्रियायें नहीं। हाँ काल-रचना में प्रयुक्त कृदन्तज रूपों को वे अवश्य क्रियापद मानने के पक्ष में हैं।[७०] जहाँ तक मेरा मत है, क्रिया का विचार एक संकुचित क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं होना चाहिए। क्रियार्थक संज्ञायें तथा कृदन्त रूप भले ही काल रचना में न प्रयुक्त हों, परन्तु वे धातुओं से निर्मित होते हैं। समापिका क्रियाओं का मूल उद्गम स्थान धातु ही है। अत यह कहना कि 'जाता है', क्रियापद है और 'जाते हुए', 'जाना' 'पढ़ना' आदि मात्र विशेषण और संज्ञायें हैं, ठीक नहीं है। इन्हें हम क्रियाओं की एक ऐसी श्रेणी में रखते हैं, जिनका प्रयोग संज्ञा, विशेषण और अव्ययवत् होता है। इन्हें असमापिका क्रिया कहें तो अनुचित न होगा।

हिन्दी काल-रचना की प्रणाली प्रा० भा० आ० से बिल्कुल भिन्न है। हिंदी ने प्रा०भा०आ० के तीन रूपों का आधार लेकर अपने काल-रचना की निर्मिति की है, ये हैं[७१]—वर्तमानकालिक तिङन्तज रूप (लटनकार)—हि० चल ∠ म०भा०आ० चलइ ∠ सं० चलति वर्तमानकालिक कृदन्त रूप-हि०

६९—नागरीप्रचारिणी पत्रिका 'मालवीय विशेषांक'—श्री पी० ए० चेनिशेव 'हिंदी के साधारण वाक्य में स्वतंत्रकर्ता और असमापिका क्रिया वाले वाक्यांश' पर लेख।

७०—वही, संवत् २०२० अङ्क १–२ पृ० ८० ८१।

७१—डा० तिवारी हिंदी भाषा का उद्गम और विकास।३८८' पृ० ४८३ ८४।

चलता ∠ स० चलत और भूतकालिक कृदतज रूप हिं० गया ∠म० मा०आ० गअ, गय ∠स० गत।

रचना के आधार पर हिंदी कालों को मुख्य रूप से दो मार्गों में विभाजित किया जाता है-(१) मौलिक काल-जिसमें तिङत और कृदत रूप बिना किसी सहायक क्रिया का आश्रय लिये प्रयुक्त हों, यथा-मैं पढ़ूं। वह जाये। (२) यौगिक काल समूह-जिस काल म धातु के कृदतज रूप के साथ सहायक क्रिया का प्रयोग निश्चित रूप से होता है, उसे यौगिक काल कहते ह। इन दोनों कालो के भी वग होते हैं, जो नीचे दिये जाते हैं—

मौलिक काल—

(क) तिङन्तज रूपों से बने हुये[७२]

(1) मूलात्मक काल--

(१) सभाव्य भविष्यत् (वतमान इच्छाथक)

(२) प्रत्यक्षविधि (वतमान आज्ञाथक)

(11) प्रत्यय एव कृदत के सहयोग से निमित काल

(३) सामान्य भविष्यत् काल

(ग) कृदतज रूपों स बने हुए काल[७३]

(४) समान्य सकेताथकाल (कारणात्मक अतीत)

(५) सामान्य भूतकाल (साधारण अथवा नित्य अतीत)

(६) भविष्य आज्ञार्थक

यौगिक काल समूह[७४]

(क) वर्तमान कालिक कृदन्त + सहायक क्रिया

(७) सामान्य वतमानकाल (घटमान वतमान)

(८) अपूर्णभूतकाल (घटमान भूत)

(९) समाव्य वतमान काल (घटमान सभाव्य वतमान)

(१०) सदिग्ध वतमान काल (घटमान भविष्यत्)

(११) अपूर्ण सकेतार्थ काल (घटमान सभाव्य अतीत)

---

७२ कोष्टक मे दिये गये नाम डॉ० उदयनारायण तिवारी की पुस्तक हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास से गहीत है।

७३ वही।

७४ वही।

-(ख) भूतकालिक कृदंत + सहायक क्रिया

(१२) आसन्न भूतकाल या पूर्ण वर्तमानकाल (पुराघटित वर्तमान)

(१३) पूर्णभूतकाल (पुराघटित भूत)

(१४) सभाव्य भूतकाल

(१५) संदिग्ध भूतकाल (पुराघटित भविष्यत्)

(१६) पूर्णसंकेतार्थकाल (पुराघटित सभाव्यभूत)

वास्तव में हिन्दी क्रियाओं के तीन काल होते हैं—वर्तमानकाल, भूतकाल और भविष्यत् काल। क्रिया की पूर्णता और अपूर्णता के विचार से वर्तमान काल और भूतकाल के दो दो वर्ग और हो जाते हैं। इस प्रकार तीनों कालों की कुल सख्या सात हो जाती हैं—

(क) वर्तमान काल—

(१) सामान्य वर्तमान काल

(२) अपूर्ण वर्तमान काल

(३) पूर्ण वर्तमान काल

(ख) भूतकाल—

(४) सामान्य भूतकाल

(५) अपूर्णभूतकाल

(६) पूर्ण भूतकाल

(ग) भविष्यत् काल—

(७) सामान्य भविष्यत् काल

हिन्दी में क्रियाओं को अर्थ की दृष्टि से पाँच भागों में वर्गीकृत किया जाता है—(१) निश्चयार्थ, (२) सभावनार्थ, (३) संदेहार्थ, (४) आज्ञार्थ, (५) संकेतार्थ।

(१) निश्चयार्थ—क्रिया का वह रूप जिससे किसी विषय का निश्चय सूचित होता है, निश्चयार्थ कहलाता है, यथा—

सीता पुस्तक पढ़ती है।
वे घर चले गये हैं।
राम आगरा गया।
श्याम बनारस में रहता था।
आप मेरे साथ खेले थे।
हम गीत गाते रहेंगे।

(२) **सभावनार्थ**—क्रिया का वह रूप जिससे अनुमान, इच्छा, कर्तव्य आदि का बोध होता है, उसे सभावनार्थ कहते हैं, यथा—

शायद वह बाजार जाय (अनुमान)

तुम आनद से रहो। (इच्छा)

आप उत्तीर्ण होते रहें। (इच्छा)

(३) **सदेहार्थ**—क्रिया न इस अश मे किसी बात का सदेह सूचित होता है, यथा—

वह पढता होगा।

वे सोते होंगे।

(४) **आज्ञार्थ**—जिस क्रिया रूप से आज्ञा, उपदेश, निषेध आदि का बोध होता है, उसे आज्ञार्थ कहते हैं, यथा—

तुम लोग यहीं रहो।

मैं अब जाऊँ ?

क्या मैं आ सकता हूँ।

(५) **सकेतार्थ**—यह क्रिया रूप ऐसी दो घटनाओं की असिद्धि सूचित करता है, जिसम कार्य कारण का सम्बन्ध होता ह, यथा—

यदि तुम परिश्रम करते तो अवश्य उत्तीर्ण हो जाते।

यदि राम आ गया होता, तो मेरा काम न बिगड़ता।

क्रिया का पूर्णता, अपूर्णता तथा उसक अर्थ का आधार लकर भी कालों का वर्गीकरण किया जा सकता है। यह वर्गीकरण अपेक्षाकृत अधिक तर्कसगत और वैज्ञानिक है—

[क] निश्चयार्थ—

१—सामान्य वर्तमान काल

२—पूर्ण वर्तमान काल

३—सामान्य भूतकाल

४—अपूर्ण भूतकाल

५—पूर्णभूतकाल

६—सामान्य भविष्यत् काल

[ख] सभावनार्थ—

७—सभाव्य वतमान काल

८—सभाव्य भूतकाल

९—सभाव्य भविष्यत् काल

[ग] सदेहार्थ—

१०-सदिग्ध वर्तमानकाल

११-सदिग्ध भूतकाल

[घ] आज्ञार्थ—

१२-प्रत्यक्ष विधि (वतमान आज्ञार्थ)

१३-परोक्ष विधि (भविष्य आज्ञार्थ)

[ङ] सकेतार्थ—

१४–सामा य सकेतार्थकाल

१५-अपूर्ण सकेतार्थकाल

१६-पूर्ण सकेतार्थकाल

क्रिया के उक्त कालों के रचनागत आधार को लेकर ही हम अगले अध्यायों म यथास्थान विवेचन करेंगे।

कृदत

प्रत्ययों स निर्मित श दों क दो भद किये जाते हैं- १) कृदन्त (२) तद्धित। धातुओं के अनतर जिस प्रत्यय को जोड़कर सज्ञा, विशेषण अथवा अ यय बनता है, उसे कृत् प्रत्यय कहते हैं, और कृत् प्रत्ययों के योग से जिस श द की निमिति होती है, उसे कृदन्त की सज्ञा दी जाती है। धातुओं क अतिरिक्त शेष सभी शब्दों क पश्चात् प्रत्यय लगाने से जो शब्द बनते हैं, उ हें तद्धित कहते हैं, यथा-

जाता – जा + ता (कृदन्त)

भूखा – भूख + आ (तद्धित)

हिन्दी म कृदन्त और तद्धित श द रूढ के रूप म गृहीत हैं। सस्कृत म ये यौगिक श द हैं। हिन्दी म ये ठीक उसी अथ में रूढ श द हैं, जिस अथ में इनका प्रयोग सस्कृत वैयाकरणों ने किया है।[७५]

७५-प० किशोरदास वाजपेयी हिन्दी श दानुशासन, पृ० २६५।

कृत् और तिङ् प्रत्यय

कृदत सज्ञा विशेपण अथवा अ यय होते हैं, निया नहीं, किन्तु तिङन्त सदा क्रिया ही होते हैं। जो कृदत सज्ञा अथवा विशेपण होते हैं, उनमें रूपान्तर दिखलाइ पड़ता है, जो अ यय हाते हैं, वे सदा एक रूप रहते हैं। विधि, आदेश, प्रार्थना, अनुमति, प्रश्न आदि के भाव तिङन्त क्रियाओं द्वारा द्योतित होते हैं। कर्ता या कर्म के लिंग भेद के कारण इनमें कोइ भी रूपांतर नहीं होता, यथा–राम पुस्तक पढे। शीला पुस्तक पढे।

हिन्दी कृदतों की विभिन्न कोटियाँ

हिन्दी कृदन्तों के मुख्य निम्नलिखित रूप पाये जाते हैं—

१–क्रियार्थक सज्ञा
२–कर्तृवाचक सज्ञा
३–वर्तमानकालिक कृदन्त
४–भूतकालिक कृदन्त
५–पूर्वकालिक कृदन्त
६–तात्कालिक कृदन्त
७–अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त
८–पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त

उक्त कृदन्तज रूपों में प्रथम चार–क्रियार्थक सज्ञा, कर्तृवाचक सज्ञा, वर्तमानकालिक कृदन्त और भूतकालिक कृदन्त, विकारी कृदन्त हैं। इनका उपयोग बहुधा सज्ञावत् और विशेषणवत् होता है। अत इनमें लिंग, पुरुष वचन आदि के कारण विकृति देखी जाती है। नीचे के क्रमश चार कृदन्तज रूप पूर्वकालिक, तात्कालिक, अपूर्ण क्रियाद्योतक और पूर्ण क्रिया द्योतक अविकारी या अ यय हैं, जिनका प्रयोग क्रियाविशेषणवत् और कभी कभी सबध-सूचक अव्यय की भाँति होता है। उक्त आठो कृदन्तज रूपों का क्रमश सक्षिप्त विवेचन नीचे किया जा रहा है।

१—क्रियार्थक सज्ञा—क्रिया के दो रूप होते हैं–साधारण और विकृत रूप। धातु के अन्त में 'ना' जोड़ने से क्रिया के साधारण रूप की रचना होती है, जैसे - जा + ना = जाना, पढ़ + ना = पढ़ना आदि। धातु में विशेष विकार लाने पर वाक्य में जब उसे व्यवहार योग्य बना दिया जाता है तो उसे क्रिया का विकृत रूप कहते हैं, जैसे—पढ़ + ता = पढ़ता, पढ़ + आ = पढ़ा।

क्रिया के साधारण रूप को ही हिन्दी में क्रियार्थक संज्ञा के नाम से अभिहित करते हैं। क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग विशेषणवत् होता है। यह पुल्लिंग एकवचन में प्रयुक्त होती है। संबोधन कारक को छोड़कर इसकी रचना शेष कारकों में आकारांत पुल्लिंग के समान होती है[७६]। जैसे—खाना, पीना, रहना, सोना।

२—कर्तृवाचक संज्ञा—क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप में 'वाला' या 'हारा' प्रत्यय लगाने से कर्तृवाचक संज्ञा बनती है, जैसे—वाला-पढ़ने वाला, जाने वाला, रहने वाला। हारा—पढ़नहारा खेवनहारा, चलनहारा।

'हारा' प्रत्यय का प्रयोग मध्ययुगीन हिंदी का रूप है, आजकल 'वाला' प्रत्यय का ही हिन्दी में व्यवहार होता है।

३—वर्तमानकालिक कृदंत—वह कृदन्त रूप जो क्रिया का वर्तमान कालिक अवस्था को सूचित करता है, उसे वर्तमानकालिक कृदंत कहते हैं। हिंदी में धातु के अन्त में 'ता' प्रत्यय लगाने से वर्तमानकालिक कृदंत बनता है, यथा—जा+ता—जाता, गा+ता—गाता इत्यादि। यह विशेषण के समान प्रयुक्त होता है और इसका रूप आकारांत विशेषण के समान बदलता है, यथा-खेलता हुआ, पढ़ता हुआ, जाता हुआ आदि।

४ भूतकालिक कृदन्त—कृदंत का वह रूप जिससे क्रिया के भूत कालिक अर्थ की प्रतीति हो, भूतकालिक कृदंत कहलाता है। धातु के अन्त में 'आ' प्रत्यय का व्यवहार करने पर हिन्दी में इस कृदंत की रचना होती है यथा—

पढ़+आ=पढ़ा, चल+आ=चला, खेल+आ=खेला। स्त्रीलिंग में 'आ' के स्थान पर 'ई' का प्रयोग होता है, यथा-

पढ़+ई=पढ़ी, चल+ई=चली, खेल+ई=खेली। इस कृदंत का प्रयोग प्रायः विशेषण के समान होता है, यथा—

पढ़ा हुआ पत्र, चला हुई औरत। पर इसका प्रयोग कभी-कभी संज्ञावत् भी होता है, यथा-भूले हुए को रास्ता दिखलाना।

५—पूर्वकालिक कृदंत—वह कृदंत रूप जिससे प्रथम क्रिया की सिद्धि दूसरी क्रिया के आरंभ होने के पहले हो जाय, पूर्वकालिक कृदन्त

---

७६. का०प्र०गु० हिन्दी व्याकरण, ३७२।

कहलाता है, यथा—वह पढ़कर उठा। इस वाक्य म 'उठने' का काय 'पढ़ने' के बाद हुआ, अत 'पढकर' पूर्वकालिक कृदन्तज रूप है। इस प्रकार पूर्वकालिक कृद त से मुख्य क्रिया के पहले होने वाले व्यापार की सूचना प्राप्त होती है। क्रिया की समाप्ति के अतिरिक्त पूव कालिक कृदन्त से काय-कारण, रीति, द्वारा, विरोध आदि के भी भाव सूचित होते हैं, यथा—

कायकारण—सब कुछ दान करके वह चालीस दिन तक भूखा रहा।
द्वारा—आपका आश्रय लेकर हम आग बढ़ेंग।
रीति—लड़का दौड़कर चलता है।
विरोध—अमीर होकर भी वह इमानदार है।

पूवकालिक कृदन्त बहुधा धातु के अन्त म 'क' 'कर या 'करके लगाने से बनता है यथा—जाने, जाकर, जा करके।

६—तात्कालिक कृदन्त—जिस कृदन्तज रूप से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की समाप्ति का बोध होता है, उस तात्कालिक कृदन्त कहते हैं, यथा—यह बात सुनते ही वह अन्दर आ गया। परिनिष्ठित हिंदी म वर्तमानकालिक कृदत क 'ता' को 'ते' आदेश करके उसके पश्चात् 'ही' जोड़ देने से इस कृदत की रचना होती है, यथा—पढ़ते ही, जाते ही, खाते ही इत्यादि।

७—अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत—इस कृदतज रूप से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार का अपूर्णता सूचित होती ह। अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत तात्कालिक कृदत अव्यय का भाँति 'ता' को, 'ते' आदेश करने से बनता है, परन्तु उसके साथ 'ही' नहीं जोड़ा जाता यथा—पढ़ते, लिखते, सोते, खाते आदि।

उदाहरण—आपके जीते हमें क्या कष्ट है?
मुझसे यह प्रकट करते नहीं बनता।

८—पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त—भूतकालिक कृदत विशेषण के अत्य 'आ' को 'ए' आदश करने स पूर्ण क्रियाद्योतक कृदत बनता है, यथा—पढ़े, लिखे, चले, रहे आदि। इस कृदत से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की पूर्णता सूचित होती है, यथा—

मुझे कक्षा में गये तीन महीने हो गये।
उसके मरे चार घंटे हो रहे हैं।

क्रिया के साधारण रूप को ही हिन्दी में क्रियार्थक संज्ञा के नाम से अभिहित करते हैं। क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग विशेषणवत् होता है। यह पुल्लिंग एकवचन में प्रयुक्त होती है। संबोधन कारक को छोड़कर इसकी रचना शेष कारकों में आकारांत पुल्लिंग के समान होती है[७६]। जैसे—खाना, पीना, रहना, सोना।

२—कर्तृवाचक संज्ञा—क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप में 'वाला' या 'हारा' प्रत्यय लगाने से कर्तृवाचक संज्ञा बनती है, जैसे—वाला-पढ़ने वाला, जाने वाला, रहने वाला। हारा—पढ़नहारा, खेवनहारा, चलनहारा। 'हारा' प्रत्यय का प्रयोग मध्ययुगीन हिंदी का रूप है, आजकल 'वाला' प्रत्यय का ही हिन्दी में व्यवहार होता है।

३—वर्तमानकालिक कृदंत—वह कृदंतज रूप जो क्रिया का वर्तमान कालिक अवस्था को सूचित करता है, उसे वर्तमानकालिक कृदंत कहते हैं। हिंदी में धातु के अंत में 'ता' प्रत्यय लगाने से वर्तमानकालिक कृदंत बनता है, यथा—जा + ता = जाता, खा + ता = खाता इत्यादि। यह विशेषण के समान प्रयुक्त होता है और इसका रूप आकारांत विशेषण के समान बदलता है, यथा-खेलता हुआ, पढ़ता हुआ, खाता हुआ आदि।

४ भूतकालिक कृदंत—कृदंत का वह रूप जिससे क्रिया के भूत कालिक अर्थ की प्रतीति हो, भूतकालिक कृदंत कहलाता है। धातु के अन्त में 'आ' प्रत्यय का व्यवहार करने पर हिन्दी में इस कृदंत की रचना होती है यथा—

पढ़ + आ = पढ़ा, चल + आ = चला, खेल + आ = खेला। स्त्रीलिंग में 'आ' के स्थान पर 'ई' का प्रयोग होता है, यथा—

पढ़ + ई = पढ़ी, चल + ई = चली, खेल + ई = खेली। इस कृदन्त का प्रयोग प्राय विशेषण के समान होता है, यथा—

पढ़ा हुआ ग्रंथ, चली हुई औरत। पर इसका प्रयोग कभी-कभी संज्ञा वत् भी होता है, यथा-भूले हुए को रास्ता दिखलाओ।

५—पूर्वकालिक कृदन्त—वह कृदंतज रूप जिसकी प्रथम क्रिया की सिद्धि दूसरी क्रिया के आरंभ होने के पहले हो जाय, पूर्वकालिक कृदन्त

---

७६ का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण, ३७२।

कहलाता है, यथा—वह पढकर उठा। इस वाक्य म 'उठने' का काय 'पढने' के बाद हुआ, अत 'पढकर' पूर्वकालिक कृदन्तज रूप है। इस प्रकार पूवकालिक कृदन्त से मुख्य क्रिया के पहले होने वाले व्यापार की सूचना प्राप्त होती है। क्रिया की समाप्ति के अतिरिक्त पूव कालिक कृदन्त से काय-कारण, रीति, द्वारा, विरोध आदि के भी भाव सूचित होते हैं, यथा—

कायकारण—सब कुछ दान करके वह चालीस दिन तक भूखा रहा।
द्वारा—आपका आश्रय लेकर हम आगे बढ़ेंगे।
रीति—लडका दौड़कर चलता है।
विरोध—अमार होकर भी वह इमानदार है।

पूवकालिक कृदन्त बहुधा धातु के अन्त म 'क' 'कर' या 'करके' लगाने से बनता है, यथा—आके, जाकर, जा करके।

६-तात्कालिक कृदन्त-जिस कृदन्तज रूप से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की समाप्ति का बोध होता है, उस तात्कालिक कृदन्त कहते हैं, यथा—यह बात सुनते ही वह अन्दर आ गया। परिनिष्ठित हिन्दी म वर्तमानकालिक कृदत के 'ता' को 'ते' आदेश करके उसके पश्चात् 'ही' जोड़ देने स इस कृदत की रचना होती है, यथा—पढते ही, जाते ही, खाते ही इत्यादि।

७—अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत—इस कृदतज रूप से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की अपूर्णता सूचित होता है। अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत तात्कालिक कृदत अव्यय की भाँति 'ता' को, 'ते' आदेश करने से बनता है, परन्तु उसके साथ 'ही' नहीं जोड़ा जाता यथा—पढ़ते, लिखते, सोते, खाते आदि।

उदाहरण—आपके जीते हम क्या कष्ट है?
मुझसे यह प्रकट करते नहीं बनता।

८—पूर्ण क्रियाद्योतक कृदत—भूतकालिक कृदत विशेषण के अन्त्य 'आ' को 'ए' आदेश करने से पूर्ण क्रियाद्योतक कृदत बनता है, यथा—पढ़े, लिखे, चले, रहे आदि। इस कृदत से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की पूर्णता सूचित होती है, यथा—

मुझे कक्षा में गये तीन महीने हो गये।
उसके मरे चार घंटे हो रहे हैं।

क्रिया के साधारण रूप को ही हिन्दी म क्रियाथक सज्ञा क नाम स अभिहित करते हैं। क्रियाथक सज्ञा का प्रयोग विशेषणवत् होना है। यह पुल्लिग एकवचन म प्रयुक्त होती है। सबोधन कारक को छोड़कर इसकी रचना शेष कारकों म आकारात पुल्लिग क समान होती है[७८]। जैसे—खाना, पीना, रहना, सोना।

२—**कर्तृवाचक सज्ञा**—क्रियाथक सज्ञा क विकृत रूप म 'वाला' या 'हारा' प्रत्यय लगाने से कर्तृवाचक सज्ञा बनती है, जैसे—वाला-पढ़ने वाला, जाने वाला, रहने वाला। हारा—पढ़नहारा, खवनहारा, चलनहारा। 'हारा' प्रत्यय का प्रयोग मध्ययुगीन हिंदी का रूप है, आजकल 'वाला प्रत्यय का ही हिन्दी म व्यवहार होता है।

३—**वर्तमानकालिक कृदत**—वह कृदतन रूप जो क्रिया का वतमान कालिक अवस्था को सूचित करता है, उसे वतमानकालिक कृदत कहते हैं। हिंदी म धातु के अत म 'ता' प्रत्यय लगाने से वतमानकालिक कृदत बनता है, यथा—जा+ता—जाता, खा+ता—खाता इत्यादि। यह विशेषण क समान प्रयुक्त होता है और इसका रूप आकारान्त विशेषण क समान बदलता है, यथा-खेलता हुआ, पढ़ता हुआ, गाता हुआ आदि।

४ **भूतकालिक कृदत**—कृदत का वह रूप जिससे क्रिया क भूत कालिक अर्थ की प्रतीति हो, भूतकालिक कृदत कहलाता है। धातु के अन्त म 'आ' प्रत्यय का व्यवहार करने पर हिन्दी म इस कृदत की रचना होता ह यथा—

पढ़+आ=पढ़ा, चल+आ=चला, खेल+आ=खेला। स्त्रीलिंग म 'आ' के स्थान पर 'इ' का प्रयोग होता है, यथा-

पढ़+इ=पढ़ी, चल+इ=चली, खेल+इ=खेली। इस कृदत का प्रयोग प्राय विशेषण क समान होता है, यथा—

पढ़ा हुआ ग्रथ, चली हुई औरत। पर इसका प्रयोग कभी-कभी सज्ञा वत् भी होता है, यथा-भूले हुए को रास्ता दिखलाओ।

५—**पूर्वकालिक कृदत**—वह कृदतज रूप जिसकी प्रथम क्रिया की सिद्धि दूसरी क्रिया क आरभ होने के पहले हो जाय, पूर्वकालिक कृदन्त

---

७८ का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण, ३७२।

कहलाता है, यथा—वह पढ़कर उठा। इस वाक्य में 'उठने' का कार्य 'पढ़ने' के बाद हुआ, अतः 'पढ़कर' पूर्वकालिक कृदन्तज रूप है। इस प्रकार पूर्वकालिक कृदन्त से मुख्य क्रिया के पहले होने वाले व्यापार की सूचना प्राप्त होती है। क्रिया की समाप्ति के अतिरिक्त पूर्वकालिक कृदन्त से कार्य-कारण, रीति, द्वारा, विरोध आदि के भी भाव सूचित होते हैं, यथा—

कार्यकारण—सब कुछ दान करके वह चालीस दिन तक भूखा रहा।
द्वारा—आपका आश्रय लेकर हम आगे बढ़ेंगे।
रीति—लड़का दौड़कर चलता है।
विरोध—अमीर होकर भी वह ईमानदार है।

पूर्वकालिक कृदन्त बहुधा धातु के अन्त में 'के' 'कर' या 'करके' लगाने से बनता है, यथा—जाके, जाकर, जा करके।

६—तात्कालिक कृदन्त—जिस कृदन्तज रूप से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की समाप्ति का बोध होता है, उसे तात्कालिक कृदन्त कहते हैं, यथा—यह बात सुनते ही वह अन्दर आ गया। परिनिष्ठित हिंदी में वर्तमानकालिक कृदन्त के 'ता' को 'ते' आदेश करके उसके पश्चात् 'ही' जोड़ देने से इस कृदन्त की रचना होती है, यथा—पढ़ते ही, जाते ही, सोते ही इत्यादि।

७—अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त—इस कृदन्तज रूप से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की अपूर्णता सूचित होती है। अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त तात्कालिक कृदन्त अव्यय की भाँति 'ता' को, 'ते' आदेश करने से बनता है, परन्तु उसके साथ 'ही' नहीं जोड़ा जाता यथा—पढ़ते, लिखते, सोते, खाते आदि।

उदाहरण—आपने जीते हम क्या कहें?
मुझसे यह प्रकट करते नहीं बनता।

८—पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त—भूतकालिक कृदन्त विशेषण के अन्त्य 'आ' को 'ए' आदेश करने से पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त बनता है, यथा—पढ़े, लिखे, चले, रहे आदि। इस कृदन्त से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की पूर्णता सूचित होती है, यथा—

मुझे कक्षा में गये तीन महीने हो गये।
उसके मरे चार घंटे हो रहे हैं।

तात्कालिक कृदत, अपूर्ण क्रियाद्योतक और पूर्ण क्रियाद्योतक कृदत वास्तव म वर्तमानकालिक और भूतकालिक कृदतों के विशेष प्रयोग हैं। इनका योग कतिपय सयुक्त क्रियाओं और स्वतन्त्र कर्ता के साथ होता है तथा ये कभी-कभी क्रियाविशेषणवत् भी प्रयुक्त होते हैं। अत कृदतों के वर्गीकरण में इन्हें भिन्न स्थान प्रदान किया गया है।[७७] कृदतों की रचना, अर्थ और प्रयोग के सम्बन्ध म विस्तृत रूप से अगले अध्यायों म विचार किया जायगा।

क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन

हिंदी क्रियाओं म तीन पुरुष (उत्तम, मध्यम और अन्य), दो लिंग (पुल्लिंग और स्त्रीलिंग) और दो वचन (एकवचन और बहुवचन) पाये जाते हैं। यहां बहुधा पुल्लिंग एकवचन के लिये 'आ' बहुवचन के लिए 'ए' तथा स्त्रीलिंग एकवचन और बहुवचन के लिये क्रमश 'ई' और 'ईं' या इ प्रत्यय का प्रयोग होता है यथा—मैं पढ़ता हूँ, तू पढ़ता है, वह पढ़ता है (पुल्लिंग एकवचन , हम पढ़ते हैं, तुम पढ़ते हो, वे पढ़ते हैं (पुल्लिंग बहुवचन म पढ़ती हूँ, तू पढ़ती है, वह पढ़ती है (स्त्रीलिंग एकवचन), हम पढ़ती हैं, तुम पढ़ती हो, वे पढ़ती हैं (स्त्रीलिंग बहुवचन)। हिन्दी की तिङन्त क्रियाओं (सभाव्य भविष्यत्, प्रत्यक्ष विधि और परोक्ष विधि) के रूपों म लिंग के परिणामस्वरूप कोई अन्तर नहीं दिखाई देता, यथा—मैं जाऊँ, तू जा, वह जाय (पुल्लिंग या स्त्रीलिंग एकवचन)। हम जायें, तुम जाओ, वे जायें (पुल्लिंग या स्त्रीलिंग बहुवचन)।

प्रयोग

कर्ता या कर्म के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार क्रिया म जो अन्विति पायी जाती है, उसे प्रयोग कहते हैं। यह अन्विति तीन प्रकार से होती है—प्रथम कर्ता के पुरुष, लिंग और वचन के कारण, द्वितीय कर्म के पुरुष, लिंग और वचन के कारण। तीसरी अन्विति वह होती है, जिसम क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन न तो कर्ता के आधार पर ही होते हैं और न तो कर्म के अनुसार ही चलते हैं। ऐसी अवस्था म क्रिया सदा अन्य-पुरुष, पुल्लिंग, एकवचन म रहती है। इन तीनों अन्वितियों को क्रमश-कर्तरि, कर्मणि और भाव प्रयोग की सज्ञा दी जाती है, यथा—

---

७७ का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण, १८४ प० २७६

लड़का घर जाता है।
आप वहाँ चलते हैं। } कर्तरि प्रयोग
तुम विद्यालय आते हो।

मैंने पुस्तक पढ़ी।
सीता ने ग्रंथ पढ़ा। } कर्मणिप्रयोग
हमने पुस्तक पढ़ा।

आपने मुझे बुलाया।
शीला ने मुझे बुलाया। } भावे प्रयोग
सबने मुझे बुलाया।
हमने सबको बुलाया।

उक्त तीनों प्रयोगों के अर्थ के सम्बन्ध में ऊपर विचार किया गया है। नीचे अलग-अलग इनके सम्बन्ध में विचार किया जायगा।

कर्तरि प्रयोग—भूतकालिक कृदन्त से निर्मित ऐसे काल जिनमें सकर्मक क्रिया का व्यवहार हुआ है, को छोड़कर कर्तृवाच्य के समस्त कालों तथा अकर्मक क्रिया के सब कालों में कर्तरि प्रयोग होता है। बोलना, भूलना, बकना, लाना, जानना, आदि सकर्मक क्रियायें उक्त नियम की अपवाद हैं। इनका प्रयोग कर्तरि होता है। इसी प्रकार से नहाना, छींकना आदि अकर्मक क्रियायें कर्तरि प्रयोग में न आकर भावे प्रयोग में आती हैं,[७८] यथा—

वह कुछ नहीं बोला।
तुम उसको भूले।
हमने इसको समझा। } कर्तरि प्रयोग
वह फल लाया।

हमने गंगा में नहाया
गीता ने गंगा में नहाया } भावे प्रयोग
मैंने गंगा में नहाया

७८—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ; ३६६ पृ० २६६।

उसने छींका
तुमने छींका } भाव प्रयोग
हमने छींका

कर्मणि प्रयोग– हिन्दी में कर्मणि प्रयोग के दो रूप उपलब्ध होते हैं (१) कर्तृ वाच्य कर्मणि प्रयोग (२) कर्मवाच्य कर्मणि प्रयोग। कर्तृवाच्य की सकर्मक क्रियायें भूतकालिक कृदन्त से बने हुये कालों में कर्मणि प्रयोग के रूप में उपलब्ध होता हैं, यथा—मैंने पत्र पढ़ा, उसने पुस्तक पढ़ी। आपने चित्र देखा, राम ने चिड़िया देखी।

ऐसी क्रियायें अप्रत्यय कर्मकारक के साथ प्रयुक्त होती हैं, परन्तु ऐसी अवस्था में कर्ता सप्रत्यय रहता है।

कर्मवाच्य कर्मणि प्रयोग के अन्तर्गत कर्मवाच्य की समस्त क्रियायें प्रयुक्त होती हैं। ऐसी अवस्था में कर्म कारक प्रायः अप्रत्यय होता है, यथा—

पत्र लिखा गया।
पुस्तकें पढ़ी गई।
ग्रन्थ लिखे गये।
नाटक दिखाया जायेगा।

भावे प्रयोग—भावे प्रयोग के तीन रूप उपलब्ध होते हैं—

(१) अकर्मक क्रिया सप्रत्यय कर्ताकारक के साथ और सकर्मक क्रिया सप्रत्यय कर्ता और कर्मकारक के साथ प्रयुक्त होती है, यथा—

मैंने अभी छींका है।
आपने मुझे बुलाया था।
हमने गंगा जी में नहाया है।

(२) कर्म सप्रत्यय व्यवहृत होता है, यहाँ 'कर्ता' प्रायः लुप्त रहता है। आवश्यकता पड़ने पर उसे द्वारा लगाकर अथवा 'करणकारक' का प्रयोग कर प्रकट किया जा सकता है, यथा—

उन्हें विद्यालय भेज दिया जायगा।
लड़कों में मिठाइयाँ बाँट दी जायेंगी।
मेरे द्वारा पत्र लिखा गया।

(३) केवल अकर्मक क्रिया का प्रयोग होता है, कर्ता की आवश्यकता पड़ने पर उसे करणकारक में रखते हैं, यथा—

यहाँ रहा नहीं जाता।
मुझसे अब चला नहीं जाता।

भावे प्रयोग के उक्त तीनों रूपों का क्रमश कर्तृवाच्य भावे प्रयोग, कमवाच्य भावे प्रयोग और भाववाच्य भावे प्रयोग का सना दी जाती है।

सहायक क्रिया

एसी क्रियायें जोकि मुख्य क्रिया के सहायतार्थ प्रयुक्त होती हैं, उन्हें सहायक क्रिया कहते हैं। हिन्दी म हूँ, हूं, है, हो, था, थे, थी, थीं आदि सहायक क्रियायें हैं। ये क्रियायें स्वतन्त्र रूप से भी प्रयुक्त होती हैं, उस समय ये किसी सज्ञा या विशेषण शब्द की अथप्रतीति म सहायक होती हैं, यथा—राम एक लड़का है। तू बुद्धिमान है।

हिन्दी में सहायक क्रियाओं के दो रूप उपलब्ध होते हैं—(१) स्थिति दशक (२) विकारदर्शक। एसी सहायक क्रियायें जो अपने मूल रूप म व्यवहृत होती हैं, तथा जिनम किसी प्रत्यय विशेष के जोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती, स्थिति दशक सहायक क्रियायें कहलाती ह। सामान्य वत मानकाल और सामान्य भूतकाल का सहायक क्रियायें स्थिति दशक हैं। विकारदशक सहायक क्रियायें वे हैं, जिनम प्रत्यय विशेष लगाकर विकार ला दिया जाता है। सभाव्य भविष्यत्, सामान्य भविष्यत्, सामान्य सकेताथ काल आदि कालों म व्यवहृत सहायक क्रियायें विकार दशक होती हैं।

सहायक क्रियाओं का हिन्दी म दो रूपों म प्रयोग होता ह (१) स्वतन्त्र प्रयोग २) सयुक्त कालों म, यथा—

यह राम की पुस्तक है।
तुम मेरे साथ हो।
मैं आपके ही पास हूँ।
हम आज वहाँ नहीं थे।
} स्वतन्त्र प्रयोग

राम पुस्तक पढता ह।
वह घर गया था।
आप मेरे विद्यालय में पढ़ते थे।
वे बाजार गये होंगे।
} सयुक्त काल।

सहायक क्रियाओं के सम्बध म अगले अध्यायों म विस्तृत विवचन प्रस्तुत किया जायगा।

सयुक्त क्रियायें

ऐसी क्रियायें जिनका निर्माण धातुओं के योग से अथवा उनके पूर्व कोई सज्ञा, क्रियाजात विशेष्य अथवा कुछ विशष कृदन्तों के सयोग से होता है, उन्हें सयुक्त क्रियायें कहते हैं, जैसे—चल देना, जाने लगना, पढ़ सकना इत्यादि। इन उदाहरणों म 'चल' 'जाने' और 'पढ़' कृदन्त हैं और इनके पश्चात् देना, लगना और सकना क्रियायें जोड़ी गई हैं।

सयुक्त क्रिया का निश्चय वाक्य के अथ से होता है उदा०—'राम सो गया'। इस वाक्य म मुख्य क्रिया 'सोना' है, जाना नहीं। 'जाना' यहाँ सहकारी क्रिया है। अतएव, सो गया सयुक्त क्रिया है।

सयुक्त क्रिया और सयुक्त काल

अथ और रूप दोनों दृष्टियों स सयुक्त क्रिया और सयुक्त काल म काफी अन्तर ह। सयुक्त क्रियाओं म प्रयुक्त होनेवाली सहकारी क्रियाओं से किसी काल विशेष का अथ नहीं सूचित होता। सयुक्त क्रियाओं से व्यक्त होनेवाले अथ कालों के अथ स भी भिन्न होते हैं। साथ ही साथ प्राय सयुक्त क्रियाओं म प्रयुक्त होनेवाले कृदन्त सयुक्त कालों की रचना म प्रयुक्त होनेवाले कृदन्तज रूपों स भी भिन्न होते ह, जैसे—वह 'पढ़ता था' इस वाक्य म 'पढ़ता था' सयुक्त काल है, परन्तु वह 'पढ़ सकता था' म प्रयुक्त 'पढ़ सकता' सयुक्त क्रिया है। हिन्दी के य दसों काल—सामान्य वतमान, अपूर्ण भूतकाल, सम्भाव्य वर्तमानकाल, सदिग्ध वतमानकाल, अपूर्ण सकेतार्थकाल (वतमानकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया), आसन्न भूतकाल, पूर्ण भूतकाल, सम्भाव्य भूतकाल, सदिग्ध भूतकाल और पूर्ण सकेतार्थ काल (भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया) सयुक्त काल के अन्तगत आते हैं। इन्हें हम सयुक्त क्रिया के नाम स अभिहित नहीं कर सकते। अगले अध्यायों म इनका विस्तृत अध्ययन किया जायगा। यहा पर सक्षेप म इनके वर्गीकरण पर विचार किया जाता ह।

अथ के विचार स हिन्दी का सयुक्त क्रियाओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जाता ह—

१–आवश्यकता बोधक
२–आरम्भ बोधक
३–अनुमति बोधक
४–अवकाश बोधक
५–नित्यता बोधक
६–अपूर्णता बोधक
७–निरन्तरता बोधक
८–निश्चय बोधक
९–तत्परता बोधक
१०–इच्छा बोधक
११–अभ्यास बोधक
१२–अवधारण बोधक
१३–शक्ति बोधक
१४–पूर्णता बोधक
१५–योग्यता बोधक
१६–नाम बोधक

रूप के विचार से इनके आठ वर्ग हो सकते हैं—

१—क्रियार्थक संज्ञा के योग से निर्मित—आवश्यकता बोधक, आरम्भ बोधक, अनुमति बोधक और अवकाश बोधक संयुक्त क्रियायें।

२—वर्तमानकालिक कृदन्त के योग से निर्मित—नित्यता बोधक, अपूर्णता बोधक, निरन्तरता बोधक और निश्चय बोधक संयुक्त क्रियायें।

३—भूतकालिक कृदन्त के योग से निर्मित—तत्परता बोधक, इच्छा बोधक और अभ्यास बोधक संयुक्त क्रियायें।

४—पूर्वकालिक कृदन्त के योग से निर्मित—अवधारण बोधक, शक्ति बोधक और पूर्णता बोधक संयुक्त क्रियायें।

५—अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त के योग से निर्मित—योग्यता बोधक संयुक्त क्रिया।

६—पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त के योग से निर्मित—निरन्तरता बोधक और निश्चय बोधक संयुक्त क्रियायें।

७—संज्ञा या विशेषण के योग से निर्मित—नाम बोधक क्रिया।

८—पुनरुक्त संयुक्त क्रियायें।

उक्त संयुक्त क्रियाओं का विस्तृत अध्ययन दोनों दृष्टियों (अर्थ और रूप की दृष्टि) से अगले अध्यायों में प्रसंगानुसार किया जायगा।

द्वितीय परिच्छेद

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के क्रिया रूपों की प्रकृति का अध्ययन

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के क्रिया रूपों की शृङ्खला आधुनिक आय भाषा की क्रियाओं को संयुक्त करने में समथ है। आज जब भी कोइ भाषा वैज्ञानिक किसी भी आधुनिक भारतीय आयभाषा की विवेचना करने बैठता है, तो उसे अपने विचारों को उस स्थिति तक ले जाने की आवश्यकता पड़ती है, जहाँ से उसने बोलना सीखा था। भाषा का विकास मनुष्य द्वारा हुआ। प्रारम्भिक अवस्था में अपने विचारों को व्यक्त करने क लिये मनुष्य को माध्यम ढूँढना पड़ा। इसके लिये उसके पास ध्वनि ही एक ऐसा आधार था, जिसके अवलम्बन से वह किसी से कुछ कह सकने म समथ हो सकता था। पत् पत् की ध्वनि से पत्तों के गिरने के माध्यम से उसने गिरने के लिये पत् धातु तथा गिरनेवाली वस्तु 'पत्र' का पता लगाया[१]। इसी प्रकार से अन्य धातुओं की उत्पत्ति भी ध्वनियों के आधार पर मानी जाती है। अत स्पष्ट है कि भाषा का जन्म ही क्रियाओं द्वारा हुआ। वाक्य की विधेयता क्रिया पर निभर करती है, इसलिये भाषा का क्रिया प्रधान कहते हैं।

भारत म आर्यों क आगमन का समय निश्चित रूप स नहीं बतलाया जा सकता, फिर भी विद्वानों ने उनके आगमन के समय का अनुमान २०००–१५०० इ० पू० लगाया है। जो कुछ भी हो, आय चाहे जब भारत में आये हों, उस समय वे अपनी संस्कृति और भाषा को भी साथ ले आये, जिनका अमित प्रभाव भारतीय अनाय जातियों पर भी पड़ा।

आर्यों को अपने प्रसार के लिये अनेक विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ा, उनक प्रसार में भी कइ शताब्दियाँ बीत गइ। फिर भी प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की अटूट शृङ्खला आज भी हम उपलब्ध है, जिसक सहारे भाषा के विकास की प्रत्येक स्थिति का भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करना भाषावैज्ञानिकों के लिये सरल हो गया।

१–प० किशोरीदास वाजपेयी हिन्दी शब्दानुशासन, पृ० ३९८।

भारतीय आर्य भाषाओं का विकास वैदिक कालीन साहित्य से माना जाता है। इससे पहले भारत में किसी भी प्रकार का साहित्य प्राप्त नहीं होता। विकासक्रम की दृष्टि से भारतीय आर्यभाषाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है—

१—प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (वैदिक और लौकिक संस्कृत)

२—मध्य भारतीय आर्यभाषा (पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश)

३—आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (हिंदी, बंगाली, गुजराती, मराठी, सिंधी आदि)

उपर्युक्त भारतीय आर्य भाषाओं में से प्रथम वर्ग अर्थात् प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में प्राप्त क्रिया रूपों की प्रकृति का अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में किया जा रहा है। शेष दोनों वर्गों में प्राप्त क्रिया रूपों का अध्ययन अगले अध्यायों में किया जायगा।

धातु रूप

वैदिक संस्कृत में धातु रूपों की विविधता पाई जाती है। ग्रीक और वैदिक संस्कृत दो ही ऐसी भाषाएं हैं जिनमें धातु रूपों में तीन वचन, तीन पुरुष तथा पाँच भाव प्राप्त होते हैं।

वैदिक संस्कृत की प्रायः सभी धातुएं एकाक्षर हैं। ये धातुएँ स्वर व्यंजन हीन भी हो सकती हैं, अथवा इनमें पूर्व या पश्चात् एक या दो व्यंजन ध्वनियाँ भी उपलब्ध हो सकती हैं,[२] जैसे—इ (जाना) [स्व०], आस, आप् [स्व० व्य०], द्व [व्यं० स्व०], ब्रू [व्यं० व्यं०स्व०], स्वर् [व्यं० व्यं० स्वर०व्यंज०]।

वैदिक भाषा की धातुओं की दूसरी विशेषता 'अ' आगम का प्रयोग है। यह 'अ' आगम प्रायः धातु से पूर्व अनद्यतन (लङ्) सामान्य (लुङ्) एवं क्रियातिपत्ति (लृङ्) में प्रयुक्त होता है। जैसे—अभवत् (√भू अनद्यतन), अभार् (√भृ - धारण करना–सामान्य), अभविष्यत् (√भू क्रियातिपत्ति) इत्यादि।

वैदिक संस्कृत के धातु की तीसरी विशेषता धातु में द्वित्व की है। 'वर्तमान या लट्' में किन्हीं धातुओं में, सम्पन्न या लिट् में, सामान्य या लुङ्

२—डा० व्यास संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन पृ० १६२।

के एक भेद में तथा 'सनन्त (इच्छार्थक) एव यङन्त (अतिसयार्थक) में धातु का द्वित्व होता है , जैसे—√बुध् –बुबुध, √धा –दधा , √गम् –जगाम् , √भृ –बिभर्ति, √निज –नेनेक्ति इत्यादि ।

वेदिक सस्कृत के धातु की चौथी विशेषता धातु एव तिङ् प्रत्यय के मध्य 'विकरण' का सन्निवेश है, जैसे—पठ् + अ + ति, = पठति दीव् + य + ति = दीव्यति इत्यादि । विकरण का भिन्नता न अनुसार धातुओं को दस गणों में विभाजित किया गया है ।[३] इन दस गणों को दो भागों में बाँटा गया है—

१—अकारात 'अङ्ग' वाले गण (Thematic)

२—अकारात रहित 'अङ्ग' वाले गण (Non Thematic)

वेदिक भाषा म वर्तमान, सम्पन्न तथा सामान्यकाल के पाँचो भावों

३—दस गणों में विभक्त वदिक धातुएँ–

(१) अ' विकरण वाली (भ्वादिगण) जसे–पठति (पठ् + अ + ति) ।

(२) विकरण रहित (अदादिगण) जैसे—अत्ति (अद् + ति) ।

(३) विकरण रहित परन्तु धातु के द्वित्ववाली (जुहोत्यादि गण) जसे—[जुहोति (जु + हो + ति)–√हु] ।

(४) 'य' विकरण वाली दिवादिगण), जसे–दी यति (दीव + य + ति √दिव = क्रीड़ा करना) ।

(५) 'नु' विकरण वाली (स्वादिगण), जैसे—शक्नोति (√शक्-समथ होना) ।

(६) स्वराघात युक्त 'अ' विकरण वाली (तुदादिगण) जैसे—तुदति (तुद् + अ + ति,√तुद् - कष्ट देना) ।

(७) धातु के अतिम व्यंजन से पूर्व 'न' अथवा 'न्' के आगम वाली (रुधादिगण) जैसे—भुनक्ति (√भुज=खाना) ।

(८ 'उ' विकरण वाली (तनादिगण) जसे—तनोति (√तन= फलाना) ।

(९ 'ना' विकरण वाली (क्रियादिगण) जसे—पृणति (प - पालन करना)

(१०) 'अय' विकरण वाली (चुरादिगण), जसे—चोरयति (√चुर्-चुराना) । टी० बरो सस्कृत भाषा अनु० डॉ० व्यास पृ० ३४७ ।

म रूप उपलब्ध होते हैं। यहाँ परस्मैपद और आत्मनेपद के दो रूप होते हैं (१) अविकृत (२) विकृत। इन रूपों के अतिरिक्त वैदिक भाषा में अनेक क्रियाजात विशेषण और असमापिका क्रियाएं भी पाई जाती है जो वैदिक भाषा के क्रिया रूपों की जटिलता, परन्तु उसकी समृद्धि का द्योतन करती हैं।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के जो रूप पाणिनि के अष्टाध्यायी में वर्णित हैं, उन्हें लौकिक संस्कृत रूप की संज्ञा दी जाती है। अष्टाध्यायी (ई०पू० छठी शताब्दी) में प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (संस्कृत) का परिनिष्ठित रूप सुरक्षित मिलता है। यहाँ संस्कृत का व्यवस्थित एवं विकसित रूप प्राप्त होता है। धीरे धीरे संस्कृत की महत्ता बढ़ने लगी, और विश्व की समृद्धतम भाषाओं में इसकी गणना की जाने लगी।

वैदिक भाषा की अपेक्षा लौकिक संस्कृत भाषा सरलता की ओर बढ़ने लगी। वैदिक भाषा के स्वराघात संस्कृत में आकर लुप्त हो गये, कई शब्द रूपों का व्यवहार भी वहीं तक सीमित रह गया, उनका प्रयोग संस्कृत में न हो सका। वैदिक भाषा में प्रचलित ऐसे बहुत से शब्द हैं जिनके स्थान पर संस्कृत में केवल एक ही शब्द गृहीत हुआ है। वैदिक और लौकिक संस्कृत में सबसे बड़ी भिन्नता धातुओं में दिखाई पड़ती है। संस्कृत में धातु के विभिन्न भावों के रूप केवल वर्तमानकाल में ही प्राप्त होते हैं। वैदिक भाषा के अनेक क्रियाजात विशेषणों तथा असमापिका पदों का ग्रहण संस्कृत में अति अल्पमात्रा में हुआ है। इसके अतिरिक्त संस्कृत में अनेक नवीन धातुओं का प्रादुर्भाव हुआ। वैदिक भाषा के अभिप्राय एवं निबंध (Subjunctive and Injunctive) भावों के रूप संस्कृत में लुप्त हो गये। अभिप्राय भाव के उत्तम पुरुष के रूप 'अनुज्ञा (लोट्) भाव में विलीन हो गये और निबंध भाव के रूपों का व्यवहार केवल निषेधात्मक 'मा' अव्यय के साथ ही सीमित रह गया।[४]

वैयाकरणों ने संस्कृत भाषा के धातुओं की संख्या लगभग दो हजार मानी है परन्तु इनमें से लगभग आधे का प्रयोग नहीं मिलता। शेष धातुओं में काफी संख्या में द्वित्व रूप शुद्ध धातु रूप और नाम धातु हैं। इन सब

४ डॉ० उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास पृ० ५४ ५५।

धातुओं का बहिष्कार कर देने पर आठ सौ के आसपास धातुएं शेष रह जाती हैं, इनकी रचना सस्कृत के तिङन्त प्रक्रियाओं पर ही आधारित नहीं है, अपितु इनकी रचना म परम्परागत नामिक प्रातिपदिक भी सहायक हैं।[५]

सस्कृत भाषा का अध्ययन और विश्लेषण अन्य भारतीय यूरोपीय भाषाओं की अपेक्षा सरल है। इसके धातवश बड़ी सुगमता के साथ सम्बन्ध तत्वों से पृथक् किय जा सकते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि वतमान-कालिक तथा लुङन्त प्रकृत्यशों को रचना म व्यवहृत प्रत्यय साधारणतया समापिका क्रिया के अन्य रूपों और नामिक व्युत्पत्तियों से पृथक् प्रयुक्त होते हैं। इतना होने पर भी सस्कृत म ऐसे प्रत्ययों का सवथा अभाव नहीं है, जोकि अपन प्रकृत्यशों स स्थायी रूप स जुड़ हुए हैं, और वे समस्त तिङन्त प्रक्रिया म प्राप्त होते हैं।[६]

वैदिक सस्कृत की भाँति लौकिक सस्कृत का भी प्राय सभी धातुए एकाक्षरी हैं। वहाँ नामिक तथा धातुक प्रकृत्यशों की रचना प्राय एक ही सिद्धान्त के आधार पर होती है। धातु के गुण कोटि म दो रूप उपलब्ध होते है-(१) वह रूप जो चेत्, सेन्, रोद्, आदि म प्राप्त होता है और (२) वह रूप जो नस्, छद्, श्री आदि में उपलब्ध होता है। यह इस बात को सूचित करता है कि मूलधातु या उसक विस्तारित रूप दोनों म से किसी एक का गुण रूप होना सभव है, किन्तु भारत यूरोपीय अपश्रुति सिद्धान्त के अनुसार यह नितात असभव है।[७]

धातुओं क अथ तथा तिङन्त प्रक्रिया म इन गुण रूपों का कोइ विशेष महत्त्व नहीं है। इस प्रकार के भेद की महत्ता केवल नामिक प्रातिपदिकों के सबध में है। ये धातु अपने प्रारम्भ म मूल रूप में प्रातिपदिक थे। ऐसा स्थिति म सज्ञा और क्रिया को अधिक स्पष्टता के साथ पृथक् करना सभव नहीं था। धातु रूपों की भाँति ही ये भी नामिक रूप थे। परिणाम स्वरूप यह बात बिल्कुल यथाथ प्रतीत होती है कि विस्तारित धातुओं की दोनों कोटियों म परस्पर वही भेद रहा होगा, जो नामिक शब्दों की रचना में अत्यन्त सहायक है।[८]

---

५ टी० बरो सस्कृत भाषा अनु० डॉ० व्यास पृ० ३४७।

६ टी बरो सस्कृत भाषा अनु० डॉ० भोलाशकर व्यास पृ० ३४७।

७ डा० व्यास : सस्कृत का भाषा शास्त्रीय अध्ययन प० १९२।

८ टी० बरो संस्कृत भाषा अनु० डा० व्यास प० ३५३।

इस विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूलधातु दो व्यंजन ध्वनियों और गुण स्वर ध्वनि से अधिक [illegible] नहीं होती। इस आधार पर हम बिना किसी हिचक के यह कह सकते हैं कि धातुओं की तृतीय व्यंजन ध्वनि बाद में जोड़ा गया प्रत्यय है।

समापिका क्रिया

तिङ् प्रत्यय—तिङ् प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं –

(१) परस्मैपद (२) आत्मनेपद। परस्मैपद का प्रयोग दूसरे के लिए तथा आत्मनेपद का प्रयोग स्वयं के लिए होता है। जब क्रिया का कर्ता स्वयं कर्म के फल का भोक्ता होता है, तो आत्मनेपद का प्रयोग होता है, इसके अभाव में परस्मैपद का। उदाहरणार्थ घटं करोति 'घड़ा बनाता है' का प्रयोग 'कुम्हार घड़े को बनाता है' दूसरे के लिए बनाने के अर्थ में है, परन्तु 'घटं कुरुते' का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए होगा, जो घड़ा स्वयं अपने लिए बनाता है। यही बात पचति और पचते तथा यजति और यजते में भी देखी जा सकती है। इसके पश्चात् परस्मैपद और आत्मनेपद प्रत्येक के दो दो रूप प्राप्त होते हैं, जिन्हें क्रमशः मुख्य तिङ् प्रत्यय या सबल रूप तथा गौण तिङ् प्रत्यय या दुर्बल रूप की संज्ञा दी जाती है, उदा०—उत्तम पुरुष मध्यमपुरुष तथा प्रथम पुरुष के सबल तिङ् चिह्न क्रमशः मि सि, ति (पठामि, पठसि, पठति) तथा दुर्बल तिङ् चिह्नों में क्रमशः म्, स्, त्, चिह्न (अपठम्, अपठः अपठत्) प्रयुक्त होते हैं। आत्मनेपद का प्रयोग उन अवस्थाओं में भी देखा जाता है, जबकि क्रिया का मुख्य कर्म स्वयं के शरीर का एक अंग बन जाता है, जैसे—नखानि निकृन्तते। वह अपने नाखून काटता है, 'दतो धावते'—वह अपने दांत साफ करता है।[६] धातुओं के दूसरे वर्ग सकर्मक (परस्मैपद) और अकर्मक (आत्मनेपद) में अन्तर देखा जाता है, जैसे—वर्धति—बढ़ाता है, अधिक बड़ा बनाता है, वर्धते—बढ़ता है (अकर्मक)—बड़ा बनता है, यह कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य के अन्तर को स्पष्ट करता है, कर्मवाच्य के अर्थ को अभिव्यक्त करने के हेतु भूत और भविष्यत्काल में आत्मनेपद का प्रयोग दिखलाई पड़ता है। इतना होते हुए भी सभी धातुओं के दोनों पदों में रूप उपलब्ध

---

६ टी० बरो संस्कृत भाषा अनु० डॉ० भोलाशंकर व्यास पृ० ३५४।

नहीं होते, कुछ का केवल आत्मनेपद में और कुछ का केवल परस्मैपद म तथा कुछ का दोनों में रूप चलता है।[१०]

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि परस्मैपद और आत्मनेपद का यह अन्तर आया कहाँ से। अध्ययन के फलस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन दोनों पदों म जो मौलिक अन्तर है, वह भारत यूरोपीय से आया हुआ प्रतीत होता है।[११]

काल—सुविधा के लिये संस्कृत के कालों को चार भागों में विभाजित किया गया है—वर्तमान, भविष्यत्, लुडन्त भूत और परोक्षभूत। वर्तमान-कालिक धातु का प्रयोग केवल वर्तमान काल के लिये ही नहीं अपितु अपूर्णभूत अर्थात् लुडन्त भूतकालिक रूपों के लिये भी होता है। इसी तरह भविष्यत्काल के आधार पर एक हेतुहेतुमत् भावे लृङ् (भूत रूप) की रचना होती है। वैदिक भाषा म भूतकालिक रूप की रचना पूर्णभूत के आधार पर होती है। प्राचीन भाषाओं म भूतकालिक रूपों का प्रयोग बहुत कम हुआ, तथा परवर्ती भाषाओं में इनका सर्वथा लोप ही हो गया है। लुङ् रूप प्रकृत्यश स केवल एक प्रकार का भूतकालिक रूप व्युत्पन्न होता है।

इस बात का सकेत पहले ही किया जा चुका है कि तिङ् चिह्नों को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से दो भागों म विभाजित किया गया है—मुख्य और

---

१० आत्मनेपद में प्रयुक्त धातु – √आस् बैठना, – √क्षम् -सहन करना, √लभ् पाना, √वस् (कपडे) 'पहनना', √सच् - सहयोग करना। परस्मैपद में प्रयुक्त धातु – √अद् - खाना, √अस् होना, √बुध् - भूखाहोना √सृप -सरकना आदि। कभी-कभी एक भिन्न प्रकार का पद मिलता है, जो परस्मैपद लिट् तथा आत्मनेपद वर्तमान में उपलब्ध होता है—जैसे वर्तते, ववर्त।

टी० बरो संस्कृत भाषा अनु० डॉ० व्यास पृ० ३५४।

११ तुल० समीकरण सचेने, ग्री० हुर्पेतइ, लै० सचिकुर और भारतीय आर्यभाषा के बाह्य स्वरूप और प्रयोग की दृष्टि से ग्रीक और संस्कृत भाषा में काफी साम्य है। परवर्ती भारतीय आर्य भाषा में इसका प्रयोग लुप्त हो गया और इसका प्रयोग संस्कृत में पुराणों तथा कुछ अन्य संस्कृत के ग्रन्थों में वर्तमान है।

($\sqrt{}$क्रुध्) इत्यादि।[१३] संस्कृत में एक धातु ऐसी भी देखी जाती है, जिसमें लिट् में धातु का द्वित्व नहीं होता सं० वेद ($\sqrt{}$विद्), इसके अन्य भा० यू० समानान्तर रूप भी द्वित्वहीन ही हैं। ग्री० आइद, गाथिक वइत। वैदिक संस्कृत में कुछ अन्य द्वित्वहीन लिट् रूप भी मिलते हैं— तक्षथु, तन्तु, स्कम्भथु स्कम्भुः।[१४]

यद्यपि ग्रीक तथा संस्कृत में लिट् रूपों में द्वित्व की प्रक्रिया का पालन किया गया है, किन्तु यहाँ भी छिटपुट द्वित्वहीन रूप प्राप्त हो जाते हैं। भारत यूरोपीय परिवार की लैटिन तथा जर्मनीय वर्ग में कई ऐसी भाषाएँ हैं, जहाँ द्वित्व की प्रक्रिया नहीं पायी जाती। अतः ऐसी कल्पना की जाती है कि प्रा० भा० यू० में लिट् के रूपों में द्वित्व की प्रक्रिया कोई आवश्यक नहीं मानी जाती थी।[१५]

लुट् (अनद्यतन भविष्यत्काल)

अनद्यतन भविष्यत् के अर्थ को सूचित करने के लिये संस्कृत में लुट् लकार का व्यवहार होता है। इसका विकास संस्कृत के तर (–तृ) प्रत्यय वाले कर्तृबोधक प्रत्यय से माना जाता है, जिनके साथ $\sqrt{}$अस् धातु के रूपों का प्रयोग सहायक क्रिया के रूप में होता है।[१६] वैदिक भाषा में केवल लिट् के यौगिक रूप मिलते हैं, जिनके उदाहरण यजुर्वेद में सबसे पहले प्राप्त होते हैं, जैसे—भविता, भवितार।

---

१३ डा० व्यास संस्कृत का भाषा शास्त्रीय अध्ययन पृ० २३०।

१४ वही, पृ० २३१। टी० बरो संस्कृत भाषा से उद्धृत।

१५ वही पृ० २३१।

१६ लुट् लकार के रूप नाम शब्द के प्रथमा विभक्ति की भाँति ही प्रथम पुरुष एकवचन द्विवचन, बहुवचन में चलते हैं। शेष रूपों में प्र० पु० ए० व० के रूप के साथ सहायक क्रिया जोड़ देते हैं—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
मध्यम पुरुष	कर्तासि (कर्ता + असि)	कर्तास्थः	कर्तास्थ
उत्तम पुरुष	कर्तास्मि (कर्ता + अस्मि)	कर्तास्वः	कर्तास्मः

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्काल)

सामान्य भविष्यत्काल के अर्थ को द्योतित करने के लिये संस्कृत में लृट् लकार का व्यवहार होता है, सेट् धातु के पश्चात् 'ष्य' और अनिट् धातु के बाद 'स्य' जोड़कर इस प्रकार के रूप बनाये जाते हैं। इसकी शेष प्रक्रिया लट् लकार की भाँति होती है। जैसे—√दा दास्यति, √पठ्–पठिष्यति, √गम् गमिष्यति। प्रारंभिक अवस्था के अर्थ को द्योतित करने के लिये संस्कृत में इस लकार का व्यवहार बहुत कम किया जाता था। इसके स्थान पर हेतुहेतुमत् के रूपों का प्रयोग होता था, परन्तु धीरे धीरे परवर्तीकाल की भाषा में इसका प्रचुर प्रयोग दिखलाई पड़ने लगा।[१७]

लोट् लकार (आज्ञा)

संस्कृत में लोट् लकार का प्रयोग आज्ञा के लिये होता है, आज्ञा का प्रयोग प्रायः मध्यम पुरुष में ही होता है, जैसे—त्वं गृहं गच्छ (तुम घर जाओ) परन्तु आवश्यकतानुसार प्र० पु० और उ० पु० में भी आज्ञा का प्रयोग होता है।[१८] संस्कृत के लोट् वाले रूप कई रूपों के मिश्रण हैं।

इसके आत्मनेपदी रूपों में प्र० पु० के सभी वचनों के रूपों में कोई भिन्नता नहीं है, किन्तु म० पु० तथा उ० पु० के रूपों में कुछ अन्तर है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
म० पु०	कर्तासे	कर्तासाथे	कर्ताध्वे
उ० पु०	कर्ताहे	कर्तास्वहे	कर्तास्महे

१७ ह्विटने संस्कृत ग्रामर, अंक ९३२, पृ० ४१ प० २२१ ३५।

१८ लोट् लकार के परस्मैपद में निम्नलिखित प्रत्यय जोड़े जाते हैं—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु	तु	ताम्	अन्तु (अतु)
म० पु०	हि	तम	त
उ० पु०	नि	व	म

अदन्त अंग के बाद 'हि' का लोप हो जाता है।

आत्मनेपद में लगने वाले प्रत्यय—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ताम्	एताम्	अन्ताम्
म० पु०	स्व	एथाम्	ध्वम्
उ० पु०	ऐ	वहै	महै

प्रथम पुरुष के तीनों वचनों मे इसके रूप वैदिक संस्कृत मे हतुहेतुमत् (सब्जेंक्टिव) रूप हैं, और म० पु० तथा प्र० पु० के द्वि० व० एव म० पु० एकवचन के रूप निषेधाथक वैदिक रूप (इन्जेंक्टिव फार्म्स) हैं। म० पु० ए० व० मे 'शून्य' तिङ् चिह्न पाया जाता है। अन्य भारत यूरोपीय भाषाओं में भी यही बात है।[१९]

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल)

संस्कृत मे अनद्यतन भूतकाल के अर्थ को द्योतित करने के लिये लङ् लकार का प्रयोग होता है। इसके पूर्व 'अ' का आगम पाया जाता है तथा ति, अन्ति, सि, मि इन इकारान्त प्रत्ययों के इकार का लोप हो जाता है।

विधि लिङ्

विधिलिङ् का प्रयोग दो अर्थों को द्योतित करने के लिये किया जाता है—(१) सम्भावना के भाव को द्योतित करने के लिये (२) इच्छा के भाव को व्यक्त करने के लिये, उदा०—कदाचित् स पठेत् (शायद वह पढे सम्भावना), जीवेम् शरदः शतम् (इच्छा)।

इस लकार का प्रयोग छः अर्थों मे होता है-विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न और प्रार्थना, (विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्, पा० ३।३।१६१)। विधिलिङ् के लिये 'य' विकरण का प्रयोग होता है, जिसका दुर्बल रूप 'ई' है जैसे-दद्यात्-दद्+य+अत् (√दा , ददीत -दद्+ई+त। वैदिक संस्कृत मे विधिलिङ् के रूप मे 'स' विकरण का प्रयोग देखा जाता है, जिसमें धातु का स्वर 'इ' बना दिया गया है,[२०] जैसे—दिषीय (√दा)।

आशीर्लिङ्—आशीर्वाद के अर्थ को सूचित करने के लिये संस्कृत मे आशीर्लिङ् का प्रयोग होता है। (आशिषि लिङ् लोटौ, पा० ३।३।१७३)।

संस्कृत मे विधिलिङ् और आशीर्लिङ् मे बड़ा सूक्ष्म अन्तर देखा

प्रत्येक वर्ग के प्रथमाक्षर, द्वितीयाक्षर, तृतीयाक्षर चतुर्थाक्षर एवं ष्, स् तथा 'ह' धातु में अन्त होने वाली धातुओं के पश्चात् 'हि' के स्थान में 'धि' का आदेश होता है।

१९ डॉ० व्यास संस्कृत का भाषा शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २२६।

२० ह्विटनी संस्कृत ग्रामर। ५६४ ६६ पृ० २१२-१३।

जाता है। वह यह है कि विधिलिङ् के रूपों का निर्माण वर्तमान के रूपों के आधार पर होता है, इसके विपरीत आशीर्लिङ् के रूप प्रायः लुङ् रूपों के आधार पर निर्मित होते हैं।[२१]

इस भेद के अतिरिक्त इनके लिङ् लिङ्गप्राय गौण हैं, तथा उनमें समानता पाई जाती है – गच्छति (लट्) गच्छेत् (विधिलिङ्), अगमत् (लुङ्) गम्यात् (आ० लिङ्)।

हेतुहेतुमत् रूप (कन्डीशनल)

ऐसे रूपों का प्रयोग उस समय किया जाता है, जहाँ किसी एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया पर निर्भर होता है। इसको क्रियातिपत्ति भी कहते हैं। लौकिक संस्कृत में इसकी रचना भविष्यत् लृट् और लङ् के रूपों के सम्मिश्रण से होती है। धातु के आगे 'अ' जोड़कर, तत्पश्चात् भविष्यत् काल के 'ष्य' प्रत्यय को ग्रहण कर लङ् लकार के समान इस लृङ् लकार का निर्माण करते हैं, जैसे—आगमिष्यत् (आ + $\sqrt{}$गम् + ष्य + त्)। इस प्रकार का रूप वेद में केवल एक ही बार प्राप्त हुआ है—अभरिष्य (लौ० स० अकरिष्य $\sqrt{}$कृ), लौकिक संस्कृत में आकर केवल भविष्यत् (लृट्) से प्रभावित रूपों के ही दर्शन होते हैं। इनमें भूतकाल के 'अ' आगम का प्रयोग आरम्भ में दिखाई देता है।[२२]

वाच्य

संस्कृत क्रिया रूपों के निर्माण में तीन वाच्यों का प्रयोग देखा जाता है, कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। इन्हें कर्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग की भी संज्ञा दी जाती है। यथा—मैं पुस्तक पढ़ता हूँ (अहं पुस्तकं पठामि) कर्तृवाच्य मुझसे पुस्तक पढ़ी जाती है (मया पुस्तकं पठ्यते) कर्मवाच्य, मुझसे नहीं पढ़ा जाता है (मया न पठ्यते) – भाववाच्य। कर्तृवाच्य के सम्बन्ध में हम पहले ही विचार कर चुके हैं यहाँ हम कर्मवाच्य और भाववाच्य का वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

कर्तृवाच्य रूप अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं में उपलब्ध होता है। कर्मवाच्य का प्रयोग केवल सकर्मक धातुओं में तथा

---

२१ एम० आर० काले हायर संस्कृत ग्रामर। ५७६ पृ० ५६।

२२ डॉ० व्यास संस्कृत का भाषा शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २२६।

भाववाच्य का प्रयोग केवल अकर्मक धातुओं म होता है। कर्मवाच्य और भाववाच्य के रूप केवल आत्मनेपद में चलते हैं। संस्कृत में कर्मवाच्य और भाववाच्य की रचना के सम्बन्ध में वैयाकरणों ने पर्याप्त विवेचना की है, यहाँ पर केवल इतना कह देना आवश्यक है कि कर्मवाच्य की क्रिया के रूप पुरुष और वचन में कर्म के अनुसार चलते हैं, अर्थात् कर्मवाच्य की क्रिया म वही पुरुष और वही वचन प्रयुक्त होते हैं, जो पुरुष और वचन कर्म का होता है। भाववाच्य के रूप कर्ता के अनुसार नहीं बदलते तथा इसका प्रयोग सर्वदा प्रथम पुरुष एकवचन में होता है।

प्रत्ययान्त धातुएँ (गौण धातु रूप)

धातु के अर्थ के साथ साथ अन्य अर्थों के द्योतन के लिये धातुओं में विशेष प्रत्यय जोड़ा जाता है, इस प्रकार की धातुओं को प्रत्ययान्त धातुएँ कहते हैं।

प्रत्ययान्त धातुओं के निम्नलिखित चार भेद होते हैं—

१—णिजन्त या प्रेरणार्थक
२—सन्नन्त
३—यङन्त
४—नामधातु

णिजन्त धातु (प्रेरणार्थक)—किसी धातु के द्वारा प्रेरणा के अर्थ को सूचित करने के लिये उसमें णिच् प्रत्यय जोड़ दिया जाता है, जैसे—

पढ़ना—पढ़ाना या पढ़वाना	पिटना—पीटना, पिटवाना
कटना—काटना या कटवाना	लिखना—लिखवाना
कहना—कहवाना या कहलाना	चलना—चलवाना

संस्कृत में प्रेरणार्थक रूप बनाने के लिये धातु और तिङ् प्रत्ययों के बीच में 'अय' जोड़ दिया जाता है। इनके रूप चुरादिगण की धातुओं के समान चलते हैं, यथा—

बुध् (बोधति)	—	बोधयति
अद् (अत्ति)	—	आदयति
सु (सुनोति)	—	सावयति।

प्रेरणार्थक धातु में कर्ता स्वयं कार्य नहीं करता अपितु दूसरों से करवाता है, जैसे—वह चोर से धन चुरवाता है (स चौरेण धनं चोरयति), इस

वाक्य में वह द्रव्य धन नहीं चुराता है, अपितु चोर से चुरवाता है। भिन्न धातु से परस्मैपद तथा आत्मनेपद दोनों प्रकार के तिङ् प्रत्यय जुड़ते हैं।

आरंभिक भाषा में तिङन्त रूपों की एक बहुत बड़ी संख्या है, जिसमें यद्यपि 'अय' विकरण का प्रयोग होता है, परन्तु वे प्रेरणार्थक रूप धारण नहीं करते, इनमें से कुछ पौनःपुन्यबोधक अर्थ को रखते हैं, जैसे—पातयति इधर उधर उड़ता है। परवर्ती भाषा में प्रेरणारहित अधिकांश रूपों का लोप हो गया और उनका सम्बन्ध दशम गण की रचना में नामधातुओं की प्रक्रिया के साथ स्थापित हो गया।[२३]

सन्नन्त (इच्छार्थक) धातु

जब हम किसी कार्य को करने की इच्छा का अर्थ सूचित करना होता है, तो कार्य के अर्थ को बतलाने वाली धातु के पश्चात् संस्कृत में 'स(न्)' प्रत्यय का व्यवहार करते हैं, जैसे—गम्-जिगमिष्-जाना चाहता (है)। सन्नन्त धातु का प्रयोग तभी होता है, जब कार्य करने वाले तथा इच्छा करने वाले का कर्ता एक होता है। सन् प्रत्यय के 'स' को धातु के साथ जोड़ा जाता है जो संधि के अनुसार कहीं-कहीं 'ष' भी हो जाता है। अभ्यास में अकार का इकार हो जाता है।[२४] इन सन्नन्त धातुओं के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

पठ + सन् = पिपठिष् (पिपठिष्यति)
ग्रह + सन् = जिघृक्ष् (जिघृक्षति)
प्रच्छ + सन् = पिपृच्छिष (पिपृच्छिषति)
कृ + सन् = चिकरिषु (चिकरिषति)
हन् + सन् + जिघांस् (जिघांसति)

बोध से भिन्न अर्थ होने पर सन् लगने पर इण् का गम् आदेश होता है। बोध अर्थ में इसका प्रतीषिषति रूप बनता है।[२५]

ज्ञा + सन् = जिज्ञास् (जिज्ञासते)
श्रु + सन् = शुश्रूष (शुश्रूषते)
दृश + सन् = दिदृक्ष (दिदृक्षते)

---

२३ टी० बरो संस्कृत भाषा अनु० डॉ० भोलाशंकर व्यास पृ० ४३२।
२४ एम० आर काले संस्कृत ग्रामर। ६१३ पृ० ३७६ ७७।
२५ वही। ६१३ पृ० ३७६ ७७।

पा + सन् = पिपास् (पिपासते)
भू + सन् = बुभूष (बुभूषते)

सन्नत धातु के रूप पद के अनुसार दसों लकारों में चलते हैं। परोक्ष-भूत म श्राम् लगाकर तत्पश्चात् कृ, भू और अस् धातुओं के रूप जोड़ देते हैं।

यङन्त धातु

क्रिया की बारम्बारता अथवा उसक आधिक्य भाव का सूचित करन के लिये व्यजन से शुरू होने वाली किसी भी एकाच् धातु के पश्चात् यङ् प्रत्यय का व्यवहार किया जाता है, जैसे—नेनीयते—बार बार ल जाता है, देदीयते—खूब देता है।

धातुओं में यङ् प्रत्यय के जोड़ने स दो प्रकार के रूप बनते हैं — परस्मैपद और आत्मनेपद। इनम से प्रथम प्राय वैदिक सस्कृत म ही उपलब्ध होते हैं, लौकिक में नहीं।[२९]

नामधातु

किसी सुबन्त शब्द (सज्ञा) के पश्चात् जब कोई प्रत्यय जोड़कर धातु बना लिया जाता है, तो उसे नाम धातु की सज्ञा दी जाती है जैसे — नमस् + क्यच् = नमस्यति (नमस्कार करता है।), रथयति (रथ + क्यच्)= रथ पर चढ़ता है, इत्यादि। यद्यपि नाम धातु के रूप सभी लकारों म चल सकते हैं, परन्तु बहुधा इनका प्रयोग वर्तमानकाल में ही देखा जाता है।

असमापिका क्रिया

सस्कृत की असमापिका क्रियाओं को मोटे तौर पर निम्नलिखित भागों म विभाजित किया जा सकता है—

१—वर्तमानकालिक कृदन्त प्रत्यय।
२—भूतकालिक कृदन्त प्रत्यय।
३—भविष्यत्कालिक कृदन्त प्रत्यय।
४—तुमन्त रूप।
५—पूर्वकालिक क्रिया रूप।

---

२९ विशेष ज्ञान के लिए अवलोकनीय मैक्डॉनल वैदिक ग्रामर—और टी० बरो सस्कृत भाषा अनु० डॉ० व्यास, पृ० ४३०।

वर्तमानकालिक कृदन्त

संस्कृत मे 'न्त' (त्) मान तथा–आन प्रत्ययों को धातुओं में लगाने से वर्तमानकालिक कृदन्तों की रचना होती है। न्त (त्) परस्मैपदी रूपों के साथ तथा अन्य दोनों आत्मनेपदी रूपों के साथ जुड़ते हैं।[२७] संस्कृत वैयाकरणों ने उन्हें क्रमश शतृ और शानच् के नाम से अभिहित किया है। 'आन' का प्रयोग अ–विकरणहीन आत्मनेपदी धातुओं के साथ होता है, जैसे शयान, ददान दधान जबकि 'मान'–अ विकरणयुक्त आत्मनेपदी धातुओं के साथ प्रयुक्त होता है – भाष्माण, भरमाण, वतमान इत्यादि।

उपर्युक्त दोनों प्रत्ययों (शतृ और शानच्) का प्रयोग विशेषण के समान होता है, जैसे—स धावन् विद्यालय गच्छति, इस वाक्य में 'धावन्' शतृ प्रत्ययान्त कृदन्त है और स का विशेषण है। शतृ और शानच् प्रत्यय अपने विशेष्य के लिंग, वचन और विभक्ति के अनुसार होते हैं।

शतृ प्रत्ययान्त कृदन्त बनाने के लिए वर्तमान काल की क्रिया के प्रथम पुरुष बहुवचन के रूप में से 'ति' निकाल दिया जाता है, बाकी जो रूप बचता है, वह शतृ प्रत्ययान्त का पुल्लिंग रूप होता है, जैसे--पठ् धातु के वर्तमान काल में प्रथम पुरुष के बहुवचन का रूप 'पठन्ति' होगा, इसमें से 'ति' को निकाल देने पर पठन् रूप बनेगा। स्त्रीलिंग में 'पठति' के अन्तिम 'इ' को दीर्घ करके 'नदी' के समान रूप चलाया जाता है।

जब विद् धातु के बाद शतृ प्रत्यय जुड़ता है तो शतृ के ही अर्थ में विकल्प से 'वसु' आदेश हो जाता है, जैसे–विद्+शतृ – विदन्, विद्वत्, विद्वस् या विद्वान् इत्यादि रूप होंगे (स्त्रीलिंग में विदुषी रूप होगा)।

शानच् प्रत्यय के निर्माण के लिये वर्तमानकाल प्रथम पुरुष की क्रिया के एकवचन रूप में से, 'त' निकालकर 'मान' जोड़ देते हैं। इसके रूप अपने विशेष्य के अनुसार चलते हैं, जैसे—कम्प का वर्तमानकाल प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है, कम्पते इसमें से 'ते' निकालकर 'मान' जोड़ने पर 'कम्पमान' रूप बना। विशेष्य के अनुसार इसका रूप कम्पमान, कम्पमानम्, कम्पमाना आदि हो सकता है। इसी प्रकार कर्मवाच्य के 'लभ्यते' और 'लभ्यमान' और भविष्यत्काल के 'वक्ष्यते' से वक्ष्यमाण भी बन सकते

---

२७ एम० आर० काले संस्कृत ग्रामर। ६६७-७२ पृ० ४१७ १८।

हैं। 'ते' निकाल देने पर क्रिया का जो रूप बचता है, उसके अन्त म यदि 'अ' न हो, तो मान नहीं जोड़ा जाता। इस दशा में बहुवचन का प्रत्यय जोड़ने से पूव क्रिया का जो रूप होता है, उसम 'आन' जोड़ा जाता है।[२८] जैसे—दा + शानच् – ददान। इसी प्रकार शमान, दधान इत्यादि।

परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनों प्रकार की धातुओं म शानच (आन) प्रत्यय किसी भी आदत, उम्र अथवा सामर्थ्य का बोध कराने के लिये जोड़ा जाता है।

भूतकालिक कृदन्त प्रत्यय

मूतकालिक कृदन्त के सस्कृत म दो रूप पाये जाते हैं—(१) भूतकालिक कर्मवाच्य कृदन्त और (२) भूतकालिक कर्तृवाच्य कृदन्त।

(१) भूतकालिक कर्मवाच्य कृदन्त—यह कृदन्त रूप धातु के दुर्बल रूप के साथ क्त (त) प्रत्यय जोड़कर बनाया जाता है, जैसे—नी + त – नीत, ज्ञा + त = ज्ञात, कृ + त = कृत इत्यादि। इस प्रत्यय में भी अन्य तिङन्त रूपों की भाँति सहायक स्वर ध्वनि – 'इ' का व्यवहार होता है,[२६] जैसे-गल – गलित (गला हुआ), पत – पतित (गिरा हुआ) इत्यादि।

कमवाच्य म 'त' प्रत्यय वाला शब्द कर्म का विशेषण होता है, अर्थात् कम के ही अनुसार उसके भी लिंग और वचन होते हैं। 'त' प्रत्यय वाले शब्दों के रूप पुल्लिंग म राम' के समान, स्त्रीलिंग म 'लता' के समान और नपुसक लिंग में 'फल' के समान चलते हैं, जैसे—मया ग्रथ पठित, मया पुस्तक पठितम् त्वया बालिका दृष्टा, तेन् फलानि खादितानि। इन सभी उदाहरणों में 'त' प्रत्यय वाले रूप कम के अनुसार हैं। सकर्मक धातुओं म कम की विवक्षा न होने पर 'त' प्रत्यय भाववाच्य म लगता है। भाववाच्य म 'त' प्रत्यय वाले शब्दों का रूप केवल नपुसक लिंग एकवचन म होता है, जैसे—मया जितम्, तेन भुक्तम्, शिशुना रुदितम् इत्यादि।

कर्मवाच्य भूतकालिक कृदन्त रूपों म कुछ धातुओं के साथ – 'त' प्रत्यय न व्यवहृत होकर 'न' प्रत्यय का प्रयोग होता है। इस 'न' प्रत्यय का प्रयोग बहुधा ऋ, द, इ और ज अन्त वाली कुछ धातुओं के साथ होता

---

२८ एम० आर० काले सस्कृत ग्रामर। ६६१ प० ४२८।

२६ वही। ६८४ प० ४२२ २३।

है, जैसे—खिद् + न = खिन्न, भिद् + न = भिन्न, क्षी + न = क्षीण, ही + न = हीन, भञ्ज् + न=भग्न, लग् + न=लग्न इत्यादि ।

यह प्रत्यय अधिकांश भा यू० भाषाओं में उपलब्ध है, अतः भा० यू० म यह बहुत प्राचीन प्रत्यय माना जाता है। इस प्रत्यय का रचना सस्कृत तथा दूसरी भा० यू० भाषाओं म साध धातु रूप प्रकृत्यश स होता ह, परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी कृदतज रूपों के विरुद्ध इसका सम्बन्ध किसी विशेष वर्तमानकालिक गण रूपों से नहीं है।[१]

(२) कर्तृवाचक भूतकालिक कृदन्त—इस कृदन्त की रचना क हेतु सस्कृत म धातु के साथ-तवत्—तवन्त (स० क्तवत्) प्रत्यय जोडा जाता ह, जो वास्तव म उपर्युक्त 'त' प्रत्यय वाल रूपों क साथ-वन्त (वत्) लगाकर बनता है, जैस-पठ्-पठितवन्त (पठितवान्), उक्त-उक्तवन्त (उक्तवान्) चिन्तित् चिन्तितवन्त (चिन्तितवान्)। इनक रूप पुल्लिंग म भगवत् के समान नपुंसक लिंग म तकारान्त जगत् क समान और स्त्रीलिंग में इकारान्त नदी के समान चलते हैं, जैसे—पठ्—पठितवान् (पुल्लिंग), पठितवती (स्त्रीलिंग), पठितवत् (नपु०)।

क्त प्रत्यय की भाँति क्तवतु प्रत्यय का भी प्रयोग जब एसी धातुओं क साथ होता है, जिनक अन्त म ऋ, द इ अथवा ज हो ता 'त्' क स्थान पर 'न' हो जाता है, जैसे—क्षी-क्षीणवत्, छिद् छिन्नवत् इत्यादि। (किसी समय 'न' एक स्वतन्त्र भूतकालिक प्रत्यय रहा होगा और आग चलकर दान्ता, का हा इत्यादि में देखा जाता है।)

अकर्मक धातु के साथ तथा गम्, रुह् इत्यादि कई एक सकर्मक धातुओं क साथ त' प्रत्यय कर्तृवाच्य म जोड़ा जाता है, और कर्ता के लिंग वचन क अनुसार उनक लिंग वचन होते ह, यथा—स ग्राम गत, सा नगर गता, पुष्प मृत, बालिका लज्जिता, शिशु भीत, फलानि पतितानि इत्यादि।

तवत् प्रत्यय का प्रयोग केवल कर्तृवाच्य म होता ह। इस प्रकार क शब्द कर्ता क विशेषण क समान प्रयुक्त होते हैं और कर्ता क ही लिंग, वचन और विभक्ति क अनुसार उनक भी लिंग, वचन और विभक्ति होते ह।

---

१० टी० बरो सस्कृत भाषा। अनु० डॉ० व्यास पृ० ४४६।

भविष्यत्कालिक कर्मवाच्य कृदन्त प्रत्यय

इनके लिए संस्कृत में तीन प्रत्ययों का व्यवहार होता है-(१) य (२) तव्य और (३) अनीय। इनमें से 'य' का सम्बन्ध प्रा० भा० यू० यों* से जोड़ा जाता है, उदाहरण-ज्ञा + य = ज्ञेय ध्या + य=ध्येय, कृ + य=कार्य, त्यज् + य = त्याज्य, भू + य=भाव्य इत्यादि।-तव्य प्रत्ययका सम्बन्ध प्रा० भा० यू० * तेंर्ओ से जोड़ा जाता है, जो ग्रीक दातेंओस (स दातव्यम्) से स्पष्ट है।[३१] उदा० - पठ् + तव्य = पठितव्य, भू + तव्य = भवितव्य कृ + तव्य=कर्तव्य इत्यादि। 'अनीयर्' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। वैसे विद्वानों ने इसका व्युत्पत्ति प्रा० भा० यू० * ऐना * ओनों से मानी है, जो संस्कृत में 'अन' (ल्युट्) के रूप में भी दिखाई देता है[३२], उदाहरण-पठ् + अनीय=पठनीय, कृ + अनीय= करणीय, दृश् + अनीय = दर्शनीय इत्यादि।

संस्कृत में भविष्यत् के कर्तृवाच्य कृदन्त रूप भी प्राप्त होते हैं, जो वर्तमानकालिक कृदन्तों में 'ष्य' जोड़कर बनाये जाते हैं-भू-भविष्यत्, भविष्यमाण, कृ करिष्यत्, करिष्यमाण इत्यादि।

ऋग्वेद में केवल-य प्रत्यय का ही व्यवहार दिखाई पड़ता है, वहाँ पर इस प्रत्यय का उच्चारण प्राय इय होता है। अथर्ववेद में 'तव्य' प्रत्यय का सबसे पहले प्रयोग मिलता है, लौकिक संस्कृत में आकर इसका प्रयोग समस्त धातुओं के साथ दिखाई पड़ता है। टी० बरो० ने इसकी उत्पत्ति-तु अन्त वाले कर्मबोधक संज्ञापदों से बने गौण विशेषण रूप से मानी है।[३३]

-अनीय प्रत्यय वाले भविष्यत्कालिक कृदन्त रूपों का भी दर्शन सबसे पहले अथर्ववेद में होता है, लौकिक संस्कृत में इनका काफी प्रयोग देखा जाता है। भविष्यत्कालिक कृदन्त की कुछ प्रक्रियायें ऐसी हैं, जो वेद में ही पायी जाती हैं, यद्यपि ये रूप लौकिक संस्कृत में प्राप्त इस प्रकार के रूपों से मिलते-जुलते हैं।[३४]

तुमन्त कृदन्त प्रत्यय

इस अर्थ में वेद में कई प्रत्यय उपलब्ध होते हैं, परन्तु लौकिक संस्कृत

---

३१ डॉ० व्यास संस्कृत का भाषा शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २४०।
३२ वही, पृ० २४०।
३३ टी० बरो संस्कृत भाषा अनु० डॉ० व्यास पृ० ४४८।
३४ वही।

म एक ही प्रकार का तुमन्त प्रत्यय पाया जाता है, वह है-तुम्। तुम् प्रत्यय का प्रयोग 'निमित्त' क अर्थ को द्योतित करता है, जैसे—विद्यालय पठितु याति-विद्यालय म पढ़न क लिये जाता है। इस वाक्य म जान की क्रिया पढ़ने की क्रिया के निमित्त होती है।

वैदिक भाषा में उपलब्ध होने वाले तुमर्थक प्रत्यय क रूप परवर्ती भाषाओं म पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं दिखलाई पड़ते। वैदिक तुमत प्रत्यय धातुज सज्ञाओं के द्वितीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी और सप्तमी क रूपों में पाये जाते हैं।[३५]

पूर्वकालिक क्रिया रूप

सस्कृत में पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ को सूचित करने के लिय दो प्रकार के प्रत्यय व्यवहृत होते हैं—त्वा और य। उपसर्ग रहित धातु म त्वा प्रत्यय तथा उपसर्ग युक्त धातु के साथ 'य' प्रत्यय का प्रयोग होता है।[३६] जैस

त्वा प्रत्यय-गम् + त्वा = गत्वा, कृ + त्वा = कृत्वा, पा + त्वा = पीत्वा, जि + त्वा = जित्वा इत्यादि।

य प्रत्यय-उप + नी=उपनीय, आ + दा + य=आदाय, आ + नी + य= आनीय, अनु + भू + य = अनुभूय इत्यादि। य के पूर्व यदि स्वर ह्रस्व होता है, तो 'य' न जुड़कर 'त्य' जुड़ता है, जैसे—आ + गम् + त्य आगत्य, अव + कृ + त्य = अवकृत्य, वि + जि + य = विजित्य, परन्तु आ + दा + य= आदाय होता है।

ऋग्वेद म अधिकाश स्थानों पर—य प्रत्यय अपने दीर्घ रूप (या) म प्रयुक्त हुआ है, जो क्रियाविशेषणवत् प्रयुक्त होकर 'या', 'त्वा' का समानार्थी प्रतीत होता है।

ऋग्वेद में एक अन्य प्रत्यय जो—त्वा के ही समानान्तर है, 'त्वाय' मिलता है, जिसका अन्य रूप 'त्वी' भी प्राप्त होता है। यह प्रत्यय वहाँ पर 'त्वा' की तुलना में अधिक प्रचलित है। इस—'त्वी' रूप का प्रचार लौकिक सस्कृत म नहीं दिखलाई पड़ता, परन्तु यह उत्तर पश्चिम की मध्यभारतीय आर्य भाषाओं में प्राप्त होता है।[३७]

३५—ए० मकडानेल ए वैदिक ग्रामर फार स्टूडेण्ट्स पृ० १९० १९५।
३६—एम० आर० काले सस्कृत ग्रामर। ७४२-६० पृ० ४४०-४५।
३७—टी० बरो० सस्कृत भाषा अनु० डॉ० व्यास पृ० ४४६।

वैयाकरणों ने पूर्वकालिक क्रियाओं में उपर्युक्त रूपों के अतिरिक्त विस्तारित पूर्वकालिक रूप—त्वानम और त्वीनम् की ओर भी सकेत किया है, परन्तु प्राप्त साहित्य में दूसरे उदाहरण उपलब्ध हैं।[३८]

पूर्वकालिक क्रिया रूप भा० यू० म अन्यत्र अप्राप्त है। इसका विकास मुख्यत भारतीय आर्यशाखा की भाषाओं म दिखाई देता है।

कर्तृ वाचक कृदन्त प्रत्यय

किसी भी धातु से सूचित कार्य के करने वाले अर्थ म सस्कृत म ण्वुल् (वु-अक) और तृच् (तृ) प्रत्यय लगाये जाते हैं, जैसे—कृ + ण्वुल—कृ + अक = कारक। कृ + तृ च्—कृ + तृ = कर्तृ। इसका अर्थ हुआ 'करने वाला'। इसी प्रकार पठ् पाठक, पठितृ, दायक (दा) दातृ आदि रूप निष्पन्न होते हैं।

सस्कृत में उपयुक्त कृदन्तज रूपों के अतिरिक्त विभिन्न अर्थों को सूचित करने के लिये अनेक प्रत्ययों का प्रयोग दिखायी पड़ता है, इनका विस्तृत विवेचन वैयाकरणों ने अपने व्याकरण ग्रंथों में प्रस्तुत किया है, उनके सम्बन्ध म विस्तार से चचा करना विषय की सीमा मात्र बढाना होगा। साथ ही उनका म० भा० आ० और न० भा० आ० रूपों से कोइ साक्षात् सम्बन्ध भी नहीं जान पड़ता। यहाँ हम इतना ही कह देना आवश्यक समझते हैं कि हिन्दी क्रिया रूपों के अध्ययन के लिये प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के क्रिया रूपों के विषय में जानकारी रखना आवश्यक है जहाँ से हिन्दी क्रिया रूपों की शृंखला बँधी चली आ रही है।

३८—वही।

तृतीय परिच्छेद

मध्य भारतीय आय भाषा के क्रिया रूपों की प्रकृति का अन्ययन

(प्राकृत, पालि तथा अपभ्रंश के क्रिया रूप उद्भव, विकास और प्रयोग)

हिन्दी क्रिया रूपों के विकास म मध्य भारतीय आर्यभाषा क क्रिया रूपों का विशेष योगदान रहा है। सस्कृत के क्रिया रूप पूर्ण सयोगात्मक थे, उसम धातु के रूप ५४० होते थ, पालि म २४० और प्राकृत म इसकी सख्या लगभग ७२ हो गइ। जहाँ सस्कृत म तिङन्तज रूपों का व्यवहार कृदतज रूपों की अपेक्षा कम नहीं होता था अपितु कृदतज रूपों का कार्य तिङन्तज रूपों के द्वारा भी सम्पन्न हो सकता था, वहीं पर मध्य भारतीय आर्यभाषा काल में कृदन्तज रूपों की बाढ़ सी आ गइ। यद्यपि प्राकृत तक क्रियाएँ तिङन्त तद्भव थीं, कृदतज क्रियाओं का प्रयोग वहाँ पर बहुत कम मिलता है, परन्तु इसके बाद की स्थिति अपभ्रंश की आती है, जिसम कृदन्त तद्भव रूपों के प्रयोग में बाहुल्य दिखलाइ पड़ता है। इस अध्ययन म हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अपभ्रंश तक आते आते भारतीय आयभाषा की क्रियायें पूर्ण वियोगात्मक रूप म दृष्टिगोचर होने लगीं। इसी प्रभाव के परिणामस्वरूप आज हिन्दी भाषा की क्रियायें इतनी सरल हो गइ हैं कि तिङन्तज रूपों की प्राय आवश्यकता ही नहीं पड़ती। सहायक क्रिया 'है' को छोड़कर हिन्दी (खड़ीबोली) की समस्त क्रियायें प्राय कृदन्त रूप ही ग्रहण करती हैं और हिन्दी क्रियाओं म जो कुछ भी जटिलता दिखाई पड़ती है, वह पदरचनात्मक कम है, वाक्य सघटनात्मक अधिक।

हिन्दी काल रचना में भी कृदन्त रूपों का व्यवहार इतना बढ़ गया कि कृदन्तज रूपों अथवा कृदन्त और सहायक क्रियाओं के योग से बने तिङन्त-तद्भव रूपों से ही हमारा काम चल जाता है। यद्यपि सस्कृत के कालों की अपेक्षा हिन्दी म इनकी सख्या बढ़ गयी, फिर भी सहायक क्रियाओं की सख्या तथा उनके रूप स्थिर होने के कारण उनकी जटिलता जाती रही।

मध्य भारतीय आर्यभाषा के क्रियारूपों के अध्ययन के फलस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रा० भा० आ० के सूक्ष्मकालों तथा भावरूपों का इसमें सर्वथा लोप हो गया, तथा म० भा० आ० काल की द्वितीय अवस्था में कर्तरि वर्तमान, कर्मणि वर्तमान, भविष्यत् (निर्देशक के रूप में), अनुनायक तथा विधिलिङ् के केवल एक ही रूप का प्रयोग दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ विभक्ति साधित भूत रूपों का भी प्रचलन रहा। भूतकाल के रूपों का निर्देश प्राय साधित कर्मणि कृदन्त अथवा निष्ठा के द्वारा होने लगा। कृदन्त 'ध्य' अकर्मक क्रिया के साथ कर्ता की ओर सकर्मक क्रिया के साथ कर्म की विशेषता बतलाता था। इस प्रकार सकर्मक क्रिया का भूतकाल सदा कर्मवाच्य में ही होता था, कर्तृवाच्य म कभी नहीं। यह इस बात का द्योतक है कि क्रिया का भूतकालिक रूप विशेषणवत् प्रयुक्त होता था। डॉ० चाटुर्ज्या ने इसका कारण द्रविड़ भाषा का प्रभाव बतलाया है। उनका कथन है कि द्रविड़ भाषा म विशेषण का बोध क्रिया के माध्यम से स्वतः हो जाता है।[1] इसके विपरीत मध्य भारतीय आर्यभाषा में इसके लिए भावे या कर्मणि कृदन्त 'गत्' का प्रयोग करके काम चलाया जाता है, ठीक इसी रूप का व्यवहार नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में भी प्राप्त होता है। संस्कृत में वर्तमान कृदन्त (शतृ प्रत्ययान्त) और उद्देश्य मूलक क्रियानाम (तव्य प्रत्यय) का प्रचुर प्रयोग मिलता है। इसका प्रभाव मध्य भारतीय आर्यभाषा के क्रिया रूपों पर भी पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप उसमें नये काल रूपों का प्रादुर्भाव हुआ।[2] संस्कृत म स्वरान्त और व्यजनांत दोनों कोटि के धातु मिलते हैं। संस्कृत, प्राकृत में दोनों के स्थान पर केवल स्वर ध्वनि का ही प्रयोग दिखलाई देता है। इसी प्रकार संस्कृत के दस गणों का प्रयोग प्राकृत म बहुत कम दिखाई पड़ता है, और अपभ्रंश म आकर केवल एक ही गण का प्रयोग दिखाई पड़ता है, यहाँ सभी धातुओं का प्रयोग भ्वादिगण में हुआ है।[3] धातु रूपों म द्विवचन कोटि का लोप हो गया, आत्मनेपद के रूपों का व्यवहार कम होने लगा। लिट् तथा लट् के

१—डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी पृ० ६६।

२—वही।

३—अपवाद रूप में प्राकृत पैंगलम् की पुरानी पश्चिमी हिन्दी में 'घ'

यान पर कृदन्तज रूपों का ही प्रयोग दिखाइ पड़ने लगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राकृत म वर्तमानकाल के लिए लट्, आज्ञा के लिए लोट्, भविष्यत् के लिए लृट् तथा विधि रूप के लिए लिङ् का व्यवहार दिखाई पड़ता है, अन्य रूपों के लिए कृदन्त रूप ही व्यवहृत होते हैं।

संस्कृत की भाँति प्राकृत म भी वर्तमान और भविष्यत्काल के लिए समान तिङ् चिह्नों का व्यवहार होता है। संस्कृत का 'ष्य' विकरण वाला रूप प्राकृत म आकर 'स्स' के रूप में दिखाइ पड़ने लगा। नीचे उनका उदाहरण दिया जा रहा है—

वर्तमानकाल

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पढदि पढइ (सं० पठति)	पढन्ति (सं० पठन्ति)
मध्यम पुरुष	पढसि (सं० पठसि)	पढअ (सं० पठथ)
उत्तम पुरुष	पढामि (सं० पठामि)	पढामो (सं० पठाम)

भविष्यत् काल

प्रथम पुरुष	पढिस्सदि, पढिस्सइ (सं० पठिष्यति)	पढिस्सन्ति (सं० पठिष्यन्ति)
मध्यम पुरुष	पढिस्ससि (सं० पठिष्यसि)	पढिस्सध (सं० पठिस्यथ)
उत्तम पुरुष	पढिस्साम (सं० पठिष्यामि)	पढिस्सामो (सं० पठिष्याम)

हम इस बात का संकेत पहले ही कर चुके हैं कि प्राकृत म ही आकर आत्मनेपदी रूपों का अभाव दिखाइ पड़ता है। अपभ्रंश म प्राय परस्मैपद के ही रूप मिलते हैं। अपभ्रंश म उ० पु० एकवचन 'उँ' तथा बहुवचन में 'हुँ' तिङ् विभक्ति का प्रयोग होता है। अन्य रूपों म प्राकृतवत् तिङ् चिह्नों का व्यवहार होता है, जैसे—

(व्याग्गिया) के स्थान पर 'ए' विकरण (सं० य विकरण) का भी प्रयोग मिलता है परन्तु ये प्रयोग केवल छन्द के निर्वाह के लिए हुए जान पड़ते हैं। संदेशरासक की भाषा में भी कहीं कहीं 'ए' विकरण वाले रूपों का प्रयोग मिलता है परन्तु इन्हें भी छन्द निर्वाह के लिए ही प्रयुक्त मानना उचित है।

डॉ० व्यास प्राकृत पैंगलम् (भाषा शास्त्रीय अनुशीलन) भाग २ पृ० २३८

	एकवचन	बहुवचन
म० पु०	पढसि	पढहि
प्र० पु०	पढइ	पढंति, पढइँ

संस्कृत और प्राकृत की भाँति अपभ्रंश में भी वर्तमान काल के तिङ् चिह्नों का प्रयोग भविष्यत्काल में भी होता है।[४] उदा०—

अप० भणिसहि प्रा० भणिहिसि, शौ०मा० भणिस्सिसि सं० भणिष्यति।
अप० भणिसइ प्रा० भणिहिस्या, शौ०मा० भणिस्सिइ सं० भविष्यति।

भूतकाल के प्राय समी रूप अपभ्रंश में कृदन्तों से निर्मित हैं। केवल आसी (आसीत्) इसका अपवाद है, जिसका निर्माण तिङन्त रूप से हुआ है।

पालि के क्रिया रूपों में सरलीकरण की प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि पालि में संस्कृत की भाँति परस्मैपद तथा आत्मनेपद दोनों प्रकार के पदों का व्यवहार होता है, परन्तु आत्मनेपद का प्रयोग बहुत कम मिलता है। जहाँ संस्कृत में दस लकार थे, वहाँ पर पालि में केवल आठ पाये जाते हैं। पालि में भूतकाल के अर्थ का द्योतित करने के लिये लङ् और लुङ् रूपों का व्यवहार होता है परन्तु लुङ् का ही प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है, लङ् का बहुत कम। लिट् लकार का प्रयोग पालि में अत्यल्प दिखाई पड़ता है।

पालि भाषा में वैदिक भाषा के अनेक रूप संचित मिलते हैं। जहाँ लौकिक संस्कृत ने वैदिक संस्कृत के कई रूपों का परित्याग कर दिया, वहाँ पालि ने उसे सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया। पालि में परस्मैपद और आत्मनेपद के रूप समान रूप से व्यवहृत होते दिखाई देते हैं, जबकि वैदिक संस्कृत में उक्त दोनों रूपों के भेद में अस्पष्टता के ही लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। यद्यपि संस्कृत में इन दोनों रूपों (परस्मैपद और आत्मनेपद) का निर्वाह पूरी स्पष्टता के साथ किया गया है फिर भी पालि ने उन वैदिक धातु रूपों को प्रयोगार्ह बनाये रखा है, जो संस्कृत व्याकरण में स्वीकृत नहीं हो सके हैं[५]।

---

४ जा०बी० टगारे हिस्टारिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश पृ० ३०७।

५ वैदिक भाषा में 'श्रु' धातु के अनुज्ञाकाल के मध्यम पुरुष एकवचन तथा बहुवचन में क्रमश 'शृणुधी' और 'शृणोतु' रूप का व्यवहार

कृदन्तों के प्रयोग के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। वैदिक भाषा में निमित्त बोधक १४ प्रत्ययों का व्यवहार मिलता है, वे ये हैं- से, सेन, असे, असेन, क्से, कसेन, ध्यै, अध्यैन, कध्यै कध्यैन, शध्यै, शध्यैन, तवेन, तुम्। पाणिनीय संस्कृत में इनमें से केवल 'तुम्' (तु) प्रत्यय ग्रहण किया गया है परन्तु पालि में इसके अतिरिक्त 'तवेन' प्रत्यय का भी प्रयोग मिलता है। वैदिक दातवे अथवा दातवै को पालि ने 'दातवे' के रूप में सुरक्षित रखा है। इसके अतिरिक्त 'कातवे' (कतु म) विप्दातवे, निधातवे' पालि में सुरक्षित हैं, परन्तु लौकिक संस्कृत में इनका सर्वथा त्याग कर दिया गया है। लौकिक संस्कृत में उपसर्गयुक्त धातु में 'त्वा' प्रत्यय का व्यवहार किसी भी दशा में नहीं होता, उसके लिये वहाँ पर ल्यप् (य) प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है, वैदिक संस्कृत में उपसर्ग युक्त और उपसर्ग रहित दोनों प्रकार की धातुओं में त्वा प्रत्यय का व्यवहार होता था। पालि में भी यही त्वा प्रत्यय उक्त दोनों प्रकार की धातुओं में व्यवहृत होता है। पूर्वकालिक अर्थ के द्योतन के लिये वैदिक संस्कृत में 'त्वाम' और 'त्वीन' जैसे प्रत्ययों का व्यवहार मिलता है, पालि में ये रूप सुरक्षित दिखाई देते हैं[१], जैसे—वैदिक संस्कृत गत्वाय पालि गत्वान्, वैदि० सं० इष्ट्वीन् प्रा० कातून। लौकिक संस्कृत में उक्त रूप का प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता। इसी प्रकार वैदिक संस्कृत के अनेक रूपों का संग्रह पालि में प्राप्त है, जिसको लौकिक संस्कृत ने अप्रयुक्त समझ कर त्याग दिया।

प्राकृत क्रिया रूप

धातु

प्राकृत में आख्यात रूप में प्रयुक्त धातुओं में विविधता पाई जाती है। इसके तीन रूप पाये जाते हैं—कर्तरि, कर्मणि और भाव रूप। कृदन्त रूप

होता था, संस्कृत व्याकरण ने इन रूपों को बहिष्कृत कर दिया गया, परन्तु पालि ने इन रूपों को क्रमशः 'सुपाहि' और 'सुपोय्' रूपों में रक्षित रखा है। इसी प्रकार से वैदिक भाषा के 'हन्' धातु के लुङ् लकार उत्तम पुरुष एकवचन का 'वधी' का पालि ने 'वधि' के रूप में सुरक्षित रखा है परन्तु संस्कृत व्याकरण में यह अव्यवहृत है।—भरत सिंह उपाध्याय पालि साहित्य का इतिहास पृ० ७०।

१ भरत सिंह पालि साहित्य का इतिहास, पृ० ७०।

में व्यवहृत धातुओं के भी अनेक रूप पाये जाते हैं। यहाँ पर सर्वप्रथम हम आख्यात रूप में व्यवहृत धातुओं की विशेषताओं का परिचय करायेंगे।

कर्तरि रूप

प्राकृत में धातुओं के दो भेद मिलते हैं—

१—व्यञ्जनांत धातु और (२) स्वरात धातु। इन दोनों धातुओं के के प्रयोग के नियम क बारे म नीचे संक्षित विचार किया जा रहा है।

(क) व्यंजनान्त धातु—धातु के बाद 'अकार का योग होने पर 'अकार' विकरण रूप में प्रयुक्त होता है,[७] जैसे—

भण् + अ—भण—भणइ   स० भणति

कह् + अ—कह—कहइ   स० कथयति

हस् + अ हस—हसइ   स० हसति

(ख) अकारात के अतिरिक्त शेष स्वरात धातुओं में 'अ' विकरण विकल्प से लगता है[८]—

पा + अ—पाइ—पाइ स० पाति

जा + अ—जाअ—जाअइ, जाइ स० याति

धा + अ—धाअ—जाअइ, धाइ स० धावति, दधाति

झा + अ—झाअ—झाअइ, झाइ स० ध्यायति

(ग) उ वर्ण में अन्त होने वाली धातुओं म अन्त्य 'उ वर्ण' का 'अव' हो जाता है[९] जैसे—

हु—हव्—हव—हइ   स० जुहोति

चु—चव्—चव—चवइ   स० च्यवते

रु—रव्—रव—रवइ   स० रौति

सू—सव्—सव—सवइ   स० सूते

प + सू—पसव्—पसव—पसवइ स० प्रसूते

(घ) ऋवर्णान्त धातुओं का अन्त्य ऋवर्ण 'अर' हो जाता है,[१०] जैसे—

---

७ प० बेचरदास जीवराज दोशी प्राकृत व्याकरण, पृ० २४५।

८ प० बेचरदास जीवराज दोशी प्राकृत व्याकरण पृ० २४५।

९ वही।

१० ऋतोऽर प्राकृत प्रकाश ८।१२।

कृ – कर्—कर-करइ   स० करोति
धृ—धर् – धर – धरइ   स० धरति
मृ—मर्—मर—मरइ   स० म्रियते
वृ वर् - वर—वरइ   स० वृणोति, वृणुते
हृ—हर्—हर—हरइ   स० हरति

(ङ) उपान्त्य ऋवर्ण वाले धातु के ऋवर्ण का 'अरि' हो जाता है[11]—

कृष्—करिस्—करिस—करिसइ   स० कर्षति
मृष —मरिस—मरिस – मरिसइ   स० मृष्यते
वृष्—वरिस् वरिस वरिसइ   स० वर्षति
हृष्—हरिस्—हरिस—हरिसइ   स० हृष्यति

(च) धातु के इवर्ण और उवर्ण का अनुक्रम में 'ए' हो जाता है—

नी—नेइ   स० नयति
उड्डी —उड्डेइ स० उड्डयते
नेंति—स० नयन्ति
उड्डेंति स० उड्डयन्ते

(छ) कुछ धातुओं के उपान्त्य स्वर का दीर्घ हो जाता है[12]—

रुष्—रूस्—रूस – रूसइ   स० रुष्यति
तुष् – तूस् – तूस – तूसइ   स० तुष्यति
शुष्—सूस—सूस—सूसइ   स० शुष्यति
दुष्—दूस—दूस —दूसइ   स० दुष्यति
पुष पूस्—पूस—पूसइ   स० पुष्यति इत्यादि।

(ज) धातु के नियत स्वर के स्थान में प्रयोगानुसार बीज स्वर भी हो जाता है[13]—

हवइ—हिवइ   स० भवति
चयइ—चुणइ   स० चिनोति
धावइ—धुवइ   स० धावति

---

११ पं० बेचरदास जीवराज दोशी प्राकृत व्याकरण पृ० २४५।
१२ वही, पृ० २४७।
१३ पं० बेचरदास जीवराज दोशी प्राकृत व्याकरण, पृ० २४७।

रुवइ—रोवइ स० रोदति

सद्दहण-सद्दहाण स० श्रद्धानाम्

(झ) कुछ धातुओं के अन्त्य व्यंजन प्रयोगानुसार द्वित्व हो जाते हैं[१४]

वि० फुडइ—फुड्डइ स० स्फुटति

चलइ—चल्लइ स० चलति

पमीलइ—पम्मिलइ स० प्रमीलति

निमीलइ निम्मिलइ स०निमीलति

समीलइ—सम्मिलइ स० सम्मीलति

नि० जिम्मइ स० जेमेति, परिअट्टइ स० पर्यटति

सक्कइ स० शक्नोति, पलोट्टइ स० प्रलोटति

लग्गइ स० लगति, तुट्टइ   स० त्रुटति इत्यादि।

(ञ) कुछ धातुओं के अन्त्य व्यंजन का प्रयोगानुसार 'ज' हो जाता है[१५]—

सपजइ स० सम्पद्यते, सिज्जइ स० स्विद्यति

खिज्जइ स० खिद्यते।

वर्तमान काल[१६]

	ए० व०	ब० व०
उ० पु०	मि	मो, मु, म
म० पु०	सि, से	इ, इत्थ, हि, त्था
प्र० पु०	इ, ए, ति, अइ	अन्ति, न्ते, इरे

उत्तम पुरुष एकवचन

प्राकृत में उत्तम पुरुष एकवचन के लिए 'मि' रूप का प्रयोग मिलता है। इसका सम्बन्ध सं० उ० पु० एकवचन 'मि' प्रत्यय से है, जैसे—

होमि, हुवामि या हुवमि, सं० भवामि (भू)

प्रा० लिहमि, सं० लिखामि (लिख्)

---

१४ वही

१५ वही प० २४८।

१६ आर० पिशेल कम्पेरेटिव ग्रामर आफ प्राकृत लैंग्वेजेज। ४५४ पृ० ३३५।

प्राकृत में इसके लिये लगने वाले प्रत्यय निम्नलिखित हैं—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	मु	मो
म० पु०	सु, इज्जसु, इज्जहि, इज्जे	ह, हु,
अ० पु०	उ (शौ० दु)	अन्तु

मु और सु प्रत्ययों के परे रहने पर अ > आ हो जाता है, जैसे–भवाहि (म० पु० एकवचन) (भू)। अकारान्त में लग 'हि' प्रत्यय का लोप हो जाता है, जैसे म० पु० एकवचन भव। प्राकृत के आज्ञार्थ प्रयुक्त होने वाले सभी प्रत्ययों का एक उदाहरण संस्कृत के आज्ञा (लोट्) के प्रत्ययों के समानान्तर में दिया जाता है—

सं० भवामि > प्रा० होमु, हुवमु (उ० पु० ए० व०)
सं० भवाम > प्रा० होमो, हुवमो (उ० पु० ब० व०)
सं० भव > प्रा० होसु, हुवेहि, हवसु, हवेहि (म० पु० ए० व०)
सं० भवत् > प्रा० होह, हुवह (म० पु० ब० व०)
सं० भवतु > प्रा० होउ भोदु, होदु, हुवउ,
हुवदु, हुज, होज्ज, होज्जउ (अ० पु० ए० व०)
सं० भवन्तु > प्रा० होन्तु, हुवन्तु, हवन्तु (अ० पु० ब० व०)

विधिलिङ्

आज्ञार्थ की प्रक्रिया प्राय: विध्यर्थ में भी व्यवहृत होता है। विधिलिङ् का प्रयोग अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री में अधिक देखा जाता है। अन्य प्राकृतों में इसका व्यवहार बहुत कम होता है। इन रूपों का सम्बन्ध संस्कृत के दिवादिगण रूप यात्, यास, याम से है जैसे[10]

वट्टेज्जा, (प्र० पु० ए० व० और ब० व०)
वट्टेज्जासि, वट्टेज्जासु (म० पु० ए० व०)
वट्टेज्जाइ, वट्टेज्जाह (म० पु० ब० व०),
वट्टेज्जा, वट्टेज्ज (उ० पु० ए० व०),
वट्टेज्जाम (उ० पु० ब० व०),

शौरसेनी आदि प्राकृतों में विधिलिङ् के रूप भ्वादिगण रूप एत्, एस, एम के समानान्तर मिलते हैं, जैसे–पढ़ (प्र० पु० ए० व० और

---

१० डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल प्राकृत विमर्श पृ० २१६।

व० व०), वट्टे (म० पु० ए० व० और ब० व०), वट्टेअ (उ०पु०ए०व० और ब० व०, विधिलिङ् के रूपों में विशेष महत्त्व म० पु० और अ० पु० के रूपों का है। ऐसे रूप आज्ञार्थ रूपों के काफी निकट हैं। इनकी चर्चा नीचे की जा रही है।

मध्यम पुरुष एकवचन

मध्यम पुरुष एकवचन में व्यवहृत होने वाले 'हि' प्रत्यय की व्युत्पत्ति प्रा० भा० आ० के विकरणहीन (अथेमेटिक) धातु के आज्ञा म० पु०-ए० व० तिङ् चिह्न धि (जुहुधि) से मानी जाती है।[३१] प्राकृत पैंगलम् तथा अपभ्रंश में भी इसी प्रत्यय का व्यवहार मध्यम पुरुष एकवचन में दिखाई देता है।[३२] 'सु' का विकास प्रा० भा० आ० के आत्मनेपदी आज्ञा मध्यम पुरुष एकवचन स्व (ष्व) से हुआ जाना पड़ता है। यही स्व > सु के रूप में परिणत हो गया—स्व > पालि स्सु > सु।

मध्यम पुरुष बहुवचन

मध्यम पुरुष बहुवचन में प्रयुक्त होने वाले 'ह' और 'हु' रूप का विकास प्रा० भा० आ० (आत्मने० म०पु०) एकवचन के रूप—'स्व' से माना जाता है, जिसका प्रयोग बहुवचन के साथ भी होने लगा। टगारे के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति यह है

*अथ > प्रा०भा०आ० (अ) थ वर्तमान म०पु० व०व० तथा—
उ > (तु)[३३]— *कुरुथ > कुरुथ > करह > करहु।

अन्य पुरुष एकवचन

प्राकृत में आज्ञार्थ अन्य पुरुष एकवचन में 'उ' (शौ० दु) प्रत्यय प्रयुक्त होता है। जैसे—पढउ, पढेउ, पढदु। इस 'उ' प्रत्यय की व्युत्पत्ति प्रा० भा० आ० आज्ञा अ० पु० ए०व० 'तु' से मानी जाती है[३४]—पठतु > पठतु > म० भा० आ० पढउ। अपभ्रंश में इसके लिये यही प्रत्यय व्यवहृत

---

३१ टगारे। १३८ पृ० २९१।
३२ डॉ० व्यास प्राकृत पैंगलम् भाग २। १०८ पृ० २४८।
३३ टगारे। १३८ पृ० ३००
३४—पिशेल। ४६९ पृ० ३३६।

होता है।[२५] शौरसेनी तथा मागधी में यही 'उ' 'दु' के रूप में प्रयुक्त होता है—भोदु < भवतु (सं० मू०)।

अन्य पुरुष बहुवचन

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा में अन्य पुरुष बहुवचन के लिए-अन्तु प्रत्यय का व्यवहार होता है, जिसका विकास प्रा० भा० आ० अन्तु- गच्छन्तु, भवन्तु) से माना जाता है। अपभ्रंश में उसके लिए 'हिं' प्रत्यय का भी व्यवहार होता है[२६] जैसे—लेहिं, देहिं, करहि, पढ़हिं इत्यादि।

णिजन्त (प्रेरणार्थक) रूप

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा में णिजन्त रूपों के दो चिह्न पाये जाते हैं-'ए' और 'आव'-आवे या कभी कभी अव। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में इन दोनों चिह्नों के लिए क्रमश: आय-अय और आपय-अपय आदि चिह्नों का व्यवहार दिखाई देता है। यहाँ पर प्राकृत णिजन्त रूपों में लगने वाले चिह्नों के उदाहरण दिए जाते हैं—

कृ-कर-कार, करे, कराव, करावे (सं० कारयति)
हस्-हस-हास, हासे, हसाव, हसावे (सं० हासयति)
दृश्-दरिस-दरिस-दरिसे, दरिसाव, दरिसावे (दर्शयति)

उपान्त्य गुरु स्वर वाले (स्वरान्त या व्यंजनांत) धातुओं में ऊपर बताये गये प्रत्ययों के स्थान पर विकल्प से 'अवि' प्रत्यय लगाने से णिजन्त रूपों का निर्माण होता है, यथा—

तुष्—तोषि—तोसि, तोसवि, तोस, तोसे, तोसाव, तोसावे (तोषयति)
मुष्—मोषि—मोसि—मोसवि, मोस, मोसे मोसाव, मोसावे।
दुह्—दोहि—दोहवि, दोह, दोहे, दोहाव, दोहावे।

इस प्रकार से प्रेरणार्थक रूपों के उपरान्त तत्तत् पुरुष बोधक प्रत्यय लगाने से अनेक प्रकार के रूप बनाये जा सकते हैं।

प्रेरणार्थक प्रक्रिया के अतिरिक्त संस्कृत की अन्य धातुज प्रक्रियाओं का विशेष हाथ है जिसमें सन्नन्त, यङन्त और नाम धातु प्रक्रियायें महत्वपूर्ण

२५—टगार । १३८ पृ० २०० ।
२६—पिशेल । ४७१ पृ० ३२७-२८ ।

हैं, परन्तु प्राकृत में इनका कोई महत्त्वपूर्ण विधान नहीं दिखाई देता। ऐसा प्रक्रियाओं का निर्माण प्रायः संस्कृत के सिद्ध रूपों के द्वारा होता है[१७] जैसे–

सुस्सूसइ ∠स० शुश्रूषति (सन्नन्त)
लालप्पइ ∠सं० लालप्यते (यङन्त)

नाम धातु

प्राकृत की नाम धातुओं की विशेषताएँ नीचे दी जाती हैं–प्राकृत में संस्कृत के नाम धातुओं में लगने वाले 'य' प्रत्यय का विकल्प से लोप हो जाता है—

गुरुकायते—गरुआइ, गरुआअइ
दमदमायते दमदमाइ, दमदमाअइ
लोहितायते-लोहिआए इ, लोहिआअए-इ

संस्कृत की प्राय वे सभी नाम धातुएँ चुरादिगणी होती हैं, जिनके अनन्तर क्रियापद की रचना के लिये—आय् या—आपय् चिह्न का प्रयोग किया जाता है। प्राकृत में अनेक नाम धातुओं का निर्माण इन्हीं चुरादिगणी रूपों के द्वारा हुआ है। इसके अतिरिक्त प्राकृत में कुछ नवीन धातु रूपों का भी विकास दिखाई देता है।[१८]

प्राकृत में धातु के पश्चात् 'इज' और–ईअ रूप जोड़ने से कर्मवाच्य के रूप बनते हैं, जैसे—पढ़—पढिज्जइ, हस—हसिज्जइ, पढीअदि, गमीअदि (शौर०)।

कृदन्तज रूप

वर्तमानकालिक कृदन्त

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में धातुओं के उपरान्त–अन्त या मान–आन (शतृ और शानच् प्रत्यय) लगाकर वर्तमानकालिक कृदन्त रूप बनाये जाते हैं। परस्मैपदी धातुओं में–अन्त (शतृ) और आत्मनेपदी धातुओं में मान आन (शानच्) प्रत्यय का प्रयोग किया जाता था। इसके सम्बन्ध में दूसरे अध्याय में विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। प्राकृत में आकर अन् (अन्त) का अन्तो (पढन्तो, भणन्तो) रूप दिखाई पड़ता है। स्त्रीलिंग

---

१७ दोशी प्राकृत व्याकरण पृ० २८८-८९।
१८ डॉ० व्यास प्राकृत पैंगलम् भाग २। १११ पृ २४५।

म अतो का अती (पढन्ती, भणन्ती) हो जाता है। आत्मनेपदी धातुओं के प्रायः लोप होने के कारण प्राकृत में माण मान वाले रूपों का व्यवहार बहुत कम दिखाई पड़ता है।[३९]

अपभ्रंश में प्राय 'अन्त' वाले रूप ही प्राप्त होते हैं, उसमें पाये जाने वाले माण, वाले रूप प्राकृताकृत हैं।[४०] सदेशरासक म-अन्त रूप तथा स्त्रीलिंग म न्ती रूप उपलब्ध होता है।[४१]

कर्मवाच्य भूतकालिक कृदन्त

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में इसके लिए त (क्त) प्रत्यय का व्यवहार होता था,—पठित, गत इत्यादि। इसके अतिरिक्त कुछ 'न' वाले रूप भी प्राप्त होते हैं, यथा—छिन्न, भिन्न, मग्न इत्यादि। मध्य भारतीय आर्यभाषा म त (क्त) वाले रूपों का विकास 'इअ' के रूप में दिखाई पड़ता है। शौरसेनी में इसका इद रूप मिलता है, जैसे—दुहिअ∠दुग्ध (सं० दुहित), हणिअ∠हत, सं० हनित। जणिद (शौरसेनी)∠जनित, (जनित) इच्छिद (शौरसेनी)∠इच्छित।[४२]

'न' वाले निष्ठा रूपों का विकास मध्य भारतीय आर्य भाषा में कहीं कहीं 'ण' के रूप में हुआ है, कुछ स्थानों पर 'न' ही रह गया है, जो नीचे दिए गए उदाहरण से स्पष्ट है—

दिण्ण (महा०), दिन्न (जै० म०)∠*दिद्न (=दत्त)

भविष्यत्कालिक कर्मवाच्य कृदन्त

प्राकृत में भविष्यकालिक कृदन्त के लिए अव्व रूप का व्यवहार दिखाई देता है। इसका विकास सं० तव्य > अव्व से माना गया है। नीचे इन रूपों के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

---

३९ आर० पिशेल कम्पेरेटिव ग्रामर आफ प्राकृत लैंग्वेजेज। ५६० ६१ पृ० ३८६।

४० जी०वी० टगारे। १४७ पृ० ३१४।

४१ भायणी सदेशरासक। ९४३, डॉ० व्यास प्राकृत पैंगलम् भाग २। ११२ पृ० २५६ से उद्धृत।

४२—आर० पिशेल। ५६५ पृ० ३८८।

हस—हसिअ-वो (महा०), हसिव्वो (शौरसेनी)
हसणीओ (शौर०), हसणिज्जो (महा०)

पूर्वकालिक रूप

पूवकालिक रूप के बोध कराने के लिए प्राकृत म 'त्ता' रूप का प्रयोग मिलता है। शौरसेनी म—दूण, मागधी में—ऊण और अर्धमागधी में 'त्ता' के अतिरिक्त त्ताण रूप का भी प्रयोग दिखाइ देता है, यथा—

हस-हसित्ता (अ०मा०), हसेऊण, हसिऊण (मागधी), हसिदूण (शौर०)
हसित्ताण (अर्धमागधी) ∠स० हसित्वा।

'त्त' प्रत्यय का सम्बन्ध प्रा० भा० आ० 'त्वा' से है। अधमागधी म पाये जाने वाले 'त्ताण' रूप का विकास वैदिक रूप *त्वान से माना जाता है। अर्ध मागधी म इसका वैकल्पिक रूप 'तुआण' भी प्राप्त होता है।[४३] जैसे—घेत्तुआण, मोत्तुआण इत्यादि। इसी प्रकार शौरसेनी 'दूण' तथा मागधी 'ऊण' रूपों का सम्बन्ध भी उक्त *त्वान से माना जाता है। इसक अतिरिक्त प्राकृत म पूवकालिक अथ म 'उअ' प्रत्यय का भा प्रयाग होता है, जैसे—कदुअ ∠स० कृत्वा, गदुअ ∠स० गत्वा इत्यादि।

पालि क्रिया रूप

रूप बनाने की सुविधा के लिए पालि की धातुएँ दस गणों म विभक्त हैं। पालि म तान काल होते हैं—वतमानकाल, भूतकाल, भविष्यत्काल (लट्)। सस्कृत की भाँति पालि म भी सभी कालों म धातुओं के रूप परस्मैपदी तथा आत्मोपदी दो प्रकार के होते ह, परन्तु परस्मैपदी रूपों का ही प्रयोग अधिक दिखाइ देता है। तान कालों के अतिरिक्त पालि म अनुज्ञा और विधिलिङ् के भाव भी पाये जाते हैं। अपूणभूत (लङ्) और हेतुहेतुमत् भूत (लङ्) वाले रूप अपक्षाकृत कम पाये जाते हैं। नीचे पालि म व्यवहृत परस्मैपदी रूपों का उल्लेख किया जा रहा है[४४]।

वर्तमानकाल

पालि में वर्तमानकाल के रूपों में प्रायः उन्हीं प्रत्ययों का व्यवहार होता

४३—आर० पिशेल ५८३ पृ० ३६६।
४४—ए० बरुआ : इ ट्रोडक्शन टु पाली, पृ० ४६।

अपूर्णभूत (लङ्)

पालि में अपूर्ण (अनद्यन) भूतकाल के अर्थ का द्योतित करने के लिये संस्कृत की भाँति 'अ' आगम का प्रयोग किया जाता है, तत् पश्चात् धातु के पश्चात् निम्नलिखित तिङ् चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। कभी कभी प्र०पु० एकवचन में आगम का प्रयोग नहीं होता[४९]।

प्र०पु० आ, अ (भवा, अभवा, अभव ∠ सं० अभवत्) उ, ऊ (अभवु,अभवू)
म०पु० ओ (अभवो ∠ सं०अभव) इत्थ, उत्थ (अभवित्थ, अभवुत्थ)
उ०पु० अ शून्य रूप (अभवं ∠ सं०अभवम्) उम्हा, इम्हा, इम्ह (अभवुम्हा, अभविम्हा, अभविम्ह)

परोक्षभूत (लिट्)

पालि में परोक्षभूत में द्वित्व रूप का प्रयोग होता है। परोक्षभूत के अर्थ का बोध कराने के लिये पालि में निम्न तिङ् चिह्नों का प्रयोग होता है, वे नीचे दिये जाते हैं[५१]—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अ या शून्य बभूव ∠ सं० बभूव	उ (बभूवु ∠ सं० बभूवु)
मध्यम पुरुष	ए बभूवे ∠ सं० बभूविथ	इत्थ (बभूवित्थ ∠ सं० बभूव)
उत्तम पुरुष	अ बभूव ∠ सं० बभूव	इम्ह (बभूविम्ह ∠ सं० बभूव)

हेतुहेतुमद्भूत (क्रियातिपत्ति-लृङ्)

पालि में हेतुहेतुमद्भूतकाल के रूप संस्कृत से काफी साम्य रखते हैं। जिस प्रकार संस्कृत में धातु के पूर्व 'अ' आगम का प्रयोग कर धातु के पश्चात् सामान्य भविष्यत् (लृट् लकार) के स्य (ष्य) रूप जोड़कर हेतुहेतुमद्भूत रूप बनाये जाते हैं, उसी प्रकार पालि में (स्स) जोड़कर इसका रूप अनद्यन भूत (लङ्) के आधार पर चलता है, तथा प्राय उन्हीं तिङ् चिह्नों का प्रयोग भी होता है,[५२] जैसे अ + पठ् + स्स + आ = अपठस्सा।

५०—ए० बरुआ - इन्ट्रोडक्शन टु पालि, पृ० ८०।
५१ ए० बरुआ इन्ट्रोडक्शन टु पालि पृ० ४८।
५२ वही पृ० ५०।

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अभविस्सा ∠ सं० अभविष्यत्	अभविस्संसु ∠ सं० अभविष्यन्
मध्यम पुरुष	अभविस्से ∠ सं० अभविष्यः	अभविस्सथ ∠ सं० अभविष्यत
उत्तम पुरुष	अभविस्सं < सं० अभविष्यम्	अभविस्सम्हा ∠ सं० अभविष्याम

आत्मनेपदी रूप

इस बात का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि पालि में प्राय परस्मैपदी रूपों का ही अधिक प्रयोग होता है, आत्मनेपदी का अत्यन्त कम। यहाँ पर नीचे आत्मनेपदी रूपों में लगने वाले तिङ् रूपों का उदाहरण दिया जा रहा है--

वर्तमानकाल

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ते (भवते ∠ सं० भवते)	न्ते (भवन्ते ∠ सं० भवन्ते)
म० पु०	से (भवसे ∠ सं० भवसे)	व्हे (भवव्हे ∠ सं० भवध्वे)
उ० पु०	ए (भवे ∠ सं० भवे)	म्हे (भवम्हे ∠ सं० भवामहे)

अनुज्ञा (लोट्)

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	त (भवत ∠ सं० भवताम्)	अन्त (भवन्त < सं० भवन्ताम्)
म० पु०	स्सु (भवस्सु < सं० भवस्व)	व्हो (भवव्हो < सं० भवध्वम्)
उ० पु०	ए (भवे ∠ सं० भवे)	आमसे (भवामसे < सं० भवामहै)

सामान्यभूत (लुङ्)

प्र० पु० आ (अभवा, भवा, अभवित्थ ∠ सं० अभवत्) ऊ (अभवू, ∠ सं० अभवत्)

म० पु० से (अभवसे, भवस ∠ सं० अभव) व्हं (अभवव्हं, भवव्हं ∠ सं० अभवत्)

उ० पु० अ (अभव, अभव, अभव, अभव ∠ सं० अभवम्) म्हे (अभवम्हे, भवम्हे, ∠ सं० अभवाम्)

भविष्यत्काल (लृट्)

प्र० पु० स्सते (भविस्सते ∠ सं० भविष्यते) स्सन्ते (भविस्सन्ते ∠ सं० भविष्यन्ते)

म० पु० स्ससे (भविस्ससे ∠ सं० भविष्यसे) स्सव्हे (भविस्सव्हे ∠ सं० भविष्यध्वे)

उ० पु० स्सं (भविस्सं ∠ सं० भविष्ये) स्साम्हे (भविस्साम्हे ∠ सं० भविष्यामहे)

विधिलिङ्

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	एय (भवेय <सं० भवेत्)	एर (भवेर <सं० भवेरन्)
म० पु०	एथो (भवेथो <सं० भवेथाः)	एय्याव्हो (भवेय्याव्हो <सं० भवेध्वम्)
उ० पु०	एय्य (भवेय्य <सं० भवेय)	एय्याम्हे (भवेय्याम्हे <सं० भवेमहि)

अपूर्णभूत (लङ्)

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	त्थ (अभवत्थ <सं० अभवत्)	त्थु (अभवत्थु <सं० अभवन्)
म० पु०	से (अभवसे <सं० अभवः)	व्हं (अभवव्हं <सं० अभवत)
उ० पु०	इं (अभविं <सं० अभवम्)	म्हसे (अभवाम्हसे <सं० अभवाम)

परोक्षभूत (लिट्)

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	त्थ (बभूवित्थ <सं० बभूवे)	रे (बभूविरे <सं० बभूविरे)
म० पु०	त्थो (बभूवित्थो <सं० बभूवसे)	व्हो (बभूविव्हो <सं० बभूवध्वे)
उ० पु०	इ (बभूवि <सं० बभूवे)	म्हे (बभूविम्हे <सं० बभूवमहे)

हेतुहेतुमद्भूत (लृङ्)

प्र० पु० स्सथ (अभविस्सथ <सं० अभविष्यत्)
स्सिसु (अभविस्सिसु <सं० अभविष्यत्)
म० पु० स्ससे (अभविस्ससे <सं० अभविष्यथ)
स्सव्हे (अभविस्सव्हे <सं० अभविष्यध्वम्)
उ० पु० स्सं (अभविस्सं <सं० अभविष्ये)
स्साम्हसे (अभविस्साम्हसे <सं० अभविष्यामहि)

प्रेरणार्थक क्रिया

पालि में प्रेरणार्थक रूप बनाने के लिये धातु के उपरान्त एति, अयति, आपेति, आपयति आदि प्रत्यय जोड़े जाते हैं[1] जैसे—

कर-कारेति, कारयति, कारापेति, कारापयति <सं० कारयति
पच-पाचेति, पाचयति, पाचापेति, पाचापयति <सं० पाचयति
कम्प-कम्पेति, कम्पयति, कम्पापेति, कम्पापयति <सं० कम्पयति।
लग-लग्गेति, लग्गयति, लग्गापेति, लग्गापयति <सं० लग्नयति लिप्यते

---

1. निरुत्ति सार मञ्जूसा कच्चायन व्याकरण ७।२।७ पृ० ४१२।

सन्नन्तधातु (इच्छार्थक)

पालि म इच्छा का अर्थ सूचित करने के लिये 'भुज', 'घस', 'हर' और 'पा' धातुओं के अनन्तर 'ख' 'छ' या 'स' प्रत्ययों का व्यवहार होता है,[५४] जैसे—

भुज + ख + ति = बुभुक्खति
जि + घस + छ + ति = जिघच्छति
जि + हर + (गि) + स + ति = जिगिसति
सु + स + ति = सुस्सुसति
पा + स + ति = पिपासति

कभी कभी तिज, गुप, कित, मान धातुओं के अनन्तर 'ख', 'छ' और 'स' प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं[५५]—यथा, तिज + ख + ति = तितिक्खति, गुप + छ + ति = जिगुच्छति, मान + स + ति = वीमसंति इत्यादि।

यङन्त

पालि की यङन्त धातुयें सीधे संस्कृत से आई हुई प्रतीत होती हैं,[५६] जैसे—कम = चङ्कमति <सं० चङ्क्रम्यते, गम = जङ्गमति <सं० जङ्गम्यते इत्यादि। क्रिया के ऐसे रूप पालि म बहुत कम मिलते हैं।[५७]

नामधातु

पालि म नामिक रूपों (संज्ञा आदि) के अनन्तर 'आय' और 'इय' प्रत्यय जोड़कर नाम धातु बनाया जाता है,[५८] जैसे—

पुत्त + आय + ति = पुत्तायति ∠ सं० पुत्रायते।
छत्त + इय + ति = छत्तीयति ∠ सं० छत्रायते।

निमित्तार्थक प्रत्यय

संस्कृत के तुमुन् प्रत्यय के स्थान पर पालि म धातु के परे 'तु' 'ताये' और तवे प्रत्यय व्यवहृत होता है,[५९] यथा—

५४—तिवारी और शर्मा कच्चायन व्याकरण, ३।२।३ पृ० २५१।
५५—वही, ३।२।३ पृ० २५०।
५६—गाइगर पाली लिटरेचर एण्ड लग्वेज, पृ० २११।
५७—ए० बरुआ, इट्रोडक्शन टु पाली पृ० ५८।
५८—तिवारी और शर्मा कच्चायन व्याकरण ३।२४, पृ० २५१, ३।२।४–६ पृ० २५२।
५९—वही, ४।२।१२ पृ० ३१२।

दा—दातु, दत्ताय, दातवे ∠ सं० दातुम्
पा—पातु, पत्ताय, पातवे ∠ सं० पातुम्
कर—कत्तु, कत्ताय, कातवे ∠ सं० कर्तुम्
'तवे' वैदिक संस्कृत में व्यवहृत होता है[६०]।

पूर्वकालिक क्रिया

पालि में पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ को सूचित करने के लिये धातु के पश्चात् त्वा' 'त्वान' और 'तून' प्रत्यय लगाया जाता है, किन्तु त्वा प्रत्यय का व्यवहार अधिक देखा जाता है[६१]। 'तून' प्रत्यय का प्रयोग कदाचित् ही होता है[६२]।

कर + त्वा = कत्वा, कर + त्वा = कत्वान, कर + तून = कतून, गम — गत्वा, गन्त्वान्, गन्तून।

उपसर्ग युक्त धातु में संस्कृत की भाँति पालि में भी 'त्वा' का 'य' हो जाता है, यथा—

आ + दा + य = आदाय, प + हा + य = पहाय ∠ सं० विहाय,
वि + धा + य = विधाय ∠ सं० विधाय

धातु के साथ समास होने पर 'त्वा' का विकल्प से 'तु' 'यान' 'अच्च' और 'वान' हो जाता है,[६३] यथा—

अभिहट्टु < अभिहरित्वा, अनुमोदियान < अनुमोदित्वा,
आहच्च < आहनित्वा, दिस्वान < पस्सित्वा,
दिस्वा < दृष्ट्वा।

कुछ पूर्वकालिक क्रिया रूप अनियमित होते हैं—
आगम्म < आगम्य, आरुह्य < अवरुह्य, लद्धा < लब्ध्वा, लद्धान < लब्ध्वा, निक्खम्म < निष्क्रम्य, आरुह्य < अवरुह्य, कातून < कृत्वा।

क्रिया का वाच्य

पालि में तीन वाच्यों—कर्तृ वाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य का प्रयोग होता है, जैसे—

६०—ए० बरुआ इन्ट्रोडक्शन टु पाली पृ० ६० ।
६१—तिवारी और शर्मा कच्चायन व्याकरण ७।२।१५ पृ० ३१४।
६२—ए० बरुआ : इन्ट्रोडक्शन टु पाली पृ० ६०।
६३ मोग्ग० व्या० ६।१६४, १६५।

जनाः फलानि गण्हन्ति <जना फलानि ग्रहणन्ति (कर्तृवाच्य)
दासेन ओदनो पचीयति <दासेन ओदन पच्यते (कर्मवाच्य)
त्वया अत्र भूयते <त्वया अत्र भूयते (भाववाच्य)।

पालि में परस्मैपदी रूपों का प्रयोग प्राय कर्तृवाच्य म और आत्मने पदी रूपों का व्यवहार कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है। (कच्चा० व्या० ३।२।२२–२५)

कृदन्त

वर्तमानकालिक कृदन्त

संस्कृत म 'न्त' (शतृ) और मान (शानच्) प्रत्यय जोड़कर वर्तमानकालिक कृदन्त की रचना होती है।[६४] न्त (शतृ) प्रत्यय का प्रयोग परस्मैपदी धातुओं के साथ और मान का प्रयोग आत्मनपदी धातुओं के साथ होता है। पालि में परस्मैपदी धातुओं में भी 'न' के अलावा मान् प्रत्यय का प्रयोग समान रूप से होता है[६५] जैसे–गच्छ–गच्छन्तो, गच्छमानो <सं० गच्छन्।

'न्त' और 'मान' प्रत्ययों से पूर्व भविष्यत् काल में 'स्स' का आगम होता है, यथा––पठिस्सन्तो, पठिस्समाना।

स्त्रीलिंग म 'न्त' के स्थान पर 'संस्कृत और प्राकृत की भाँति 'न्ता' प्रत्यय जुड़ता है, यथा—गच्छन्ता, पठन्ता इत्यादि।

भूतकालिक कृदन्त

पालि में धातु के पश्चात् 'क्त' प्रत्यय लगाने से भूतकालिक कृदन्त बनता है।[६६] जैसे—

दिस दिट्ठो <सं० दृष्ट
गम गतो <सं० गत
कर कत <सं० कृतम्
हस हसित <सं० हसितम्

भूतकालिक कृदन्त के अर्थ को द्योतित करने के लिये धातु के परे पालि

---

६४ तिवारी और शर्मा कच्चायन व्याकरण ४।२।१६ पृ० ३१४।
६५ प० बरुआ इन्ट्रोडक्शन टु पाली, पृ० ५८।
६६ तिवारी और शर्मा कच्चायन व्याकरण ४।२।७ पृ० ३१०।

तवन्तु और 'तावी' प्रत्यय का भी यवहार होता है,[६७]यथा—/नि-
जितवन्तु, विजितावी।

विष्यत्कालिक कृद्‌न्त (त्व और अनीय प्रत्यय)

सस्कृत के तव्य और अनीय प्रत्यय के स्थान पर पालि म तब्ब और
नीय प्रत्यय जाड़ा जाता है। इसका प्रयोग कमवाच्य और भाववाच्य म
ता है,[६८]यथा—

पठ पठितब्ब, पठनीय—पठितव्यम्, पठनीयम्
हस हसितब्ब, हसनीय—हसितव्यम्, हसनीयम्

ण प्रत्यय

उपर्युक्त अर्थ में धातु के पश्चात् 'ण्यण' प्रत्यय का व्यवहार पालि म
ता है[६९]। 'ण्यण' का केवल 'य' शेष बचता है, यथा—

पठ—पाठ्य ∠पाठ्यम्
वच—वाच्य ∠वाच्यम्

र्तृवाचक कृद्‌न्त

'वाला' के अर्थ में पालि म धातु के पश्चात् 'तु' और 'णक' प्रत्यय
ड़ा जाता है। 'तु' का 'तु' और 'णक' का अक शेष बचता है, यथा—

दा—दातु, दायको ∠दाता, दायक
वच—वत्तु, वाचको ∠वक्ता, वाचक
नी—नेतु, नायको ∠नेता, नायक

पभ्रंश क्रिया रूप

इस बात का सकेत हम पहले ही कर चुके हैं कि सस्कृत से प्राकृत और
पश्चात् अपभ्रंश म क्रियायें अत्यन्त सरल हो गई। जहाँ सस्कृत म क्रिया
प सयोगात्मक थी, वहाँ अपभ्रंश तक आते-आते उसकी वियोगात्मक
ति चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई।

मापिका क्रियायें

अपभ्रंश म समापिका क्रियाओं के अन्तर्गत प्राय चार प्रकार के क्रिया

६७—तिवारी और शर्मा कच्चायन व्याकरण ४।२।६ पृ० ३१०।
६८—वही, ४।२५ पृ० ३१४।
६९—मोग्ग० पा० ६।२८।

रूप आते हैं-वर्तमान निर्देशक प्रकार, आज्ञा प्रकार, भविष्यत्कालिक रूप और विधिप्रकार। इनका क्रमश वर्णन नीचे किया जा रहा है।

सामान्य वर्तमानकाल

उत्तम पुरुष—अपभ्रश में वतमानकाल म उत्तम पुरुष एकवचन और बहुवचन में क्रमश मि, उ, और मु, मो, हुँ रूपों का प्रयोग मिलता है। 'मि' रूप का व्यवहार प्राकृत में होता है। 'उ' अपभ्रश का निजी रूप है। इसका सम्बन्ध सस्कृत वर्तमानकाल उत्तम पुरुष एकवचन 'मि' से है,[७०] जैसे—करोमि > करोवि > करउ। बहुवचन में प्रयुक्त होने वाले 'मु' और 'मो' रूप अपभ्रश म प्राकृत की ही तरह व्यवहृत होते हैं, जिनके विकास के सम्बन्ध म प्राकृत के क्रिया रूप के सन्दर्भ में विवेचन किया जा चुका है। 'हुँ' रूप का प्रयोग परवर्ती अपभ्रश म दिखाई देता है। इसका सम्बन्ध स० वतमानकाल बहुवचन 'म' से है, यथा-पढहुँ ∠ पठामः, लहहुँ ∠ लभामहे।

मध्यम पुरुष—अपभ्रश में मध्यम पुरुष एकवचन म 'हि' 'सि' और बहुवचन म 'हु' का प्रयोग मिलता है। इन रूपों म हि और सि का सम्बन्ध प्रा० भा० आ० म० पु० एकवचन के रूप से है, जैसे-पठसि-पढहि, रोदिषि -रुअहि। 'हु' का विकास स० वतमान मध्यम पुरुष बहुवचन से है, यथा-हसथ-हसहु। इसके अतिरिक्त प्राकृत की भाँति अपभ्रश म भी मध्यम पुरुष बहुवचन में 'ह' प्रत्यय का व्यवहार होता है, यथा-पठथ 7 पढह।

अन्य पुरुष—अपभ्रश में सामान्य वर्तमानकाल के अन्य पुरुष एकवचन और बहुवचन में क्रमश 'इ' और 'हि' रूप का प्रयोग होता है, जैसे-हसइ < हसति, हसहिं ∠ हसन्ति। इन रूपों का सम्बन्ध प्रा० भा० आ० (सस्कृत) के सामान्य वर्तमानकाल, अन्यपुरुष एकवचन और बहुवचन वाले रूपों (ति और 'न्ति') से है।

वर्तमान आज्ञार्थ

अपभ्रश में आज्ञार्थ (लोट्) में प्राय उन्हीं रूपों का प्रयोग होता है, जिनका व्यवहार प्राकृत म होता है। इसके अतिरिक्त मध्यम पुरुष एकवचन

७०—चाटुर्ज्या उक्ति व्यक्ति (स्टडी) ।७१।

और बहुवचन म वैकल्पिक रूप इ,-उ और-ए रूप का प्रयोग अपभ्रंश म पाया जाता है[71], उदा०—

चिंति विसाउ म चिंतियइ, (प्रबंध चिंतामणि)

तहि बढ ! चित्त विसाम करु, (सरहपा दोहाकोष)

प्रिय एम्वहि करे सल्लु करि, (हेमचंद्र ४।३८७।३)

'इ' का सम्बन्ध प्राकृत के आज्ञा बहुवचन में व्यवहृत होने वाले 'हि' प्रत्यय से है, जिसके विकास के बारे म चर्चा की जा चुकी है। अपभ्रंश म 'हि' प्रत्यय का प्रयोग मध्यम पुरुष एकवचन म भी होता है, इ इसका विकसित रूप है-पढहि 7 पढइ। 'उ' का सम्बन्ध प्रा०भा०आ० के आत्मने पदी आज्ञा मध्यम पुरुष एकवचन स्व' (स्व) से है, जो प्राकृत म सु और अपभ्रंश म 'उ' हो गया। डॉ० चाटुर्ज्या ने इसका विकास इस प्रकार बतलाया है-प्रा०भा०आ० स्व ष्व । 7 म०भा०आ० स्सु 7 हु 7 उ[72]। 'ए' रूप 'इ' का ही विकास है, यथा-पढइ 7 पढ।

विधि प्रकार

विधि प्रकार के रूपों म प्राय उन्हीं तिङ् चिह्नों का प्रयोग होता है, जो आज्ञा म। प्राकृत काल म इन रूपों का दुहरा विकास दिखाई देता है-एय्य तथा एज्ज। इन्हीं का विकसित रूप इय-इज्ज है। इनका विकास इस प्रकार दिखाया जा सकता है-

या 7 एय्य - एज्ज > इय्य - इज्ज।[73]

अपभ्रंश म 'इज्ज' वाले रूपों का प्रयोग मिलता है, जो कर्मवाच्य रूपों से अभिन्न दिखाई देते हैं।[74]

अपभ्रंश म ये रूप प्राय प्रथम पुरुष तथा मध्यम पुरुष एकवचन म ही व्यवहृत होते हैं, यथा—प्र० पु० ए० व०—विरज्जइ, संतोसिज्जइ, म०पु०ए०व० अच्छिज्जहि, अच्छिज्जहु। सदेशरासक म प्रथम पुरुष एकवचन के स्थान पर 'इज्जउ' (लज्जिज्जउ) रूप उपलब्ध होता है, जिसका संस्त

७१—हेमचंद्र प्राकृत व्याकरण ४।३८७।

७२ डा० चाटुर्ज्या उक्तिव्यक्ति (स्टडी) ७४।

७३ पिशेल ४६६ पृ० ४२६-३०।

७४ टगारे। १४१ पृ० ११२।

भायणी ने संदेश रासक के अध्ययन में किया है।[७५] कुमारपाल प्रतिबोध में 'इज्ज' वाले रूप प्रथम पुरुष और मध्यम पुरुष एकवचन में पाये गये हैं, जैसे—

तो देसडा चइज्ज दसिज्जतु भमिज्ज।

हिन्दी के आदरसूचक आज्ञा, मध्यमपुरुष एकवचन के रूपों दीजिए, पीजिए आदि का सम्बन्ध इसी 'इज्ज' से है। इसके साथ ही साथ 'इय्य' वाले रूपों का भी विकास हिन्दी में देखा जाता है, जो चलिए, 'लाइए' आदि उदाहरणों से स्पष्ट है।

भूतकाल

अपभ्रंश में भूतकाल में प्रायः उन्हीं प्रत्ययों का प्रयोग दिखाई देता है, जो प्राकृत तथा उसकी विभाषाओं में। अपभ्रंश में भूतकालिक तिङन्त रूपों का प्रयोग अत्यन्त अल्प मात्रा में दिखाई देता है, इसमें केवल निष्ठ वाले रूपों का प्रचार उपलब्ध होता है। इसके साथ अस् या भू के भूतकालिक रूप का प्रयोग न कर केवल आपद् ही किया जाता था। इस प्रकार के जो रूप मिलते भी हैं, वे प्राकृत के प्रभाव से आये जान पड़ते हैं।[७६]

भविष्यत्काल

इस काल का अर्थ बोध कराने के लिए अपभ्रंश में 'स' और 'ह' दो प्रत्ययों का प्रचार दिखाई पड़ता है, जैसे—

'स' वाले रूप—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	भणिसउ	भणिसहुँ
म० पु०	भणिसहि	भणिसहु
अ० पु०	भणिसइ	भणिसहिं

'ह' वाले रूप—

उ० पु०	भणिहउ	भणिहहु
म० पु०	भणिहहि	भणिहहु
अ० पु०	भणिहइ	भणिहहिं

७५ भायणी संदेशरासक (इन्ट्रो) ८५ पृ० ३७।
७६ टगारे। १४० पृ० ३१२।

इन दोनों रूपों का सम्बन्ध प्रा०भा०आ० 'ष्य' से है, जैसे—पठिष्या > पठिस्सइ, पढ़िहइ > पढ़िहइ।

कृदंतज रूप

अपभ्रंश में कृदन्तज रूप का व्यवहार प्रायः विशेषणवत् होता है, अतः वे लिंग और वचन के अनुसार बदलते रहते हैं।

(१) वर्तमानकालिक कृदन्त

अपभ्रंश में धातु के अनन्तर 'अंत' या 'माण' प्रत्यय लगाने से वर्तमानकालिक कृदन्त बनता है, स्त्रीलिंग में 'अंत' के स्थान 'अंता' हो जाता है, यथा—पवसंत (संदेशरासक), जोअंत वट्टमाण। स्त्रीलिंग पवसंता, जाअंती आदि। इसमें 'अंत' का सम्बन्ध प्रा०भा०आ० अत् (त) और माण का सम्बन्ध आत्मनेपदी धातु में लगने वाले 'मान' से है।

(२) भूतकालिक कृदन्त

अपभ्रंश में धातु के अनन्तर इअ > इय प्रत्यय जोड़ने से भूतकालिक कृदन्त बनते हैं, जिनका सम्बन्ध संस्कृत 'क्त' (त) प्रत्यय से है, जैसे—
हुअ < सं० हुत, भणिअ < भणित, किय < कृत।

(३) भविष्यत्कालिक एवं विधि कृदन्त

अपभ्रंश में धातु के अनन्तर 'इएव्वउं' 'एव्वउं' 'एवा' और एव' प्रत्यय जोड़ने से भविष्यत् एवं विधि कृदन्त बनते हैं, जैसे—करिएव्वउं, सहेव्वउं, सोएवा, जग्गेवा, देक्खेव्व इत्यादि।[७७] अपभ्रंश के भविष्यत एवं विधि कृदन्त के इन रूपों का सम्बन्ध संस्कृत के विध्यर्थ कृदन्तज रूप तव्यत् से है।

(४) पूर्वकालिक कृदन्त

अपभ्रंश में धातु के अनन्तर इ, इउ, इवि, अवि, एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु प्रत्यय जोड़ने से पूर्वकालिक कृदन्त बनता है, जैसे—मारि (हेम० ४।४३९), भज्जिउ (वही ४।३९५), चुम्बिवि (४।४३९), विछोडवि (वही ४।४३९), जेप्पि (४।४४०), देप्पिणु (४।४४०), लेवि (४।४४०), भजाएविणु (४।४४०)।

---

७७ हेमचन्द्र ४।४३८।

(५) कर्तृसूचक कृदन्त

प्राकृत में इसके लिये 'इर' प्रत्यय का व्यवहार होता है। अपभ्रंश में[७८] कर्तृसूचक कृदन्त की रचना के लिये धातु के पश्चात् 'अणअ' प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे—

मार + अणअ – मारणअ – मारणउ (<मारक)

जा + अणअ – जाणअ – जाणउ (<ज्ञायकः)

(६) हेत्वर्थ कृदन्त

हेमचन्द्र ने हेत्वर्थ कृदन्त के लिये 'एव' 'अण' 'अणहं' 'अणहिं' प्रत्ययों का उल्लेख किया है,[७९] जैसे–देव, करण, भुञ्जणहं, भुञ्जणहिं।

७८—हेम ४।४४३।

७९—वही, ४।४४१।

चतुर्थ परिच्छेद

पुरानी हिन्दी के क्रिया रूपों की प्रकृति का अध्ययन

आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के उदय के पूर्व तथा अपभ्रंश के बाद की भाषा स्थिति को पुरानी हिन्दी की संज्ञा दी जाती है। आचार्य हेमचंद (१२ वीं शती) द्वारा रचित अपभ्रंश व्याकरण इस विषय में प्रमाण है कि इस समय तक अपभ्रंश भाषा पूर्ण रूप से साहित्य में रूढ़ हो चुकी थी। १६ वीं शती से भारतीय आर्य भाषा के ऐसे रूप उपलब्ध होते हैं, जो परिनिष्ठित हिन्दी से काफी साम्य रखते हैं। १२ वीं और १६ वीं शती के मध्ययुगीन हिन्दी भाषा रूप ने यद्यपि अपभ्रंश के मोह को छोड़ दिया, परन्तु उसके प्रभाव से मुक्त न हो सका। तत्कालीन भाषाओं में इसी समय से आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के बीज दृष्टिगोचर होने लगे। विद्वानों ने हिन्दी के इस काल के रूप को अवहट्ट, परवर्ती अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी नाम दिया है।

हिन्दी क्रिया रूपों के विकास में पुरानी हिन्दी के क्रिया रूपों का पर्याप्त योगदान है। अपभ्रंश काल से ही कृदन्तों के योग से क्रिया निर्माण की पद्धति चली आ रही है। परन्तु वास्तव में इस प्रकृति का पूर्ण विकास पुरानी हिन्दी से ही दिखाई देता है। इसी के प्रभाव स्वरूप आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में संयुक्त क्रियाओं का महत्त्वपूर्ण प्रयोग देखा जाता है।

पुरानी हिन्दी के क्रिया रूपों के अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है। सनेहय रासय (संदेश रासक), प्राकृतपैंगलम्, पुरातन प्रबन्ध संग्रह उक्ति-व्यक्ति प्रकरण, वर्णरत्नाकर, कीर्तिलता, चर्यापद तथा ज्ञानेश्वरी इस काल की प्रमुख कृतियाँ हैं। प्रस्तुत अध्याय में इन कृतियों विशेषकर सनेहयरासक, प्राकृतपैंगलम्, उक्तिव्यक्ति प्रकरणम्, वर्णरत्नाकर और कीर्तिलता में व्यवहृत क्रिया रूपों का तुलनात्मक अनुशीलन किया जायगा।

पुरानी हिंदी में प्रायः म०भा०आ० के क्रिया रूपों का व्यवहार देखा जाता है, साथ ही य ों पर 'अ' विकरण वाले धातु रूपों का प्रयोग हुआ

है। वैसे अपवाद रूप म प्राकृतपैंगलम्[1] की पुरानी पश्चिमी हिन्दी तथा सदेशरासक[2] की अपभ्रंश की भाषा म 'ए' विकरण वाले चुरादिगणी रूप का प्रयोग भी मिलता है, परन्तु ये मात्र छन्दनिवाहार्थ प्रयुक्त हुए हैं। अपभ्रंश तक आते-आते आत्मनपदी रूपों का सवथा ह्रास हो गया। प्राकृतपैंगलम् की पुरानी पश्चिमी हिन्दी तथा सदेशरासक में जो कुछ इसके छिटपुट रूप मिलते भी हैं, उनका प्रयोग वहाँ छदनिवाहार्थ ही हुआ है।[3]

समापिका क्रियायें

१—सामान्य वतमान काल (प्रेजेन्ट इंडिकेटिव)

पुरानी हिन्दा म प्रा० भा० आ० तथा म० भा० आ० के लट् लकार वाले रूपों का विकास वतमान निर्देशक के रूप में हुआ है। गण विधान की प्रक्रिया को इसमें कोइ महत्त्व नहीं दिया जाता है। पुरानी हिंदी में इनके निम्नलिखित रूप उपलब्ध होते हैं—

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष-	मि, आमि, अउ (अउँ)	
मध्यम पुरुष-	सि, हि	
अन्य पुरुष –	अइ, ए, शून्य रूप	अति, ए, शून्य रूप

उत्तम पुरुष एकवचन

प्रा० भा० आ० वर्तमानकाल (लट् लकार) उत्तम पुरुष एकवचन का 'मि' (आमि) रूप प्राकृत म आकर अमि और आमि रूप म विकसित हो गया। अपभ्रंश में इसके लिये अउँ, अउ रूप का प्रयोग होता है। उक्त रूपों म 'मि' वाले रूप प्राकृत से आये हैं तथा उँ-उ अपभ्रंश के निजी रूप हैं। सदेशरासक में 'उँ–उ' वाले रूपों का ही प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है।[4] प्राकृत पैंगलम् की पश्चिमी हिंदी में 'मि' और

---

१ डॉ व्यास : प्राकृतपैंगलम् (भाषा शास्त्रीय और छन्द शास्त्रीय अनुशीलन) भाग २। १०१ पृ० २३४।

२ डॉ० भायणी सदेशरासक, स्टडी। ६१।

३ डॉ० व्यास प्राकृतपैंगलम् भाग २। १०२ पृ० २३५ तथा डॉ० भायणी संदेशरासक स्टडी, पृ० ३१।

४ संदेशरासक.. स्टडी। ७१ पृ० ५६।

उँ–उ दोनों रूपों का प्रयोग मिलता है,[४] पवसामि (१६६), भणमि (१२०५), पिंधउ (११०६), पावउँ (११३०)। कीर्तिलता में इसके लिए 'अओ' रूप का प्रयोग प्राप्त होता है-जम्पओ (पृ० ६), लावओ (पृ० १००)। उक्तिव्यक्तिप्रकरण में उँ वाले रूप ही पाये जाते हैं, जो करउँ जैसे उदाहरणों में देखे जा सकते हैं। डॉ० चाटुर्ज्या ने करउँ की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—

प्रा०भा० आ० करोमि *करामि > म० भा० आ० करामि—करमि > परवर्ती म० भा० आ० *करविं 7 *करउँइ > करउँ।[६]

कीर्तिलता में व्यवहृत 'करओ' करउँ का ही विकास है।

उत्तम पुरुष बहुवचन

अपभ्रंश में उत्तम पुरुष बहुवचन का बोध कराने के लिए 'हुँ' रूप का प्रयोग उपलब्ध होता है। हानली ने इसका सम्बन्ध अउ (वर्तमानकाल उत्तम पुरुष एकवचन अपभ्रंश क्रियारूप) > प्रा० अमु से जोड़ा है।[७] अन्य पुरुष अहिँ के सादृश्य के प्रभाव स्वरूप यह 'अहुँ' बना, जो उत्तम पुरुष एकवचन 'अउ' से भिन्न है। पिशेल के अनुसार इसका सम्बन्ध अपादान कारक चिह्न 'हुँ' से है। डा० चाटुर्ज्या ने इसकी व्युत्पत्ति को इस प्रकार स्पष्ट किया है[८]–

प्रा०भा०आ० वर्तमान् (लट् लकार) उ०पु० बहुवचन कर्म 7 *कराम 7 *करउँ (उ०पु०ब०व०) तथा म०पु०ब०व० *करथ 7 करह= **करउँ + करह = करहुँ।

डॉ० टगारे ने 'अहुँ' का सम्बन्ध उत्तम पुरुष वाचक सर्वनाम के षष्ठी बहुवचन रूप 'अस्मक्' से जोड़ा है। उ पु ए०व० 'अउँ' के कारण 'अहुँ' में अनुनासिक तत्व का दर्शन होता है। फिर भी डॉ० टगारे ने डॉ० चाटुर्ज्या की उक्त व्युत्पत्ति को भी सम्भव माना है[९]।

---

५ डा० व्यास प्राकृत पैंगलम् भाग २, पृ० २४०।

६ डा० चाटुर्ज्या उक्तिव्यक्ति स्टडी। ७९ पृ० ५७।

७ हानली कम्पेरटिव ग्रामर आफ गौडियन लंग्वेजेज। ४६७ (डॉ० व्यास प्राकृत-पैंगलम् भाग २ पृ० २४४ पर उद्धृत)।

८—डॉ० चाटुर्ज्या उक्तिव्यक्ति स्टडी। ७१ पृ० ५७।

९—टगारे। १३६ पृ० २६०।

मध्यम पुरुष एकवचन

प्रा०भा०आ०भ वतमान काल (लट् लकार) मध्यम पुरुष एकवचन म 'सि' (पठसि) रूप का व्यवहार होता था, जो म०भा०आ० (प्राकृत अपभ्रंश) म आकर भी उसी रूप म व्यवहृत होने लगा। अपभ्रंश में 'सि' के अतिरिक्त 'हि' रूप का प्रयोग भी होता है। पूर्वी अपभ्रंश म केवल 'सि' वाले ही रूप उपलब्ध होते हैं। दक्षिणी अपभ्रंश म केवल 'हि' वाले रूपों का बाहुल्य है[१०]। डॉ० ज्यूल ब्लाक के अनुसार इन 'हि' वाले रूपों का सम्बन्ध आज्ञा म०पु०ए०व० 'धि' से है[११]। प्राकृत पैंगलम्[१२] और कीर्तिलता[१३] म 'सि' और 'हि' दोनों रूपों का प्रयोग देखा जाता है। उक्तिव्यक्ति प्रकरण[१४] में 'सि' वाले ही रूप मिलते हैं, उदा०—कीलसि (प्रा०पैं०१ ७), जाणहि (वही, १ १३२), करसि (उक्ति० १६ ६), कहसि (कीति० पृ० ६), जाहि (वही, पृ० ११२)।

मध्यम पुरुष बहुवचन

मध्यम पुरुष बहुवचन के लिए अपभ्रंश म अहँ, 'इह, अहु तिङ् चिह्नों का प्रयोग होता है, जिसका विकास प्राकृत 'ह' प्रा०भा०आ० 'थ' (पठथ से माना जाता है। अपभ्रंश में प्राय आज्ञा बहुवचन क रूप वर्तमान मध्यम पुरुष के रूपों के समान ही प्रयुक्त होते हैं। अह अहु, इन दोनों रूपों का प्रयोग वतमान और आज्ञा बहुवचन में होता है। पुरानी हिन्दी का कृतियों (प्राकृत पैंगलम्, कीतिलता, वर्णरत्नाकर आदि) म प्राय उक्त रूपों का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता। पुराना कोसली में करहु ('हु' वाले) जैसे रूप मिलते हैं, (डॉ० चाटुर्ज्या उक्तिव्यक्ति स्टडी पृ०५७)।

अन्य पुरुष एकवचन

पुरानी हिंदी का कृतियों म अन्यपुरुष एकवचन के लिये तीन रूपों अइ, ए और शून्य रूप का प्रयोग देखा जाता है—

१०—वही, पृ० २८८।

११—Middle Indo Aryan P 247 (डॉ० व्यास प्राकृत पैंगलम् पृ० २४१ पर उद्धृत)

१२—डॉ० व्यास प्राकृत पैंगलम्, भाग २, पृ० २४१।

१३—सक्सेना कीतिलता (भूमिका) पृ०४६।

१४—डॉ० चाटुर्ज्या उक्तिव्यक्ति स्टडी पृ० ५७।

(क) 'अ' वाले रूप—अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी की कृतियों में इस रूप का प्रचुर प्रयोग मिलता है, जो प्राकृत अइ < प्रा॰भा॰आ॰ अति से संबंध रखता है। संदेशरासक, कीर्तिलता, वर्णरत्नाकर तथा प्राकृत पैंगलम् में इस रूप के पर्याप्त उदाहरण प्राप्त होते हैं—

भणइ (प्रा॰ पैं॰ १ ६४), वेसाहइ (कीर्ति॰ पृ॰ ..), करइ (वर्ण॰ २५ क)। उक्तियक्ति प्रकरण में शून्य वाले रूप अधिक प्राप्त होते हैं।

(ख) 'ए' वाले रूप— 'ए' वाले रूप 'अइ' से ही विकसित हुए हैं[15] प्रा॰भा॰आ॰ अति > म॰भा॰आ॰ अइ > अए > ए।
पुरानी हिंदी की कुछ कृतियों से इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—चलावे (प्रा॰ पैं॰ ५ ३८) मिलए कीर्ति॰ (पृ॰ ३८), छाडए (वर्ण॰ ७७ क)

(ग) शून्य रूप—इस प्रकार के रूप का विकास प्रा॰भा॰आ॰ वर्तमान-काल अन्यपुरुष एकवचन 'ति' तिङ् चिह्न से माना जाता है।
ति > अइ > अ। कुछ लोग इसे शुद्ध धातु रूप मानते हैं।
डॉ॰ चाटुर्ज्या ने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—
प्रा॰भा॰आ॰ करोति, *करति > म॰ भा॰ आ॰ करइ > पुरानी कोसली करइ, कर[16]। पुरानी हिन्दी में इन रूपों का प्रयोग काफी प्रचलित रहा है—भण (प्रा॰ पैं॰ १ १०८), कर (कीर्ति॰, प॰ ३४), गाज (उक्ति॰ ३८)।

उक्त रूपों के अतिरिक्त प्राकृतपैंगलम् में प्राप्त एक 'उ' वाले रूप के प्रयोग के सम्बन्ध में डॉ॰ व्यास ने संकेत किया है—कहु (प्रा॰पैं॰ १ ५६)। इसका सम्बन्ध उन्होंने कर्ताकारक एकवचन के 'सुप् प्रत्यय 'उ' से जोड़ा है[17]।

कीर्तिलता में वर्तमानकाल अ॰पु॰ एकवचन के निमित्त दो अन्य रूपों अहि और अथि का भी प्रयोग हुआ है—धावहि (पृ॰६४), आवथि

१५—तगारे। १३६ पृ॰ २८५।
१६—डॉ॰ चाटुर्ज्या उक्तिव्यक्ति स्टडी।३६।
१७—डॉ॰ व्यास प्राकृत पैंगलम् भाग २, पृ॰ १३८।

(पृ०३०)। अथि (थि) का प्रयोग मैथिली की निजी विशेषता है। डॉ० सक्सेना के अनुसार अथि में प्राचीन रूप का शक्तिशाली महाप्राणत्व के साथ Resusicitation जान पड़ता है, 'अहि' 'अथि' का विकास है, अथवा 'अहि' का सम्बन्ध 'अइ' से है। डॉ० चाटुर्ज्या ने इसका व्युत्पत्ति प्रा० भा० आ० 'अन्ति' तिङ् प्रत्यय से मानी है। 'अन्ति' का अवशेष 'अत्' है। यही 'अत्' 'हि' निश्चयार्थ से युक्त होकर 'अथि' ('थि') के रूप में परिणत हो जाता है[१८]।

अन्य पुरुष बहुवचन—पुरानी हिंदी में अन्यपुरुष बहुवचन के अर्थ को द्योतित करने के लिये प्राय तीन रूपों—अति, ए और शून्य रूप का व्यवहार होता है। अति वाले रूपों का सम्बन्ध प्रा० भा० आ० अन्ति (पठन्ति) से है। पुरानी हिंदी की अधिकांश कृतियों में इसके प्रयोग का बाहुल्य है। सदेशरासक में 'अति' के अतिरिक्त अन्य पुरुष बहुवचन में 'अइ' वाले रूपों का भी प्रयोग मिलता है। 'ए' तथा शून्य रूपों की व्युत्पत्ति अन्य पुरुष एकवचन के रूप 'ति' से मानी जाती है। प्राकृत पैंगलम् में 'अन्ति' तथा 'ए' दोनों प्रकार के रूपों के प्रयोग उपलब्ध होते हैं।[१९]

१ अन्ति वाले रूप—होन्ति (१ ११), पआसति (१ ५२ ,

२ ए वाले रूप—गज्जे (२ १८१), सोहे (२ १८२)। कीतिलता में 'अति' वाले रूपों के साथ-साथ 'हि' विभक्ति का भी अन्य पुरुष बहुवचन में प्रयोग हुआ है[२०]—

१ अति वाले रूप—सौलन्ति (पृ० ३८), हसाइन्ति (पृ० ३८),

२ 'हिं' वाले रूप—दरहिं (पृ० १६ , आनहिं (पृ० २८)। 'हिं' वाले रूपों का सम्बन्ध 'अति' वाले रूपों से है। उक्तिव्यक्ति प्रकरण में उक्त दोनों प्रकार के रूप उपलब्ध नहीं होते। अन्य पुरुष बहुवचन के अर्थ का बोध कराने के लिये वहाँ पर 'ति' विभक्ति चिह्न का प्रयोग हुआ है। डॉ० चाटुर्ज्या ने इसका सम्बन्ध प्रा० भा० आ० 'अन्ति' से माना है। प्रा० भा० आ० कुर्वन्ति *करन्ति > म० भा० आ० करति > *करँति > पुरानी कोसली

---

१८ सक्सेना कीर्तिलता भूमिका, पृ० ४७।

१९ डॉ० व्यास प्राकृत पैंगलम् भाग २, पृ० २४०।

२० डॉ० सक्सेना कीर्तिलता भूमिका, पृ० ४८।

करति।[२१] वर्णरत्नाकर में उक्त दोनों रूपों का अभाव है, वहाँ पर अन्य पुरुष बहुवचन में 'थि' विभक्ति का व्यवहार पाया जाता है। इस 'थि' का सम्बन्ध प्रा० भा० आ० और म० भा० आ० न्ति (अन्ति) से है। इसके अतिरिक्त वर्णरत्नाकर में 'अह' रूप का भी प्रयोग हुआ है।[२२]

१ थि (अथि) वाले रूप—अछथि (वर्ण० ६३ क)

छथि (वर्ण० ६३ क), होंथि (वर्ण० १८ ब)।

२ ह (अह) वाले रूप—अथिकह (वर्ण० १८ ख, ५५ ग, ४८ क)

पुरानी हिंदी में वर्तमानकालिक कृदन्तों का समापिका क्रियागत प्रयोग भी देखा जाता है, जिसका विकास वर्तमान आर्य भाषाओं में हुआ है। इन रूपों से वर्तमान आर्य भाषाएं किस प्रकार प्रभावित हुई, इसका विवेचन हम अगले परिच्छेदों में करेंगे। वर्तमानकालिक इन रूपों की रचना शतृ प्रत्यय 'अन्त' तथा अत् से हुई है। पुरानी हिन्दी में व्यवहृत इन रूपों का अध्ययन हिंदी कृदन्तज रूपों के सम्बन्ध में उपस्थित जटिलताओं को दूर कर देता है। नीचे पुरानी हिंदी की विभिन्न कृतियों से कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

उड्डा हरेन्ता (प्रा० पै० ५०७४)

अवे घे भणता, सराधा पिवन्ता (कीर्ति०, पृ० ४०)

याँटत को इहा काह करत (उक्ति० ३०-१८)

आज्ञा प्रकार [इम्पेरेटिव मूड]

पुरानी हिन्दी में 'आज्ञा' के अर्थ को सूचित करने के लिये निम्न लिखित रूपों का प्रयोग होता है।

	एकवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	इ, हि उ, शून्य, सो, ओ	ह, हु
अन्य पुरुष	उ, ए, आ, शून्य (अ)	अन्तु

उत्तम पुरुष एकवचन और बहुवचन का प्रयोग पुरानी हिंदी में प्रायः नहीं दिखलाई पड़ता।

मध्यम पुरुष एकवचन

(१) 'इ' वाले रूप—'इ' वाले रूप पुरानी हिंदी की अधिकांश

---

२१ डॉ० चाटुर्ज्या उक्तिव्यक्ति स्टडी। ७१।

२२ „ वर्णरत्नाकर भूमिका।

कृतियों में प्राप्त होते हैं, जैसे—करि (स० रा० २ ' ०६), सुणि (प्रा० पै० २ ५६), थप्पि (प्रा० पै० १ १५७)।

(२) हि वाले रूप—पुरानी हिंदी की कृतियों म इसके पयाप्त उदाहरण मिलते हैं। इसकी व्युत्पत्ति प्रा०भा०आ० विकरणहीन धातु के आज्ञा मध्यम पुरुष एकवचन तिङ् चिह्न-धि से मानी जाती है। 'इ' वाले रूपों का विकास इन्हीं 'हि' वाले रूपों से माना जाता है—प्रा०भा०आ० धि (जुहुधि) 7 अपभ्र श-पुराना हिंदी हि > इ। 'हि' वाले रूपों के कुछ उदाहरण देखिये—

जाहि (प्रा०पै० १५७), कहहि (प्रा०पै०१ १७३), जहि (कीर्ति०, पृ० ११२), जाहि (स०रा० २ ११०)।

(३) 'उ' वाले रूप—पुरानी हिंदा म इस रूप का प्रयोग अधिकाश कृतियों (कीर्तिलता, प्राकृत पैंगलम्, सदेशरासक और उक्ति यक्ति) म दिखाई पड़ता है। इसका सम्बन्ध प्रा०भा०आ०म०पु०ए०व० 'स्व' (ष्व) से है। डॉ० चाटुर्ज्या ने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—

प्रा०भा०आ० कुरुष्व > म०भा०आ० करस्सु > *करहु > करु[२३]।

'उ' वाले रूपों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

भणु स०रा० २ ११४) जिवउ (कीर्ति० १।७७), परिहरु (प्रा०पै०१ १६६)। सदेशरासक म 'उ' के स्थान पर 'सु' रूप का भी प्रयोग मिलता है[२४]—

कहसु (२ ८२)। इसका सम्बन्ध भी प्रा०भा०आ० स्व (ष्व) से है।

(४) 'ओ' वाले रूप—इस प्रकार के रूपों का सम्बन्ध ऊपर बताये गये 'उ' वाले रूपों से ही है। पुरानी हिंदी म प्रयुक्त 'ओ' वाले रूप वतमान भारतीय आर्यभाषा के आज्ञा मध्यम पुरुष एकवचन वाले 'ओ' रूपों (करो, पढ़ो) आदि की विकास स्थिति को सूचित करते हैं उदाहरण—

सुनओ (कीर्ति०२।१५६), करो (२।१०), सुणो (प्रा०पै०,२ १२७)।

२३—उक्ति स्टडी ७४ पृ० ५६।

२४—भायणी सदेश रासक (भूमिका) पृ० ३६

(५) शून्य रूप—शून्य या 'अ' वाले रूपों का सम्बन्ध प्रा०भा०आ० आज्ञा मध्यम पुरुष एकवचन 'अ' (पठ, भव) से है। ये रूप अपरिवर्तित रूप से अपभ्रंश, पुरानी हिंदी तथा वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में सुरक्षित मिलते हैं। पुरानी हिंदी में इनका प्रभूत व्यवहार पाया जाता है—

भण (सं०रा० २ ८०), भण (प्रा०पैं० १ ११२), हर (प्रा०पैं०२ ६,) सुन (कीर्ति० ४।२१)।

मध्यम पुरुष बहुवचन

पुरानी हिंदी की कृतियों में मध्यम पुरुष बहुवचन के अर्थ के द्योतन के निमित्त प्रायः 'ह' और 'हु' इन दो प्रत्ययों का प्रयोग उपलब्ध होता है। 'ह' वाले रूपों की व्युत्पत्ति प्रा०भा०आ० (अ) 'थ' वर्तमान (लट् लकार) मध्यम पुरुष एकवचन से मानी जाती है। 'हु' का सम्बन्ध *अथु<प्रा० भा०आ० 'थ' (अथ)–उ (<तु) से है[२५]। पुरानी हिंदी की कुछ कृतियों से इन रूपों के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

कहह (सं० रा० २ ६८), जाणहु (प्रा० पैं० १ ३६),

करहु (कीर्ति० ३।५) करहु (वही ४।३८), बरावह (<*ज्वाल्यत या *ज्वालापयत √जल जलाना) (वर्ण० ११ क) चाटुर्ज्या: वर्णरत्नाकर भूमिका पृ० ५९।

अन्य पुरुष एकवचन

पुरानी हिंदी में आज्ञा अ० पु० एकवचन के लिए चार रूपों—उ, ए, आ और शून्य, का व्यवहार पाया जाता है। इनमें से प्रथम 'उ' रूप का प्रयोग प्राकृत और अपभ्रंश में भी उपलब्ध होता है। प्राकृत पैंगलम्, संदेशरासक तथा उक्तिव्यक्ति प्रकरण में यह रूप काफी प्रचलित है—

पाउ (प्रा०पैं० २ ७७), होउ, जयउ, (सं० रा०), करउ (उक्ति० १३)।

'उ' वाले रूपों का सम्बन्ध प्रा०भा० आ० आज्ञा प्रथम पुरुष एकवचन 'तु' से है—करोतु *करतु>म० भा० आ० करउ।

पुरानी हिंदी में व्यवहृत 'ए' वाले रूपों का हिंदी में काफी प्रचार है जिसका सम्बन्ध प्रा० भा० आ० ति>म० भा० आ० अइ (इ)> हिंदी 'ए' से है, उदा०—

२५—टगार, १३८ पृ० २६८।

जाऐ (प्रा०पैं० २ २७), रक्खे (प्रा०पैं०२ १२)।

पुरानी हिंदी की कुछ कृतियों म आज्ञा अन्य पुरुष एकवचन के अर्थ का बोध कराने के लिये 'ओ' रूप का प्रयोग मिलता है। इसकी व्युत्पत्ति प्रा०भा०आ० आज्ञा प्र०पु०ए०व० के 'तु' रूप से मानी जाती है,[२६] करोतु, करतु < करउ < करो, उदाहरण–रक्खो (प्रा० प० २ २), सहारो (प्रा०पैं०२ ४२)।

पुरानी हिंदी के आज्ञा अ०पु० एकवचन के शून्य रूप का सम्बध म०भा०आ० वतमानकाल प्र०पु०ए०व० के तिङ् चिह्न 'ति' से माना जाता है–करोति *करति > करइ > कर > (ति) > अइ > अ। इसके अतिरिक्त डॉ व्यास ने यह भी सभावना की है कि हो सकता है कि इस रूप पर आज्ञा म०पु०ए०व० के रूपों का प्रभाव हो[२७], उदाहरण–कर (प्रा०प०, २ ६५), हर (वही, १ १११)।

अन्यपुरुष बहुवचन

पुरानी हिंदी के अ०पु०ए०व० वाले रूपों का विकास प्रा०भा०आ० तथा म०भा०आ० आज्ञा प्र०पु०व०व० 'अ तु' रूप स है। प्राकृत पैंगलम् म अ तु वाले रूप ही उपलब्ध होते हैं, यथा–थक्कतु (२ १३०) जुज्झतु (२ १३२)। कीर्तिलता म 'उ' और 'उ' रूपों का प्रयोग देखा जाता है, जिसका सम्बध प्रा०भा०आ० 'तु' स है। उदाहरण–

जाउ (कीर्ति०, पृ० ७६), जिअउ (वही, पृ०१०) जाउँ (वही, पृ० २२)। इसके अतिरिक्त कीर्तिलता म 'ओ' रूप (करओ पृ० ६०) का प्रयोग अ०पु०ब०व० में हुआ है। इसका विकास भी प्रा०भा०आ० 'तु' वाले रूपों से हुआ है। वहाँ 'ओ' वाले रूपों का प्रयोग आज्ञा म०पु० ब०व० म भी देखा जाता है–करओ (पृ० ५८), सुनओ (पृ० ३८)।

भूतकाल

इस बात का सकेत पहले ही किया जा चुका है कि अपभ्रंश तक आते आते संस्कृत के क्रिया रूपों की जटिलता प्राय समाप्त हो चुकी थी। संस्कृत में भूतकाल के अर्थ को द्योतित करने के लिये तीन लकारों लुङ्, लङ्,

---

२६—डॉ० व्यास प्राकृतपैंगलम् भाग २, पृ० २२७।

२७—वही।

रूपों का प्रयोग हुआ है-बुभिय (२४ ख), छडाविग्र (७७ क), पारिग्रह (५८ ख)[३७]।

प्रेरणार्थक क्रिया

मध्य भारतीय आयभापा म प्रेरणार्थक क्रियाओं के दो रूप पाये जाते हैं (१) ए वाले रूप (२) आव-अव या आवे आवै वाले रूप। इनमें से प्रथम (ए वाले) रूपों का सम्बन्ध प्रा०भा०आ० म णिजत रूप आय-अय, तथा द्वितीय (आव-अव, आवे आवै) रूपों का आपय-अपय (दापयति, स्नापयति) वाले रूपों से है[३८]। अपभ्र श तथा पुरानी हिंदी म द्वितीय रूपों का काफी प्रचार है। वैसे डॉ० व्यास ने सदेशरासक से अपवाद स्वरूप एक उदाहरण प्रस्तुत किया है-सारसि (स० रा० १।५६)। यह सस्कृत का अर्धतत्सम रूप है, जिसका सम्बन्ध 'स्मारयसि' से है[३९]। प्राकृत पैंगलम् म द्वितीय (आव-अव, आवे) वाले रूपों का व्यवहार अधिक मिलता है-

दिखावइ (१।३८), चलावइ (१।३८), चलावे (२।३८)।

कीतिलता में भी उक्त रूप का प्रचुर प्रयोग देखा जाता है-करावए (३।२८), बैठाव (२।१८४), लगावै (२।१६०), पलटाए (१।८६)।

वर्णरत्नाकर म भी 'आपय' से उत्पन्न आव-अव वाले रूपों के विभिन्न प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं—

करावए (२४क), कराओल (२६ख), रुसाओल (७७ख) इत्यादि[४०]।

वर्तमानकालिक कृदन्त

अपभ्र श तथा पुरानी हिंदी म वतमानकालिक कृदन्त के अर्थ का सूचित करने के लिये 'अन्त' (पुल्लिंग) तथा अती (स्त्री०) रूप का प्रयोग मिलता है जिसका विकास म० भा० आ० (प्राकृत) अन्त∠प्रा० भा० आ० अन्त (शतृ प्रत्ययात रूप) प्रा०मा०यू० *एन्त से माना जाता है। म०भा आ० में आत्मनेपदी धातुओं का प्रयोग लुप्त होने लगा था। प्राकृत

३७—डॉ० चाटुर्ज्या : वर्णरत्नाकर (भूमिका) पृ० ५८।
३८—पिशेल।' ५.१।
३९—डॉ० व्यास प्राकृत पगलम् भाग २।११०पृ०२५४।
४०—डा० चाटुर्ज्या वर्णरत्नाकर (भूमिका)।

म थोड़े बहुत इसके रूप मिलते हैं जिनके साथ प्रा०भा०आ० का मान आन (शानच् प्रत्यय) 'माण' के रूप में व्यवहृत होता है। अपभ्रंश म इसके छिटपुट जो प्रयोग मिलते भी हैं, उन्हें प्राकृतीकृत माना जाता है[४१]। पुराना हिंदी में तो इनका सवथा लोप ही दिखाई देता है।

सदेशरासक म पुल्लिंग म 'अन्त' तथा स्त्रीलिंग म 'अन्ती' रूप उपलब्ध होते हैं[४२]—

जसु पवसत ण पवसिआ, (स०रा०)
दिंती पहिय पियासु (,,)

प्राकृत पैंगलम् में, प्राकृत उक्त रूपों के अलावा अन्तो रूप भी मिलता है, उदाहरण—

जग्गतो (१।७२), चलतउ (१।१५६)
वलत (१।७), खेलत (१।१५७) जुज्झतो (२।४२)।

डॉ० व्यास ने इसके अतिरिक्त तिर्यक् 'ए' वाले रूपों का भी एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, होंते (१।६१)। इसका सम्बन्ध उन्होंने स० भवता से बतलाते हुए इस बात का सकेत किया है कि खड़ी बोली 'होते' क्रिया रूप इसके काफी समीप है[४३]।

कीतिलता में वर्तमानकालिक कृदन्त रूपों का प्रयोग समापिका क्रिया गत ही हुआ है।

कहन्ता (कीर्ति० २।१७२), करन्ता (२।२२७,) पावन्ता (२।२२१)

उक्त रूपों के अतिरिक्त पुरानी हिंदी में 'अन्त' वाले रूपों का भा प्रयोग म मिलता है। पूववर्ती अपभ्रंश म भी इसके छिटपुट उदाहरण मिल जाते हैं, करत म अच्छ (हेम०)। पुरानी हिंदी में विकसित हुई यह प्रवृति अवधी, ब्रज और खड़ीबोली की खास विशपता मानी जाने लगी[४४]। पुराना हिंदी क कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

लागत (कीर्ति० ३६)

४१—टगार।१४७ पृ० ३१४।
४२—भायणी संदेशरासक।६४।
४३—डॉ० व्यास प्राकृत पैंगलम् भाग २, पृ० २५७।
४४—डॉ० नामवर सिंह हिन्दी क विकास में अपभ्रंश का योग।४४ पृ० १४०।

भमर पुष्पोद्देशे चलल (वर्ण० २६ख)

कहु देल्हण उधार (कीर्ति० २।६६)

इसके अतिरिक्त 'ल' वाले *निष्ठा रूपों का प्रयोग मराठा, गुजराती,* राजस्थानी तथा जैन महाराष्ट्री के भूतकालिक कृदन्तों म भी पाया जाता है। निष्ठा कृदन्त रूपों म इसका प्रयोग कथ्य प्राकृत की वैभाषिक विशेषता मानी जाती है। पूर्वी भाषाओं में इसका विकास यहाँ स हुआ जान पडता है। पुरानी राजस्थानी में भी इसके थोड़ बहुत रूप उपलब्ध हो जाते हैं।[४८]

भविष्यत्कालिक कृन्त

पुरानी हिन्दी म भविष्यत्कालिक कृदन्त के दो रूप उपलब्ध होते हैं— (१) व्वउ (२) व। इन दोनों कृदन्तज रूपों का सम्बन्ध सस्कृत तव्यत् प्रत्यय से है। अपभ्रंश में इसका प्रयोग सामान्य भविष्यत् के लिए भी देखा जाता है। 'व' रूप का प्रयोग अवधी तथा अन्य पूर्वी बोलियों में पाया जाता है। खड़ीबोली म इसका प्रयोग नहीं दिखाइ पड़ता। उदाहरण— सहव (प्रा० पैं० १।१६६), जणिव्वउ (वही, १।४६), पढ़व, देखव, करव (उक्ति० १२), करिव्वउ (कीर्ति० पृ० ६४)

पूर्वकालिक क्रिया

हेमचद्र ने अपभ्रंश में पूर्वकालिक क्रिया के लिए आठ प्रत्ययों (इ, एवि, अवि, इवि, इउ, एप्पिणु, एविणु) का उल्लेख किया है।[४९] पुरानी हिन्दी म इनमें से 'इ' रूप का अधिक प्रचार है। सदेशरासक म 'इवि', 'अवि' तथा 'इ' वाले रूपों का काफी व्यवहार दिखाई पड़ता है। फिर भी अपभ्रंश म व्यवहृत प्राय समस्त पूर्वकालिक क्रिया रूपों का प्रयोग सदेशरासक म हुआ है।[५०] कीर्तिलता में 'इ' वाले रूपों का प्राधान्य है—

कहि (३।७), जिति (४।२५४), धाइ (१।७१)
कुछ स्थलों पर 'इ' का 'ए' हो गया है—
गए (१।२), पइट्ठे (२।३६), ले (२।१८४)।

---

४८ तेस्सितोरी १२६ (५)
४९ हेम० प्राकृत व्याकरण ८।४।४३६-४० ।
५० भायाणी सदेशरासक (भूमिका) ६८ ।

कीतिलता में कुछ रूप ऐसे हैं जिनका दुहरा प्रयोग हुआ है[५०]—
मलकर (२।१००), मेले (३।९०), लल (२।१७८)।

वर्तमान हिन्दी में भी इस प्रकार के प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। खड़ी बोली में 'पकड़कर' 'पढ़कर' 'पढ़ करके' आदि इसी प्रकार के पूर्वकालिक क्रिया रूप हैं। कुछ स्थानों पर कीर्तिलता में 'अ' प्रत्यय लगाकर पूर्वकालिक रूप बनाया गया है

सुनिअ (३।३४), सारिअ (४।८७)

प्राकृत पैंगलम् में पूर्वकालिक क्रिया के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं, परन्तु उनमें प्रधानता 'इ' वाले रूपों की ही है। अपभ्रंश रूपों के साथ-साथ वहाँ पर प्राकृत 'ऊण' तथा प्राकृतापभ्रंश रूप 'इअ' का भी प्रयोग हुआ है।[५२]

उक्तिव्यक्ति प्रकरण में 'इ' वाले ही रूप उपलब्ध होते हैं। कुछ स्थलों पर इस 'इ' का परिवर्तन 'अ' के रूप में हो गया है[५३]—

इ—न्हाइ, पूजि, छारि (११।१३)
अ—जिण (३४।६)
वर्णरत्नाकर में भी 'इ' वाले पूर्वकालिक रूप मिलते हैं—
जैसे—लइ (२० क), मइ (४७ क)।

क्रियार्थक संज्ञा

प्रा० भा० आ० में इसके लिये 'अन' रूप का प्रयोग होता था जो प्राकृत के अण7अन7न7ना के क्रम से विकसित होकर हिन्दी में प्रचलित हुआ है। पुरानी हिन्दी में 'ना'∠न वाले रूपों के साथ-'ब' तथा 'ए' वाले रूप भी मिल जाते हैं। 'ब' का प्रयोग अवधी आदि पूर्वी बोलियों में भी देखा जाता है।

'ना'—जीअना (कीति० २।३६), देना (वही, २।२०७)
बज्जन (वही ४।२५५), होखा (वही, ११५६)
ब या बा—हेरब (४।१२६), बिकाइवा (वही, २।१७)
ए—गणए (कीति० ४।१०७), चलए (वही, २।२१०)

५१—डॉ० शिवप्रसाद सिंह कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा— ७२।
५२—डा० व्यास प्राकृत पैंगलम् भाग २ पृ० २६७।
५३—डा० चाटुर्ज्या उक्ति व्यक्ति (स्टडी) ।८० (१)।

कर्तृ वाचक संज्ञा

इसके प्रयोग पुरानी हिंदी म बहुत कम उपलब्ध होते हैं। कीर्तिलता में 'हार' प्रत्यय का व्यवहार एक स्थान पर मिला है। जुझनिहार (२।१४)। इसका प्रयोग मध्ययुगीन हिन्दी म पयाप्त दिखाइ पड़ता है।

सहायक क्रिया

अपभ्रंश में सहायक क्रिया का 'अच्छ' या 'अच्छि' रूप उपलब्ध होता है। पुरानी हिंदी में 'अछ' वाले रूपों की प्रधानता है, यद्यपि यत्र-तत्र पुराना हिंदी की कृतियों में अह' 'हो' और 'रह' सहायक क्रियाओं का प्रयोग दिखलाइ पड़ता है, उदा०—

होइस करत म अच्छि (हेम० ४।३८८)
देखत आछ, चाखत आछ सूँघत आछ (उक्ति० ६)
होइतें अछ (वर्णा० १३क)
मेरहु जेह गरिठ अछ (कीर्ति० २।४८)
गिसियाय ग्याा है (वही, २।१८०)
अह दिगपाल कड हो (कीर्ति० ६६)
ताकी रहे तसु तीर लैं (वही, २।१८४)

'अछ' वाले रूपों का सम्बन्ध प्रा० भा० आ० 'अस्ति' से है—

अस्ति > असति > अछइ > अहै > है।

पुरानी हिंदी म व्यवहृत सहायक क्रिया के छल, हुअ, भ, भए आदि रूप भूतकालिक हैं।

संयुक्तकाल

१–सामान्य वर्तमान काल

अपभ्रंश म सामान्य वर्तमान काल का काम तिङन्त-तद्भव रूपों से ही चल सकता था, परंतु कहीं कहीं पर इसके लिय कृदन्त और तिङन्त तद्भव रूपों के योग से भी सामान्य वर्तमानकाल बनाने की प्रवृत्ति देखी जाती है[५४]। पुरानी हिंदी म इस प्रवृत्ति का थोड़ा और विकास हुआ, और

५४—डॉ० नामवर सिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग ।४८ पृ० १४१।

वर्तमान हिन्दी की तो यह विशेषता ही मानी जाने लगी है। पुरानी हिंदी की कृतियों से इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

निशियाय गाए है (कीर्ति० २।१८०)
भोजन करत आछ (उक्ति०)
मयूर घाइल अछ (वर्ण०)

२—अपूर्ण भूतकाल

भूतकालिक सहायक क्रिया के रूप पुरानी हिन्दी (परवर्ता अपभ्रंश) से ही प्राप्त होने लगे थे। पूर्ववर्ती अपभ्रंश में इसके चिह्न नहीं दिखाई पड़ते। अतः हिन्दी में अपूर्ण भूतकाल का रूप परवर्ती अपभ्रंश काल में ही उपलब्ध होता है। उदा० —

आवत हुअ हिन्दू दल (कीर्ति०)
को तहाँ जेवत आछ (उक्ति० २१।७)
अनेक पदातिक चलत भउअह (वर्ण० ४६ ग)।

पूर्ण वर्तमान काल (प्रेजेन्ट परफेक्ट)

पुरानी हिन्दी में इसके रूप प्रायः बहुत कम मिलते हैं। चाटुर्ज्या ने वर्णरत्नाकर की भूमिका में इसके कुछ रूपों का संकेत किया है-कर्मवाच्य अथवा भूतकालिक कृदन्त से निर्मित-अल (स्त्री० अलि) + अछ धातु का वर्तमानकालिक रूप भेल अछ, भेल छति (५२ ग), भये गेल छति (आदरार्थ) भये गेलिछ (गेलि + अछ), गेलछ (गेल + अछ) (१०अ, कहलि अछ (२६क) वइसल छथि, चलल अछथि, आनल अछ इत्यादि[५५]।

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त

हिन्दी में वर्तमानकालिक कृदन्त 'ता' को 'ते' कर देने से अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त की रचना होती है। वहाँ इसका प्रयोग अविकारी या अव्ययवत् होता है। यह प्रवृत्ति पुरानी हिंदी के काल से ही दिखाई देने लगी थी, उदा०—

जिनइते पार्थिव (कीर्ति० २।११४)
होइते अछ (वर्ण १३ क)

डॉ० बाबूराम सक्सेना ने इस प्रकार के रूपों को क्रियार्थक संज्ञा का

५५—डॉ० चाटुर्ज्या वर्णरत्नाकर (भूमिका) ।५०।

विकृत रूप माना है[५६]। डॉ० चाटुर्ज्या ने इसे सामान्य वर्तमानकाल (प्रेजेन्ट प्रोग्रेसिव) स्वीकार किया है[५७]। वास्तव में इसका निर्माण वर्तमान-कालिक कृदन्त और सहायक क्रिया के योग से हुआ है। डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने इन उदाहरणों को हिन्दी 'करते' 'गाते' आदि अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्तों के समानान्तर मानते हुए इसे अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त का रूप स्वीकार किया है[५८]।

संयुक्त क्रियायें

संयुक्त क्रिया के निर्माण की प्रवृत्ति अपभ्रंश से ही दिखाई देने लगी थी, पुरानी हिन्दी में इसके प्रचुर प्रयोग मिलते हैं। हिन्दी में संयुक्त क्रियाओं के विकास की प्रवृत्ति अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी में व्यवहृत संयुक्त क्रिया रूपों से ही जोड़ी जाती है।

(१) क्रियार्थक संज्ञा के योग से बनी हुई —

पयोधर के भरे भागए चहू (कीर्ति० २।१४७)

उपर चढ़ावए चाह घोर (कीर्ति० २।२०५)

(२) वर्तमानकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई —

पहिउ रडन्तउ जाइ (हेम० ४।४४५)

(३) भूतकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई—

जइ भग्गा घर एन्तु (हेम० ४।३५)

तहअ गध सज्जा किआ (प्रा० पैं० ५०६।२)

पराइल (वर्ण० ७६ ख)

(४) पूर्वकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई —

ओहु संन्धान खोदि खा (कीर्ति० ४।१३३)

खाए ले माग क गुण्डा (कीर्ति० २।१७४)

पुनि उट्ठइ सँभलि (प्रा० पैं० १८०।५,)

(५) अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त के योग से बनी हुई —

किन्इये पावथि (कीर्ति० २।११४)

सहमि न पारइ (वही, ३।२८)

गणए न पारीआ (वही, २।११६)

५६—सक्सेना कीर्तिलता (भूमिका) पृ० ५२ और ५७।

५७—डॉ० चाटुर्ज्या वर्णरत्नाकर (भूमिका) ५०।

५८—डॉ० शिवप्रसाद सिंह कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा।६९पृ०११७

पंचम परिच्छेद

मध्ययुगीन हिन्दी के क्रिया रूपों की प्रकृति का अध्ययन

अपभ्रंश और पुरानी हिंदी में ही हिंदी क्रिया रूपों के बीज मिलने लग थे। मध्ययुगीन हिन्दी में क्रिया रूपों की जटिलता प्रायः समाप्त सी दिखाई देने लगी। यद्यपि इस काल के साहित्यकारों की रचनाओं में प्रा० भा० आ० (संस्कृत) और म०भा०आ० (प्राकृत, अपभ्रंश) के क्रिया रूपों का भी पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है, परन्तु अनेक ऐसे क्रियारूप मिलते हैं, जो जनभाषा से प्रभावित हैं। मध्ययुगीन हिन्दी की प्रायः समस्त धातुएँ स्वरांत हैं। इस काल में अनेक ऐसे क्रियारूप भी उपलब्ध होते हैं, जो विशेषण, क्रियाविशेषण या अन्य शब्दों के सहयोग से बनाये गये हैं। काल रचना में तिङन्त रूपों के साथ साथ कृदन्त रूपों का भी प्रचार हो चला है।

मध्ययुगीन हिन्दी की कृतियों में मुख्य रूप से ब्रज और अवधी भाषाओं का व्यवहार हुआ है। इनमें ब्रज पश्चिमी हिन्दी तथा अवधी पूर्वी हिन्दी का प्रतिनिधित्व करती है। सामान्य वर्तमान, भूत तथा भविष्यत् के रूप सामान्य रूप से समस्त न०भा०आ० में प्राप्त होते हैं। इन रूपों का विकास संस्कृत के वर्तमान (लट् लकार) से हुआ है[1]। ब्रजभाषा में भूतकाल में निष्ठा रूपों का व्यवहार, उसकी निजी विशेषता को सूचित करता है। वहाँ ये ओकारान्त रूप में पाये जाते हैं, तथा हिन्दी की समस्त बोलियों से अलग विशिष्टता धारण किए हुए हैं। ब्रजभाषा के भूतकालिक रूपों के सदृश अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी की कृतियों में भी 'ओ' रूप का व्यवहार देखा जाता है—

> ढोला मइँ तुहुँ वारियो (हेम० ४।३३०।१)
> तइँ ये पाथोहर जाणिओ (प्रा० पै० ४००।९)

---

१ डॉ० तिवारी हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० २२१

ग्वालिन हेत गोवधन धारी (सूर० १-१७२)
तब सनमुख आयो (नन्ददास रा० प० २।२८)

व्रजभाषा के भूतकालिक निष्ठा वाले रूपों का सम्बन्ध प्रा०भा०आ० (संस्कृत) के कर्मवाच्य भूतकालिक कृदन्त से है। प्रा०भा०आ० 'इ' रूप व्रजभाषा में आकर 'य' हो गया है–व्र० चल्यो ८ प्रा० चलिआ ८ शौ० चलिदो ८ सं० चलित[१]। मागधी में भूतकाल में 'ल' प्रत्यय का प्रयोग होता है। पूर्वी हिन्दी में भूतकाल में शौरसनी के 'इ' या 'य' रूप का प्रयोग दिखाई पड़ता है, मागधी का 'ल' (मारिल या मारल) नहीं। पूर्वी हिन्दी (अवधी) अ०पु० एकवचन में इस्, एस् तथा यस् प्रत्यय का प्रयोग होता है। इन रूपों का निर्माण शौरसनी तथा मागधी दोनों के समन्वय से हुआ है। अवधी में इन रूपों का प्रयोग कर्मवाच्य में ही हुआ है। यद्यपि लघु सार्वनामिक रूपों में प्रयुक्त होने के कारण ये कर्तृवाच्य की भाँति व्यवहृत मालूम पड़ते हैं[२]। जायसी तथा तुलसी की कृतियों में इनके प्रयोग कर्मवाच्य में दिखाई पड़ते हैं।

वर्तमान हिन्दी में 'आ' अन्त वाले भूतकालिक रूपों का महत्त्वपूर्ण प्रयोग होता है–हि० पढ़ा ८ प्रा० पढ़िओ ८ सं० पठित[१]। इनके प्रयोग पुरानी हिन्दी की ही रचनाओं में मिलने लगे थे—

चन्दन के मूल इन्धन बिका (कीर्ति०)
हरि दीरघ बमन बचारा। (सूर० १०-४)
रचि महेस निज मानस राखा (मानस १,३५)

अपभ्रंश में भूतकालिक स्त्रीलिंग रूपों के विधान के लिये कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया, यद्यपि छिटपुट रूप मिल जाते हैं। परवर्ती अपभ्रंश (पुरानी हिंदी) तथा मध्ययुगीन हिंदी में पुल्लिंग रूपों से भिन्न भी स्त्रीलिंग रूप मिलते हैं[३]—

सुवन्न देह कसवट्टहि दिएणी (४।३३०)
लग्गी जही मही पड़ी (प्रा० पैं० ३४५।३)

---

२ डॉ० तिवारी हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० २७३।
३ डॉ० शिवप्रसाद सिंह सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य। ६५ पृ० ६०।

उपलब्ध होते हैं–(१) तिङन्तज रूप (२) कृदन्तज रूप। तिङन्तज रूपों के अन्तर्गत मुख्यतया क्रिया के तीन रूप पाये जाते हैं–(१) वर्तमानकालिक रूप, (२) आज्ञार्थ रूप (३) भविष्यत्कालिक रूप। कृदन्तज रूपों म वतमान कालिक, भूतकालिक और भूतसभावनार्थ रूप काल-रचना में प्रयुक्त होते हैं। इनका प्रयोग विशेषणवत् भी होता है[६]। कृदन्तज रूप कभी तो कृदन्त + शून्य और कभी कृदन्त + सहायक क्रिया (सयुक्त काल में) के रूप में प्रयुक्त होते हैं। पहली दशा में सहायक क्रिया का रूप आक्षिप्त रहता है।

सामान्य वतमानकाल (वर्तमान निश्चयार्थ)

मध्ययुगीन हिंदी म इस काल के अन्तर्गत बहुधा निम्नलिखित प्रत्ययों का व्यवहार होता है--

	एकवचन	बहुवचन
१–	उँ, ऊँ, औं	हिं, हीं, ए
२–	सि, सी, हि, ही	ओ, औ, हु
३–	इ, ऐ, य, हि, हिं	हि, हीं ऐ

उत्तमपुरुष एकवचन

मध्ययुगीन हिंदी में 'उँ' 'ऊ' और औं इन तीनों रूपों का काफी प्रयोग हुआ है। 'उँ' का प्रयोग प्राय अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त समस्त धातुओं के साथ होता है, यथा–तातैं देउँ तुम्हें में साथ (सूर०३।५)

ऊँ – ऊँ वास्तव में उँ का ही रूपान्तर है–

सखी न सच पाऊँ, कहीं (कबीर० ३।१७)

जो रोकूँ तो बल घटै (वही, ३।२८)

कुछ स्थलों पर 'उँ' या 'ऊ' का अकारान्त धातुओं के साथ भी प्रयोग मिलता है–

उँ—बंदउँ गुरुपद कन्ज। (मानस १।५)

ऊँ—प्रथमहि प्रनऊँ प्रेम मय (नद रूप० १)

औं—'औं' का प्रयोग प्रायः अकारान्त धातुओं क साथ होता है–

जित देखौं तित तूं। (कबीर सुमि० ६)

सुमिरों आदि एक करतारू (जायसी० १।१)

---

६ धीरेन्द्रवमा : ब्रजभाषा।२१० पृ० ९४।

चरन कमल बंदौं हरि राई (सूर० १।१)

श्री गनेस सुमिरन करौं। (नरो० सुदा० १)

'औं' वस्तुत 'अउ' का ही रूपान्तरित रूप है। उं, ऊँ और औं का सम्बन्ध प्रा०मा०आ० 'अामि' से है। अपभ्रंश और पुरानी हिंदी व 'अउ' वाले रूप 'उ' और 'ऊँ' के रूप में प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी म भी प्रयुक्त हुये हैं–चालउं (दश० ४), धरउं (शालि० १०) लइ ऊँ (शालि०)[७]।

उत्तम पुरुष बहुवचन

इस वर्ग के अन्तगत प्रयुक्त होने वाले 'हिं' हीं और एँ रूपों में 'हिं' वाले प्राचीन रूप हैं, जो अपभ्रंश और पुरानी हिंदी में काफी प्रचलित थे। 'एं' वाले रूप वस्तुत 'हिं' से विकसित हुए हैं,—पढ़हिं > पढइ < पढ़ें। 'हीं' वाले रूप छंद निर्वाहार्थ प्रयुक्त होते हैं—

हिं—आपुहिं परम धन्य कर मानहिं (मानस ७।२०)

हीं—हम छत्री मृगया बन करहीं (मानस ३।१९)

एँ—हम तिनकों छिनमें परिहरैं। (सूर० ६।२)

मध्यम पुरुष एकवचन

'सि' वाले रूपों का सीधा सम्बन्ध सस्कृत 'सि' (पठसि) से ह जायसी और तुलसी की भाषा म इस प्रकार के सस्कृतीकृत (सस्कृताइज्ड रूपों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है--

केहि दुख रैनि न लावसि आँखी (जायसी०३१।१)

इन सीस बमसि निपथ लमसि नभ तल धरनि (विनय०२०)

छदसुविधार्थ 'सि' का 'सी' हो गया है–छोटे बदन बात बड़ि कहसी (मानस ६।३१)।

'हिं' वाले रूप अपेक्षाकृत कम मिलते हैं–कहहि दस कठ(मानस०६।२३)

'ही' वाले रूप छद-सुविधार्थ प्रयुक्त हुए हैं। 'हिं' वाले रूपों का सम्बन्ध सस्कृत व वर्तमानकालिक रूप (लट् लकार) मध्यमपुरुष एकवचन 'सि' > अप० 'हिं' से है।

---

७ तैसितोरी पुरानी राजस्थानी अनु० डॉ० नामवर सिंह, । ११७ पृ० १४५ ।

उपलब्ध होते हैं-(१) तिङन्तज रूप (२) कृदन्तज रूप। तिङन्तज रूपों के अन्तर्गत मुख्यतया क्रिया के तीन रूप पाये जाते हैं-(१) वर्तमानकालिक रूप, (२) आज्ञार्थ रूप (३) भविष्यत्कालिक रूप। कृदन्तज रूपों में वर्तमान कालिक, भूतकालिक और भूतसंभावनार्थ रूप काल-रचना में प्रयुक्त होते हैं। इनका प्रयोग विशेषणवत् भी होता है[१]। कृदन्तज रूप कभी तो कृदन्त+शून्य और कभी कृदन्त+सहायक क्रिया (संयुक्त काल में) के रूप में प्रयुक्त होते हैं। पहली दशा में सहायक क्रिया का रूप आक्षिप्त रहता है।

सामान्य वर्तमानकाल (वर्तमान निश्चयार्थ)

मध्ययुगीन हिंदी में इस काल के अन्तर्गत बहुधा निम्नलिखित प्रत्ययों का व्यवहार होता है—

एकवचन	बहुवचन
१-उँ, ऊँ, औं	हिं, हीं, ए
२-सि, सी, हि, ही	ओ, औ, हु
३-इ, ए, य, हि, हिं	हिं, हीं ए

उत्तमपुरुष एकवचन

मध्ययुगीन हिंदी में 'उँ' 'ऊँ' और औं इन तीनों रूपों का काफी प्रयोग हुआ है। 'उँ' का प्रयोग प्रायः अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त समस्त धातुओं के साथ होता है, यथा-सार्ते देउँ तुम्हें मैं साथ (सूर० ३।५)

ऊँ — ऊँ वास्तव में उँ का ही रूपान्तर है-

हरी न सच पाऊँ, कहीं (कबीर० ३।१७)

जो रोऊँ तो बल घटै (वही, ३।२८)

कुछ स्थलों पर 'उँ' या 'ऊ' का अकारान्त धातुओं के साथ भी प्रयोग मिलता है-

उ —बंदउँ गुरुपद कंज। (मानस १।५)

ऊ—प्रथमहिं प्रनऊँ प्रेम मय (नंद रूप० १)

औं—'औं' का प्रयोग प्रायः अकारान्त धातुओं के साथ होता है-

निज दर्सौं नित तू। (कबीर सुमि० ६)

सुमिरौं आदि एक करतार (जायसी० १।१)

---

१ धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा ।२१० पृ० ६४।

चरन कमल बन्दौं हरि राइ (सूर० १।१)

श्री गनेस सुमिरन करौं। (नरो० सुदा० १)

'औं' वस्तुत 'अउँ' का ही रूपान्तरित रूप है। उँ, ऊँ और औं का सम्बन्ध प्रा०भा०आ० 'आमि' से है। अपभ्रंश और पुरानी हिंदी के 'अउँ' वाले रूप 'उँ' और 'ऊँ' के रूप म प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में भी प्रयुक्त हुये हैं-बोलउँ (दश० ४), घरउँ (शालि० १०) लहऊँ (शालि०)[७]।

उत्तम पुरुष बहुवचन

इस वर्ग के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले 'हिं' हीं और ऐं रूपों म 'हिं' वाले प्राचीन रूप हैं, जो अपभ्रंश और पुरानी हिंदी में काफी प्रचलित थे। 'एँ' वाले रूप वस्तुत 'हिं' से विकसित हुए हैं,—पढ़हिं 7 पढइ < पढें। 'हीं' वाले रूप छद निवाहार्थ प्रयुक्त होते हैं—

हिं—आपुहिं परम धन्य कर मानहिं (मानस २।२०)

हीं—हम छत्री मृगया बन करहीं (मानस ३।१६)

ऐं—हम तिनकों छिनमें परिहरें। (सूर० ६।२)

मध्यम पुरुष एकवचन

'सि' वाले रूपों का सीधा सम्बन्ध सस्कृत 'सि' (पठसि) से है जायसी और तुलसी की भाषा म इस प्रकार के सस्कृतीकृत (सस्कृताइज्ड रूपों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है--

केहि दुख रैनि न लावसि आँखी (जायसी०३१।१)

इस सीस बससि त्रिपथ लससि नम तल धरनि (विनय०२०)

छदसुविधाय 'सि' का 'सी' हो गया है-छोटे वदन बात बड़ि कहसी (मानस ६।३१)।

'हि' वाले रूप अपेक्षाकृत कम मिलते हैं-कहहि दस कठ(मानस०६।२३)

'ही' वाले रूप छद-सुविधाय प्रयुक्त हुए हैं। 'हि' वाले रूपों का सम्बन्ध सस्कृत क वर्तमानकालिक रूप (लट् लकार) मध्यमपुरुप एकवचन 'सि' 7 अप० 'हि' से है।

---

७ तेसितोरी पुरानी राजस्थानी अनु० डॉ० नामवर सिंह, । ११७ पृ० १४५ ।

मध्यम पुरुष बहुवचन

मध्ययुगीन हिन्दी में सामान्य वर्तमानकालिक मध्यम पुरुष बहुवचन के अर्थ का बोध कराने के लिए धातु के पश्चात 'अ', 'ओ' और 'हु' प्रत्यय का प्रयोग होता है। 'ओ' की तुलना में 'अ' और 'हु' अधिक प्रचलित हैं। 'ओ' और 'आ' वाले रूप ब्रज की कृतियों [आयो (नद० ३।२१) करो (मति० ३८)][8] में उपलब्ध होते हैं। 'हु' वाले रूप अवधी में प्राप्त होते हैं—

प्रजा पाँचकत करहु सहाइ। (मानस० २।१८०)
जिन्ह न भजहु रामतन गान बनावहु (सूरसा० जा० म० ६७)

छंद की सुविधा के लिए कहीं कहीं 'हु' के स्थान पर 'हू' का प्रयोग हुआ है—

सुनहु उचित सब जो कछु कहहू। (मानस २।१८१)

मध्यमपुरुष बहुवचन के उक्त समस्त रूपों का सम्बन्ध प्रा० भा० आ० 'थ' (पठथ)>प्रा० ह>अप० अह, अह और अहु से है।

अन्यपुरुष एकवचन

सामान्य वर्तमान काल अ० पु० ए० व० के अर्थ का द्योतन मध्ययुगीन हिन्दी में इ, ए, य, हि और 'हि' प्रत्यय जोड़कर कराया जाता है। 'इ' वाले रूपों का प्रचुर प्रयोग प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी में मिलता है। इसका सम्बन्ध प्रा० भा० आ० अति>प्रा० अइ>अप० अइ (इ) से है। 'ए' 'अई' का विकसित रूप है।

इ—'इ' रूप का व्यवहार मध्ययुगीन हिन्दी में प्रचुर मात्रा में हुआ है—

हसौं तो राम रिसाइ (कबी० ३।२८)
सब देइ निति घट न भँडारू (जायसी० १।५)
अपन कौं कौन आदर देइ (सूर० १।२००)
पगु चढ़इ गिरिवर गहन। (मानस १।२)

ए—'इ' वाले रूपों की भाँति 'ए' रूप का भी मध्ययुगीन हिन्दी में काफी प्रचार है—

मेरा मन सुमिरै रामकूँ (कबी० सुमि० ८)
मिनसनु कोइ विसरै नाहीं (जायसी० १।५)

---

8 धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा।२११ पृ० ६५।

ऊधो विरहो प्रेम करै (सूर० भ्रमरगीत)
जोगी जोगहिं भजै (नद० भ्रम० १८)
दोष सहाय की दिनकर सोहै। (मानस २।२८६)
झलकै अति सु दर आनन गौर। (घना० २)

य—'य' वाले रूपों का प्रयोग प्रायः आकारान्त धातुओं में होता है—
ज्यू घुण काठहिं खाय। (कबी० ३।२८)

हिं—यह रूप आदरार्थ प्रयुक्त होता है। छद सुविधार्थ 'हिं' का 'हीं' हो जाता है, यथा—
सेवा करहिं नखत सब (जायसी० १०।२)
प्रभु जु साग बिदुर घरे खाहिं (सूर० १।७४१)
माख माँगि भव खाहिं चिता न मोवहिं (तुलसी पाव० ५६)

अन्यपुरुष बहुवचन

इस वर्ग के अन्तर्गत सामान्य रूप से 'हिं' और 'ए' रूप का प्रयोग मिलता है—

हिं—नैन चुवहिं जस महवर नीरू। (जायसी० २६।१९)
कौसल्या आदिक महतारी आरति करहिं (सूर० ६।२६)
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के (मानस १।१)

छद सुविधार्थ 'हिं' का 'हीं' रूप मिलता है—
जहाँ हरि मृग सग चरहीं (नद० रास०)

ऐ—पच सँगी पिवपिव करै (कबीर० सुमि० ७)
सासु ननद तिन पर झहरैं। (सूर० १६२०)
सब कोउ फलहिं बतावैं। (नद०)

सामान्य वतमानकाल (वतमान निश्चयार्थ) के रूपों का व्यवहार वतमान सभावनार्थ (सभाव्य भविष्यत्) के अर्थ में भी होता है, यथा—
चढाइ चोपि चाप आप बाण लै निखग तें (केश० रामचद्र०)

सि—मनु जनि करसि मलान (मानस २।७३)

हि —मैं बरदेउँ तोहि सो लेहि। (सूर० १।२२६)
फाड़ि पुटोला धज करौं, कामड़िली पहिराऊँ (कबीर० ३।४१)
आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ (सूर०१।२७०)
सुहृत आइ जोपन परिहरऊँ (मानस १।२५२)

वतमान आज्ञार्थ रूप

मध्ययुगीन हिंदी म इस काल क रूप केवल अ यपुरुष और म यम पुरुष म प्राप्त होते हैं। इनम भी मध्यम पुरुष वाले रूप अधिक मिलते ह। अ य पुरुष वाल रूप प्राय एकवचन म पाये जाते हैं। इन रूपा (अ य पुरुष वाले रूपों) का निर्माण धातु क अ त म 'उ' या 'ऊ' प्रत्यय क योग से होता है[६]। मध्यम पुरुष के रूपों में लिंग क कारण प्राय कोइ विभेद नहीं दिखाई देता। एसे रूपों म कुछ तो सामान्य रूप स आज्ञा क अथ म प्रयुक्त होते हैं, दूसर आदरार्थ। इस काल म आदरार्थ रूप अ य कालों के आदरार्थ रूपों का अपक्षा अधिक प्रयुक्त होते हैं।

अन्य पुरुष एकवचन

करउ अनुग्रह सोइ (मानस),
तिन्ह के गति मोहि संकर देऊ। (मानस ३।१५८)

मध्यम पुरुष एकवचन

इस वर्ग क रूप धातु के अ त म निम्नलिखित प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं
अ– ऐसे रूप समस्त आधुनिक भारतीय आयभाषाओं में प्राप्त होते हैं-
सखा, सुन स्याम के (न द० भ्रमर० ८)
इ– कबीर नरभै राम जपि (कबीर २।१०)
धुआँ के स धौरौहर देखत न भूलि रे (तुलसी० विनय० ६६)
उ– कह्यो सुन्दरी बाम सुनु (नरा० सुदा० ८)
सुनु सिय सत्य असीस हमारी (मानस)
चढाउ चोपि चाप आप बाण लै निखंग तें (केश० रामच द्र०)
सि– मनु जनि करसि मलान (मानस २।५३)
हि– मैं बरदेउँ तोहि सो लेहि। (सूर० १।२२६)
करहि सदा सतसंग (मानस ३।४६ ग)
हु—बगे लेहु बुझाइ (कबीर २।३२)
अहो असोक हरिसोक लोकमनि पियहि बतावहु (नंद० रास०३५)
ओ–औ-सुनो विनती सुर राइ (सूर० १।२२६)
ताहि बतावौ जोग (नंद० भ्रम० १२)

६– धीरेन्द्रवर्मा ब्रजभाषा।२११ पृ० ६५।

परिखो पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़ो (तुलसी कवि० २।११)

मध्यम पुरुष बहुवचन

मध्ययुगीन हिन्दी में इस वर्ग के अंतर्गत मुख्यतया हु, औ, ओ, रूप मिलते हैं—

हु—सुनहु सकल पुरजन मम बानी (मानस ७।४३)

औ-ओ-ऊधो को उपदेश सुनौ ब्रजनागर (नंद० भ्रमर०)

सुनो भइया सकल भूप दै कान (तुलसी गीता० १।८७)

धातु के अनन्तर इअ, इय, इए (इये), इजे, इजै आदि प्रत्यय जोड़ने से इस काल के आदरार्थ रूप बनते हैं, जैसे—

इअ, इय—लेइअ संग मोहि छाँड़िअ जनि। (मानस २।६)

आयसु देइय हरपि हिय (वही २।४५)

इए—जागिए गोपाल लाल। सूर० १०।२०५)

सो कहिए तन मन बनि आवै। (केशव राम०)

इऐ- प्रभु लाज धारिऐ। (सूर० १।११०)

इये- ब्रज आइय गोपाल। (सूर २२२७)

एसी दुखदाइनि दसा जाय देखिय (घन० १६)

इयै- तोहि मोहि नाते अनेक मानिय जो भावै (तुलसी विन० ७६)

ईजै, इजौ- अब मोपै कृपा कीजै। (सूर० ३।१३)

नृप कैं हाथ पत्र यह भीजौ। (सूर० ५८३)

दीन जानि तेहि अभय करीजै। (मानस ४।७)

ये विधि वाले रूप हैं, जो आशा में घुलमिल गये हैं।

भविष्य निश्चयार्थ

इस काल के रूप मध्ययुगीन हिन्दी की कृतियों (ब्रज और अवधी दोनों में) सामान्य रूप से उपलब्ध होते हैं। ऐसे रूप निम्नलिखित प्रत्ययों के संयोग से निष्पन्न होते हैं—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	इहउँ, इहौं, ऐहौं, उँगो, ओंगो, इगौ	इहैं, एहैं, एँगे, हिंगे
म० पु०	इहै इहहु, इहौ, इगौ, यगो	इहौ, एहहु, औगे, हुगे
अ० पु०	इहि, इहै, इहैं (आद०) एहै एगा, इगा, हिंग (आद०)	इहैं, इहहिं, इहिं, एहैं, ऐंग, हिंगे

मध्ययुगीन हिन्दी म मुख्यतया भविष्य निश्चयार्थ के दो रूप प्राप्त होते हैं—(१) 'हि' वाले रूप (२) 'ग' वाले रूप। 'हि' वाले रूप मूल तिङन्तज अपभ्रंश 'ह' भविष्यत् वाले रूपों के विकास हैं। 'लिंग' के कारण इनमें कोई भिन्नता नहीं दिखाई देता। 'ग' वाले रूपों म सम्भावनार्थ रूपों (पढ़े, खाये) के साथ 'ग' अंश जोड़ा जाता है। ये 'ग' रूप कृदन्तज रूपों की भाँति कर्ता के लिंग और वचन के अनुसार बदलते हैं। मध्ययुगीन हिन्दी में 'ग' वाले रूप प्राय पश्चिमी हिन्दी म प्राप्त होते हैं।

उत्तम पुरुष एकवचन

इहउँ— नारद वचन सत्य सब करिहउँ (मानस १।१८७)

इहौं— 'इहउँ' का ही 'इहौं' हो गया है, यथा—
कस को मारिहौं, सदा मैं कारहौं (सूर० १।२८४)
सबै भाँति पिय सेवा करिहौं (मानस २।६७)

ऐहौं— अबलौं न सानो अब न नसैहौं (तुलसी विनय० १०५)
साहस सहारि सिर ओर लौ चलायहौं (घन० २३)

(चलाइहौं ∠ चलायहौं ∠ चलैहौं)

उँगा-औंगा-हुँगो—मध्ययुगीन हिन्दी म इन तीनों रूपों के प्रचुर प्रयोग मिलते हैं। ऐसे रूप प्राय ब्रज की कृतियों म उपलब्ध होते हैं, यथा—

उँगो— महाराज राम पहँ जाउँगो। (तुलसी गीता० ५।३०)

औंगो— कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो। (तुलसी० विन० १७२)

इनके स्त्रीलिंग रूप क्रमश उँगी और औंगी भी मिलते हैं—जीवन दान लेउँगी, तुमसौं, (सूर० १४६६), हौं तो तुरत मिलौंगी हरि कौ (सूर० ८०८)

हुगी— मैं दान लेहुगी। (सूर० १५३८)

उत्तम पुरुष बहुवचन

मध्ययुगीन हिन्दी में उक्त चारों रूपों (इहैं, एहैं, ऐंगे और हिंगे) के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं।

इहैं— नद नृपति-कुमार कहिहैं। (सूर० ३२२७)

एहैं— कौन भुवाव देहैं। (सूर० १५३३)
नातहि देहैं लदाय लदा मरि (नगे०मुदा० १५)

'हि' और 'हीं' वाले वर्तमानकालिक रूप कुछ स्थलों पर सामान्य भविष्यत्काल उत्तम पुरुष बहुवचन का अर्थ द्योतित करते हैं।[१०]

करहिं कटक बिनु भट बिनु धार। (मानस २।१६२)
जीवत पाउँ न पाछे धरहीं। (मानस २।१६२)

ऐ गे-(हम) बहुरि मिलेंगे। (सूर० १७३८)
स्त्रीलिंग में इसके एंगी रूप बनते हैं–
हम उनकों देखैंगी। (सूर० १७३८)
हिंगे– हम कछु मोल लेहिंगे। (सूर० १५२६)
स्त्रीलिंग में 'हिंगी' रूप बनता है–
दाउँ हम लेहिंगी। (सूर० २८७७)

मध्यमपुरुष एकवचन

मध्ययुगीन हिन्दी में इस वर्ग के अन्तर्गत प्राय इहै, इहहु, इहौ और 'यगो' वाले रूप मिलते हैं, जैसे–

इहै– तै हूँ जा हरि हित तप करिहै। (सू० ४।६)
इहहु इहौ-यहौ-जौ तुम माहिं वारिहौ। (सूर० १।३३२)
राम काज सब करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान (मानस ५।२),
तृपित चखनि लाल कब धौं दिखायहौ। (घन० ३)
इगौ, यगो–छनकहिं में (तू) भस्म होइगौ। (सूर० ५५०)
इवहै विष भोजने जो सुधा सानि खायगो। (तुलसी विनय०४८)

स्त्रीलिंग में इसके स्थान पर कुछ स्थलों पर एगी और औगी रूप का प्रयोग मिलता है, जैसे–तू कहा करैगी (सूर० ७११) रहौगी, कहौगी तब साँची कहा अना सिय। (तुलसी गीता० १।७०)।

आदरार्थ हुगे और ओगे रूप का भी प्रयोग मिलता है, यथा–
मूवों पीछे देहुगे। (कबीर ३।७)
पावहुगे तुम अपनो कियो। (सूर० ५३६)
स्याम फिरि कहा करोगे। (सूर १।२४६)

मध्यम पुरुष बहुवचन

इस वर्ग के अन्तर्गत प्राय इहौ, एहहु, औगे, हुगे आदि रूपों का प्रयोग मिलता है, जैसे–

१०–डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव तुलसी की भाषा, पृ० १५१।

इहौ– निना कष्ट यह फल पाइहौ (सूर० १३३८)
एइहु–हँसी करेहहु पर पुर जाइ । (मानस १।६३)
औग–सूर स्याम पूछत सब ग्वालनि, खेलौगे किहि ठाहर (सूर१० २४३)
हुग– पावहुगे कियौ आपनो (सूर०१५३३)
स्त्रीलिंग म 'इकारान्त' रूप 'औगी' और हुगी क भी उदाहरण मिलते
ई–तुम अपने जा नेम रहौगी । (सूर० १३४४), (तुम) रिस पावहुगी
(सूर० १३२२)

अन्यपुरुष एकवचन

मध्ययुगीन हिन्दी म मुख्य रूप मे अन्य पुरुष एकवचन न लिये इहि, इहै, इहैं (आद०) एहै, एगो, इगा और हिग (आद०) रूपों का व्यवहार मिलता है, जैसे—

इहि– जो न मिलिहि वर गिरिजहि जागू । (मानस १।७१)
इहै– वहै ल्याइहै सिय-सुधि छिन में आइहै तुरत (सूर०६।७४)
को कृपालु बिनु पालिहै बिरुदावलि बर जोर (मानस०२।२६६)
कहिहै सब तरो हियो । (विहा० ६२)
परिहै मनौ रूप अबै घर च्वै (घन० २)
इहैं (आद०)—इसक पयात प्रयोग मध्ययुगीन हिन्दी म मिलते हैं—
महर रीझिहैं हमको । (सूर० ६८१)
करिहैं राम भावतो मन को । (तुलसी० गीता० २४)
एहै– हरि जू ताको आनि छुटैहै । (सूर० ८)
काढ़ि कलंक दहै । (मानस १।८७)
एगौ– अब मरो लाल यात कहगौ । (सूर० १०।७६)
इगा– राम कह भला होइगा । (कबीर० २।१)
हिंग– (आद०) करहि पुरवनि चलहिंगे । (सूर०१०।३८)
राम जहाँ चलहिंगे नर । (तुलसी गीता० १ १६)
स्त्रीलिंग में इकारान्त' रूप इगी, एगी, हिंगी आदि मिलत हैं, जैसे —
दूर कौन सा होइगी (सूर० १२५२)
मैया कबहि बढ़ैगी चोटी (सूर० १०।१५)
टूटहिगी मालिन लर मरी । (सूर० १६७०),
चलैगी कहाना घन आनद तिहार की । (घन० ५३)

अन्य पुरुष बहुवचन

इस वर्ग के अन्तर्गत मुख्य रूप से, इहं, इहहि, इहि, एगे, एगा हिगे आदि रूप उपलब्ध होते हैं, जैसे—

इहं- वे सुनहिं यह बात। (सूर० ५९२)
त्रलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं (मानस ४।३०

इहहि- जो देखहि देखिहहि जिन्ह देखे। (मानस २।१७०)

इहं- सुन्दर अलंकार अंजहि सब लागू। (मानस २।१२८)

ईं- गोपी गाइ बहुत दुख पईं। (सूर० ८३८)
लहैं लोचन लाहु सकल लखि। (तुलसी गीता० १।८)

एगे- ब्रज लोग डरैंगे। (सूर० ५२२)

हिगे- ऐसे निठुर होहिंगे तऊ। (सूर० १२५४)
जो होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़भागा। (तुलसी वि० ६५)

प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में 'स' मूलक भविष्यत् रूपों का व्यवहार देखा जाता है, जैसे करिसि, बोलिसु। इन रूपों की समता अपभ्रंश के 'स' भविष्यत् (करीसु हेम० ४।३८६४) से की जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर सामान्य भविष्यत् के अर्थ में सामान्य वर्तमानकाल के भी रूप व्यवहृत मिलते हैं, यथा—मैं मरी मरहूँ (भ० ४१)[११]

दक्खिनी हिन्दी में सामान्य भविष्यत् काल में दो रूप व्यवहृत होते हैं— १) 'ग' वाले रूप (२) 'स' वाले रूप। स' वाले रूप अपेक्षाकृत कम मिलते हैं 'ग' वाले रूप कहा जायगा। गुस्सा तेरा निकलायेगा।[१२]

'स' वाले रूप तुम्हा को इस नर मों देख्या न जासो। सुदा नगर में न आसो।[१३]

भविष्य आज्ञार्थ

इस काल का प्रयोग वर्तमान आज्ञार्थ रूपों से भिन्न होता है। मध्ययुगीन हिन्दी में मुख्यतया पूर्वी हिन्दी में इसके लिये एमु (म०पु०ए०व०) और एहु (म०पु०ब०व०) रूप का व्यवहार होता है,[१४] यथा—

---

११ तेस्सितोरी पुरानी राजस्थानी अनु० डॉ० नामवर सिंह, पृ० १५३।

१२ डा० बाबूराम सक्सेना दक्खिनी हिन्दी पृ० ५८।

१३ वही।

१४ एवोल्यूशन आफ अवधी, ११ पृ० २६६।

अउ मुग सर्यं मा बहेसु परवा (जायसी०)
पिउ सौं कहेहु सदसडा, हे भौंरा हे काग। (वही)
तिन्हहि दगाइ फिरेसु तइ साता। (मानस)
करेहु सो ज्नन विवक विनागी। (वही)

संयुक्त काल

१–संयुक्त वर्तमानकाल—इस काल की रचना, क्रिया क वर्तमानकालिक कृदत के साथ सहायक क्रिया क वर्तमानकालिक रूप क जोड़ने से होती है। मध्ययुगीन हिंदी म इसक पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं, यथा—

कजार करता जात हूँ, सुनता ह सब कोइ (कबीर० २।१)
तू काहे को भूलति है। (सूर० १२३६)
फिर घूमति ह चलनो अब फेतिक (कवि० २।११)
न चाहति हौं दधि दूध मठौती। (नरो० मुदा० १३)

ये रूप प्राय पश्चिमी हिन्दी की कृतियों म देखने को मिलते ह। पूर्वी हिन्दी की कृतियों म सहायक क्रिया प्राय अविचित देखी जाती है।

पूर्ण वर्तमानकाल—भूतकालिक कृदतज रूप क पश्चात् सहायक क्रिया क वर्तमानकालिक रूप जोड़न स इस काल की रचना होती है। मध्ययुगीन हिन्दी की ब्रज की कृतियों म इस काल क क्रियारूप अल्पमात्रा म प्रयुक्त हुये हैं, पुरुष की दृष्टि स उनम कोइ भिन्नता नहीं होती है। यदि वचन की दृष्टि स हम उनका विभाजन करें तो प्राय 'औ' और 'यौ' वाले रूप एक वचन की कोटि म तथा 'ए' वाल रूप बहुवचन म प्रयुक्त मिलेंग। ए' वाले रूप आदरार्थ एकवचन म भी प्रयुक्त होते हैं। लिंग की दृष्टि स 'एकारान्त' रूप पुल्लिंग में और इकारान्त इकारांत रूप स्त्रीलिंग म व्यवहृत होते है[१५]—इस प्रकार ब्रज की कृतियों म प्राय 'औ', 'यौ' 'ए' और 'इ' वाले रूप उपलब्ध होते ह—

औ– कह्यौ पुरुष वह ठाढ़ौ आइ। (सूर० ६।२)
जौ पै दरिद्र लिखौहैं ललाट (नरो०मुदा०१)

यो या-मैं आयौ हौं सरन तिहारा। (सूर० १।१७८)
कह्यौ पिय को जेहि कान कियो है (तुलसी कवि० २।२०)

१५—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा।२३४पृ० १११।

भलो बन्यो है साथ (केश० राम०)
हेत पग्यौ किधा प्रेत लग्यौ है (तुल० कवि० २।२०)

ए– जनम जनम बहु करम किए हैं। (सूर० १।३२६)
ठाढे हैं नवद्रुम डार गहे। (तुल० कवि० २।१३)
तुम हो कहत हम पढे एक साथ हैं (नरो० सुदा० ६)
जतन बुझे हैं सब जाको भर आगे (घन० १८)

इ– देवकी-गभ भई है कन्या। (सूर० १०।४)
लक लीलिबे को काल रसना पसारी है। (तुल० कवि० ३।५)
सिगरी बसुधा जिन हाथ लइ है। (केश० राम०)
ऐसे घनआनद गही है टेक मन माहि (घन० २३)

ब्रज का कृतियों में 'ह' तथा उसके विकृत रूपों का भी प्रयोग पाया जाता है—

कहा चरित कीन्हे हैं स्याम। (सूर० १०।३१६)
तुम बहु पतितनिको दीन्ही है सुखधाम। (वही १।१७६)

अवधी की कृतियों में सहायक क्रिया प्राय आक्षिप्त रहता है।

पूर्णभूतकाल

मध्ययुगीन हिन्दी की कृतियों में इस काल के रूप अपेक्षाकृत अल्पमात्रा में उपलब्ध होते हैं। ऐसे रूप वहाँ भूतकालिक सामान्य क्रिया के साथ ही, हुता, हुते, ह, हो, रह, था आदि सहायक क्रियाओं के सयोग से निष्पन्न होते हैं। अवधा की कृतियों में सहायक क्रियाओं का प्राय लोप दिखाइ देता है। इस काल म प्रमुख रूप से मूल धातु के साथ निम्नलिखित प्रत्यय जुटते हैं—

इ–इ–जा कारणि मैं जाइ था। (कबीर ५।३७)
मैं खेइही पार कौं। (सूर० ६।४२)

ए– हरि गये हुते माखन की चोरी। (सूर० १०।२९८)

यौ– स्याम रह्यौ हो आवन। (सूर० ०३६७)

न्ह(न्हे)–प्रगट कपाट दीन्हे हे बहुजोधा रखवारे। (सूर० ६।१०५)

अपूर्ण भूतकाल

इस काल के रूप मध्ययुगान हिन्दी की कृतियों म वर्तमानकालिक

अउ मुग सर्ये य न वहेसु परवा (जायसी०)
पिउ सौं कहेहु सदेसडा, हे भौंरा हे काग! (वही)
तिन्हहि देखाइ कहेसु तइ सीता। (मानस)
करेहु सो जतन विवक विचारी। (वही)

सयुक्त काल

१–सयुक्त वर्तमानकाल—इस काल की रचना, क्रिया क वतमानकालिक कृदत के साथ सहायक क्रिया के वतमानकालिक रूप के जोड़ने से होती है। मध्ययुगीन हिंदी म इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं, यथा—

कबीर कहता जात हू, सुनता है सब कोइ (कबीर० २।१)
तू काहे को भूलति है। (सूर० १२३६)
फिर घूमति ह चलनो अब केतिक (कवि० २।११)
न चाहति हौं दधि दूध मटौती। (नरो० सुदा १३)

ये रूप प्राय पश्चिमी हिंदी की कृतियों म देखने को मिलते हैं। पूर्वी हिन्दी की कृतियों म सहायक क्रिया प्राय अप्रचलित देखी जाती है।

पूर्ण वतमानकाल—भूतकालिक कृदतज रूप के पश्चात् सहायक क्रिया के वतमानकालिक रूप जोड़ने से इस काल की रचना होती है। मध्ययुगीन हिन्दी की ब्रज की कृतियों म इस काल के क्रियारूप अल्पमात्रा म प्रयुक्त हुय हैं, पुरुष की दृष्टि स उनम कोई भिन्नता नहीं होती है। यदि वचन की दृष्टि स हम उनका विभाजन करे तो प्राय 'ओ' और 'यौ' वाले रूप एक वचन की कोटि म तथा 'ए' वाले रूप बहुवचन म प्रयुक्त मिलेंगे। 'ए' वाले रूप *आदराथ एकवचन म भी प्रयुक्त होते हैं। लिंग की दृष्टि से 'एकारात'* रूप पुल्लिग में और इकारा त ईकारात रूप स्त्रीलिग म व्यवहृत होते हैं[१५]— इस प्रकार ब्रज की कृतियों म प्राय 'औ', 'यौ' 'ए' और 'इ' वाले रूप उपलब्ध होते हैं—

औ– कह्यौ पुरुष वह ठाढ़ौ आइ। (सूर० ६।२)
जौ पै दरिद्र लिखौ है ललाट (नरो सुदा०१)
यौ-या-मैं आयौ हौं सरन तिहारा। (सूर० १।१७८)
कह्यौ निय को जेहि कान कियो है (तुलसी कवि० २।२०)

१५—धारेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा।२३४पृ० १११।

मलो बन्यो है साथ (केश० राम०)
हेत पर्यो किधौं प्रेत धर्यो है (तुल० कवि० ५।२०)

ए- जनम जनम बहु करम किए हैं। (सूर० ११३२६)
ठाढे हैं नवद्रुम डार गहे। (तुल० कवि० २।१३)
तुम हो कहत हम पढे एक साथ हैं (नरो० सुदा० ६)
अतन बुझै है सब जाकी भर आगे (घन० १८)

इ- देवकी-गाम भइ है कन्या। (सूर० १०।४)
लक लीलिवे को काल रसना पसारी है। (तुल० कवि० ३।५)
सिगरी वसुधा जिन हाथ लई है। (केश० राम०)
ऐसे घनआनद गही है टेक मन माहि (घन० २३)

ब्रज का कृतियों में 'ह' तथा उसके विकृत रूपों का भी प्रयोग पाया जाता है—

कहा चरित कीन्हे हैं स्याम। (सूर० १०।३१६)
तुम बहु पतितनिको दीन्हौ है सुखधाम। (वही ११९७६)

अवधी की कृतियों में सहायक क्रिया प्राय अादिष्ट रहता है।

पूर्णभूतकाल

मध्ययुगीन हिन्दी की कृतियों में इस काल के रूप अपेक्षाकृत अल्पमात्रा में उपलब्ध होते हैं। ऐसे रूप वहाँ भूतकालिक सामान्य क्रिया क साथ हो, हुती, हुते, ह, हो, रह, या आदि सहायक क्रियाओं के सयोग स निष्पन्न होते ह। अवधी की कृतियों म सहायक क्रियाओं का प्राय लोप दिखाइ देता है। इस काल म प्रमुख रूप से मूल धातु के साथ निम्नलिखित प्रत्यय जुटते हैं—

इ-द-जा कारणि मैं जाइ था। (कबीर ५।३७)
म खेइही पार कां। (सूर० ६।५२)

ए- हरि गये हुते माखन का चोरी। (सूर० १०।२६८)

यौ- स्याम रह्यौ हो आवन। (सूर० २३६७)

-ह(-हे)-प्रगट कपाट दीन्हे हे बहु नाघा रखवारे। (सूर० ६।१०५)

अपूर्ण भूतकाल

इस काल के रूप मध्ययुगान हिन्दा का कृतियों म वतमानकालिक

कृदन्त रूपों के साथ हौ, हौ, हुती, हुते, हुतौ, है, हो, रहा आदि सहायक क्रिया के रूपों के सयोग के निष्पन्न होते हैं—

हा- हम चरतहीं। (सूर० ३७०३)

हा- छोंडी मथत दहा। (सूर० २३६५)

हुती- (सो) चितवनि हुती (सूर० ८०८)

हुतो- कपि सुग्रीव बालिक भय ते बसत हुतो तहँ आइ (सूर० ९।६८)

है- आजु माह वलराम कहत है। (सूर० ३६६)

तब लौ तृति पावत जोवत है। (घन १२)

हो- समल मान नृप मारत हौ। (सूर० ६००)

रहा-रहउ-चलत रहा सो हाइग भग। (मानस ६।१८)

चाटत रहेउ स्वान पातर ज्यों (तुल० वि० १२५)

कृदन्त रूप

वर्तमानकालिक कृदन्त—मध्ययुगीन हिन्दी म वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप प्राय अकारान्त धातुओं के साथ दोनों लिंगों म–अत लगाकर तथा अन्य समस्त धातुओं के साथ-ते' लगाकर बनाये जाते हैं।

सु-नत ज्ञान कथा अलिगन। (सूर० भ्रमरगीत)

बरसात लसत का त्रास होत 'दोरिभत' (तुलसी कवि०)

महिन तात प्रमुतपन भाजन। (वही)

अनेक स्थलों पर अकारान्त धातुओं के साथ भी 'त' वाले रूपों का ग हुआ, है—

जैनत मानसरोवर गइ ।। जायसी)

एहि सबत कछु दुलभ नाहीं। (मानस)

एम माचत स्याम जहाँ राजन तह आयी (नन्ददास)

स्त्रीलिंग में इस वग के प्रतगत 'आत' या 'ति' वाले रूपों का भी मध्ययुगीन हिन्दी में मिलता है यथा-

निरखत एक स्याममुन्दर के बार बार लावति छाती। (सूर०भ्रम०)

राम को रूप निहारति जानकी। (तुलसी कवि०)

बार बार मुख चुंबति माता। (मानस)

प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी म पुल्लिग म 'अतउ, स्त्रीलिग म-अती, नपुंसक लिंग में-अन्तउ धातु के अन्त म जोड़ने पर वर्तमानकालिक कृदन्त

बनता है, जोकि < अप० अन्तउ, अन्ती, अन्तउ < सं० अन्तक, अन्तकी, अन्तम् का प्रतिरूप है, जैसे-चलतु, धरतु, फिरता, करता इत्यादि[16]।

उपर्युक्त प्रत्ययों ('त' और 'ति') आदि का सम्बन्ध < प्रा० अन्त < सं० अत् (शतृ प्रत्यय) से है।

भूतकालिक कृदन्त—प्राचीन ब्रज में पुल्लिंग एकवचन के लिये ओ, औ, यो तथा यौ प्रत्यय और बहुवचन में,-ए,-ये-यैं प्रत्यय तथा स्त्रीलिंग में एकवचन के लिये इ और बहुवचन में इ प्रत्यय धातु के अन्त में जोड़ने से भूतकालिक कृदन्त बनता है[17]। पुल्लिंग एकवचन-ओ, औ या यो अन्त वाले तथा यौ या-या अन्त वाले रूप पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

ओ औ-यो-जौनौं विभापन लात न मारो। (तुलसी कवि० ७।३)

ग्वालनि हेत गोवधन धार्यो (सूर० १।१७२)

बोल्यो द्वार पाल सुदामा नाम पाइ सुनि (नरो०सुदा०)

यौ, यो-मैया में नहिं माखन खायौ। (सूर० माखनचोरी)

प्रीति जनावत भाति सों मात जो काढ यो आय। (विहा०)

कुछ स्थलों पर—एउ वाले रूप भी मिलते है, जैसे—

घर धरेउ हो (सूर० माखनचोरी)

पुल्लिंग बहुवचन रूप-ए जो अकारान्त को छोड़कर शेष सभी धातुओं में-ये, यौ हो जाते है, वे समस्त रूपों में सर्वाधिक प्रचलित हैं, जैसे—

ए- नवनाल सरोरुह से बिगसे (तुलसी कवि० १।१)

ये- द्रौपति के तुम वसन छिनाये। (सूर० १।२८४)

इनि तव राज बहुत दुख पाये। (वही १।२८४)

'एँ' **वाले** रूप कीन्ह आदि क्रियाओं के साथ प्रयुक्त मिलते हैं, जैसे,-गात कारि लीन्हें। (सूर० माखनचोरी)

स्त्रीलिंग एकवचन 'इ' अन्तवाले रूप सभी स्थानों पर एक समान मिलते हैं—

अब मेरी नाव भरी। (सूर० विनय०)

चली छु सातक हाथ (विहा०)

इन सौंपी मुसकाय। (वही)

१६—टेस्सितारी पुरानी राजस्थानी, अनु० डॉ० नामवर सिंह, पृ० १५४।

१७—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा ।२१६ पृ० १०।

स्त्रीलिंग बहुवचन के 'इ' अन्त वाले रूपों के अधिक उदाहरण नहीं प्राप्त होते-विरह तुम्हारे भइ बावरा। (सूर० भ्रमरगीत)

अवधी की कृतियों में मुख्य रूप से पुल्लिंग एकवचन के लिए-आ, बहुवचन में-ए तथा स्त्रीलिंग एकवचन के लिए-ई तथा बहुवचन में-इ आदि प्रत्यय लगाने से भूतकालिक कृदन्त बनता है, जैसे—

आ- भरत दुखित परिवार निहारा। (मानस)

ए- चले बग वर बाजि लजाय। (मानस)

ई- तेहि अवसर कुसग तहँ आई। (वही)

इ - चली सबै मालति संग। (जायसी)

शुद्ध अवधी की बोलचाल की भाषा में क्रिया का रूप कर्ता के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार होता है। अवधी की पूरी बोलियाँ कृदन्त रूप नहीं लेती हैं, इनमें तिङन्त रूपों का ही व्यवहार होता है। इन रूपों का मूल भले ही कृदन्त हो लेकिन व्यवहार तिङन्त रूपों के समान ही होता है,[१८] जैसे-देखउ, दुदिउँ, देखा इत्यादि।

ठेठ अवधी में सकर्मक क्रिया के रूपों में पुरुष भेद बराबर बना रहता है। इसके अतिरिक्त जायसी और तुलसी में सामान्य आकारान्त रूप भी प्राप्त होते हैं, जिसका प्रयोग सभी पुरुषों, सभी वचनों और सभी लिंगों में समान रूप से हुआ है[१९],—

हम तो तोहि देखावा पीऊ (जायसी)

तिन्ह पावा उत्तिम कैलासू। (वही)

सतु प्रसगु गिरिपतिहि सुनावा। (मानस)

अवधी में बहुत से भूतकालिक अकर्मक कृदन्त विकल्प से लुप्त हो जाते हैं, जैसे—ठाढ़, बैठ, आय, गय इत्यादि। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

बैठ महाजन सिंहलदीपी। (जायसी)

रहा न जोबन आव बुढ़ापा (वही)

सकर्मक क्रियाओं में करना, देना और लेना के विकल्प से 'कीन्ह', 'दीन्ह' और 'लीन्ह' रूप होते हैं, उदा०—

१८—रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० ८६।

१९—वही, पृ० १८०।

जेहिं जिउ दीन्ह, कीन्ह ससारू। (जायसी)

हरि रघुवस लीन्ह अवतारा। (मानस)

इनका विकास अपभ्रंश के 'दिन्ह' और 'लिन्ह' जैसे भूतकालिक कृदतज रूपों से सीधे हुआ है। इन दोनों के वजन पर हिंदी ने भी 'कीन्ह' और 'लीन्ह' रूप बना लिया है।

भोजपुरी से प्रभावित 'ल' वाले भूत कृदन्त रूप भी अवधी की कृतियों में प्राप्त होते हैं, जैसे—अस कहि कोपि गगन पर धायल। (६।६७)

भूतकालिक कृदन्त में लिंग तथा वचन के कारण रूपान्तर होता है।

भूत सभावनार्थ रूप

इस प्रकार के रूपों का निर्माण मध्ययुगीन हिन्दी में धातु के अन्त में 'त', तो, तौ पुल्लिंग एकवचन के लिए, ते, पुल्लिग बहुवचन तथा आदरार्थ के लिए, ति, ता स्त्रीलिंग एकवचन और 'तिं' या 'तीं' स्त्रीलिंग बहुवचन के लिए प्रयुक्त होते हैं[२०]—

त—जो न होत जग जनम भरत को। (मानस २।१३३)

प्रथम सुनत जो राउ राम गुन रूपहिं (तुलसी जानकी० ७७)

तो-कोदो सवाँ जुरतो भरि पट (जो) (नरो० सुदामा० १३)

जो पै चेराइ राम की करतन लजातो। (तुलसी विनय० १५१)

ते-करते नहिं बिलम्ब रघुराई। (मानस ५।१६)

जो पै हरिजन के गुन गहते। (तुलसी विनय० ६७)

ति-जो न होति सीता सुधि पाई। (मानस ५।२६)

अवधी की कृतियों में इसके अतिरिक्त भूत सभावनार्थ 'तेहु' और 'तेउ' वाले रूप भी मिलते हैं, जो सहायक क्रियाओं के अवशेष माने जाते हैं,[२१] यथा—

तेहु-जौ तुम्ह अववेहु मुनि की नाइं। (मानस १। ८२)

तेउँ-जौ जनतेउँ वन बन्धु बिछोहू। (वही, ६६१)

त, ति, ते, ता वाले रूपों का सम्बन्ध सस्कृत के शतृ प्रत्यय वाले 'त' वाले रूपों से है। त में प्रयुक्त होने वाले 'एहु' या 'एउँ' रूप का सम्बन्ध

२०—धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा २१८ पृ० १००।

२१—डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव तुलसीदास की भाषा, पृ० १४६।

रूप संस्कृत 'धारक' से व्युत्पन्न माने जाते हैं। 'ऐया' 'वैया' वाले रूपों का सम्बन्ध डॉ० सक्सेना ने तृच् से माना है[२९]।

पूर्वकालिक कृदन्त

मध्ययुगीन हिंदी म पूर्वकालिक रूपों को मुख्यतया दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) ऐसे रूप जो धातु के पश्चात् इ, इ, ए, य आदि प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं।

(२) वे रूप जो धातु के साथ के, करि, कै, कैं आदि परसर्गों के योग से निष्पन्न होते हैं।

मध्ययुगीन हिन्दी (ब्रजभाषा) म अकारान्त धातुओं म इ तथा आकारान्त अथवा ओकारान्त धातुओं म य जोड़कर पूर्वकालिक रूप बनाये जाते हैं, जैसे-करि, जाय, रोय गोय इत्यादि। उदा०—

पहिले करि परिनाम नद सों। (सूर० भ्रमरगीत)
वृषभानु गोप सों जाय सकल सुधि लीजो। (वही)
रहिमन निज मन की व्यथा मनहीं राखियो गोय। (रहीम)

छंद सुविधार्थ 'इ' के स्थान पर 'ई' रूप मिलते हैं —

पांडव अहित विचारी (सूर० १।२२२)

पूर्वकालिक कृदंत की रचना करते समय एकारान्त धातुओं को 'एकारांत' कर दिया जाता है, इसके प्रचुर प्रयोग ब्रज की कृतियों में मिलते हैं। ऐसे रूप इ (अइ) के ही विकसित रूप हैं—

मृग चौंकि चकै चितवै चित दै। (तुलसी कवि०)
कर लै चूमि चढ़ाय सिर। (विहारी)

ब्रजभाषा म कभी कभी आकारान्त धातुओं म 'इ' लगाकर पूर्वकालिक रूप बनाये जाते हैं, जैसे—धाइ (सूर० २७७।२)।[३०] ब्रजभाषा की बाद की कृतियों म इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं—आँखिन को नैवो आइ दिखाइए। (श्री चन्द्रा०)। 'हो' सहायक क्रिया का पूर्वकालिक रूप 'ह्वै' मिलता है—सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो (सूर० भ्रमरगीत), परिखौ पिय

२९—डा० सक्सेना एवोल्यूशन आफ अवधी, ।३४३।
३०—धीरेन्द्र वर्मा-ब्रजभाषा ।२२१ पृ० १०४।

छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े (तुलसी कवि०)। 'ह्वै' का पूर्वकालिक रूप ब्रजभाषा में कभी-कभी 'है' भी मिलता है, परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं, जैसे—सूर है के पिपियात काहू को ह। (गोकुल० ४१५)[११]।

ब्रजभाषा में पूर्वकालिक कृदन्त के पश्चात् कै, कै, करि आदि परसर्ग लगाकर बनाये गये रूपों के भी पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं—

कै, कै-मिटी प्यास जमुना जल पीकै। (सूर० १३०४)

केहि करनी जन जानिकै सनमान किया रे। (तुलसी० विनय०)

आसा गुन बाँधिकै (बिहा० २३)

करि-कै करि साप पिता पहँ आयो। (सूर० ११२६०)

ब्रजभाषा की भाँति अवधी में भी 'इ' प्रत्यय धातु के अन्त में लगाने से पूर्वकालिक रूप की रचना होती है। इनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

जाइ पान पर ठाढी भइ। (जायसी ४१२)

सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू। (मानस २।२६)

अवधी में प्रयुक्त पूर्वकालिक रूपों की रचना प्रायः ब्रजभाषा की भाँति होती है। खड़ीबोली और ब्रजभाषा की भाँति वहाँ पर भी धातु के पूर्वकालिक रूप के पश्चात् परसर्गों का प्रयोग देखा जाता है, परन्तु ऐसे रूप 'इ' वाले रूपों की अपेक्षा कम मिलते हैं, जैसे—सुनिकै उतर आँसु पुनि पोंछे। (जायसी ५१७)

पूर्वकालिक क्रिया के उक्त रूपों के बीज, अपभ्रंश और पुरानी हिंदी से ही मिलने लगे थे, उदा०—

इ ऐ-अम्हहिं ये हत्थडा जइ पुणु मारि मराहु। (हेम० ४।४३९।१)

खण एक चुप भै रहइ। (कीर्ति० २।४२)

करि- विरह हुयास दद्देवि करि। (सदेश०)

प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में पूर्वकालिक कृदन्त के दो रूप एवि और -ई प्राप्त होते हैं। 'एवि' वाले रूप अपभ्रंश के अवशेष हैं। इनके प्रयोग बहुत कम मिलते हैं, जैसे-मरेवि धरेवि। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के धातु में -ई प्रत्यय जोड़कर पूर्वकालिक कृदन्त बनाने की पद्धति आधुनिक गुजराती तथा आधुनिक राजस्थानी की मालवी जैसी बोलियों में सामान्य

२१—वही

रूप से पाई जाती है, [३२] जैसे—विस्तारी, लेई, जाई। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में 'ई' के पश्चात् स्वार्थे नइ या करी परसग भी जोड़ा जाता है, जिसका प्रयोग सामान्य रूप से गद्य और पद्य दोनों में मिलता है, जैसे—कई-नइ देखी-करी इत्यादि।[३३]

'इ' वाले रूपों का सम्बन्ध प्रा० भा० आ० व म० भा० आ० 'इ' से है। खड़ीबोली में इस 'इ' का लोप हो गया तथा ब्रज और अवधी में 'सुनि' के स्थान पर 'सुन' प्रयुक्त होता है, परन्तु उसके स्थान पर सम्प्रदान का परसर्ग के, ह्वै, कर प्रयुक्त होता है। 'इ' वाले रूप भोजपुरी में भी इन परसर्गों के साथ प्रयुक्त मिलते हैं, यथा—देखिके, सुनिके, ।[३४] 'कर' की व्युत्पत्ति प्रा० 'करिअ' तथा 'हि०' के' की व्युत्पत्ति प्राकृत 'कइव' से दी जाती है।

भविष्यत्कालिक कृदंत

भविष्यत्कालिक कृदंतज रूप 'ब' केवल पूर्वी हिन्दी (अवधी आदि) की कृतियों में मिलता है। 'ब वाले ये रूप पुरानी हिन्दी की कृतियों (विद्यापति इत्यादि में) भी दिखाई देते हैं। जायसी और तुलसी में इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं [३५] जैसे—

> रहब सकोचि दुवौ कर जोरे। (जायसी)
> कित मिलि कै खेलब एक साथा। (वही)
> तो भल जतन करब सुविचारा। (मानस)

'ब' वाले रूपों का भोजपुरी में काफी प्रचार है, जैसे—हम कल उहाँ जाइब।

'ब' का सम्बन्ध संस्कृत भविष्यत्कालिक कृदंत प्रत्यय 'तव्य' से है, जैसे—चलितव्य>प्रा० चलेअव्व, चलिअव्व>हिं० चलब। 'ब' वाले इन

३२—तेस्सितोरी पुरानी राजस्थानी १३१ पृ० १७०।
३३—वही, १३१ पृ० १७१।
३४—डॉ० उदयनारायण तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य ६२६, पृ० २६।
३५—एवोल्यूशन आफ अवधी ३०५ पृ० २६१।

रूपों का प्रयोग पूर्वा हिन्दी में समापिका क्रियागत होता है। ऊपर दिये गये उदाहरण समापिका क्रियागत हैं।

अन्य कृदन्तज रूप

तात्कालिक कृदत—मध्ययुगीन हिंदी में वर्तमानकालिक कृदतज रूप 'त' का 'तो' करने के पश्चात् 'हिं' या ही जुड़कर तात्कालिक कृदत बनता है। इसके पयात उदाहरण मध्ययुगीन हिन्दी का कृतियों म मिलते हैं—

हिं— सुनतहिं राजा गा मुरझाइ। (जायसी ११।१)
वसुदेव उठे यह सुनतहिं। (सूर० १०।८)

हीं— आवतहीं भइ कौन बिथा री। (सूर० ६६७)
आवतहीं रघुनार निपाता। (मानस)
नाउँ सुनतहीं ह्वै गयो तन औरै मन और। (विहा० २५२)

ही— सुमिरत ही ततकाल कृपानिधि। (सूर० १।१०६)
चौपचाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही। (घनआनद ३५)

अनेक स्थलों पर 'वर्तमानकालिक' कृदतज रूप 'त' ही तात्कालिक कृदत के अथ का द्योतन करते हैं, जैसे—

नामलेत वाको दुख टारयौ। (सूर० १।१४)
बिछुरत दीन दयाल प्रिय तन तृन इव परिहरेउ (मानस)

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त—मध्ययुगीन हिन्दी म वतमानकालिक कृदत रूप 'त', 'तो' से ही इस कृदत की रचना होती है। इस कृदतज रूप से कार्य की अपूर्णता सूचित होती है। रचना की दृष्टि से वर्तमानकालिक और अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदत म कोई अन्तर नहीं होता, उदा०—

कबीर देखत दिन गया। (कबीर ३।३४)
नैन थके सँग जोइतो। (सूर० ४२५७)
जिन्हहिं न सपनेहु खेद बरनत रघुबर बिसद जसु (मानस)

पूर्ण क्रिया द्योतक कृदत—इस कृदतज रूप की रचना मध्ययुगीन हिंदी में धातु के अनन्तर 'ए', 'एँ', न्हें रूप जोड़ने से होती है। भूतकालिक कृदतज स्त्रीलिंग 'इ' वाले रूप भी इसके अन्तर्गत प्रयुक्त मिलते हैं—

ए— धाई सब ब्रजनारि सहज सिंगार किए। (सूर० १०।२४)
धरे सरीर सांत रसु जैसे (मानस)

एँ— राखें राम रजाय रुख हम सब कर हित होइ। (मानस २।२५४)

न्हें— नाचत महा-मुदित मन कीन्हे। (सूर० १०।४)

हिन्दी में सहायक क्रिया के है, आहि, हौ, हसि, अहसि और अहहू, आदि रूप व्यवहृत होते हैं, यथा—

है- कछु काम है। (गोकुल २०।१४)[२६]

आहि- मोटो तू आहि। (सूर० ५।७)
तू को आहि। (वही ६।८)

हौ- तुमही हौ सखि। (सूर० १।१८२)
भले हीं लसत हौ। (घनआनद ५०)

अहसि-हसि- को तू अहसि सत्य कह मोही। (मानस २।१६२)
का अनमन हसि कह हँसि राना। (मानस २।१३)

अहहू- सत्य सील प्रेमरस अहहू। (मानस २।१८१)

मध्यमपुरुष बहुवचन—इस वर्ग में मुख्यता 'हौ' सहायक क्रिया का प्रयोग देखा जाता है, जैसे—तुम चाहित हौ गगन तरैयाँ। (सूर० ७७३)

अन्यपुरुष एकवचन—इस वर्ग के रूपों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। सहायक क्रिया 'होना' के निम्नलिखित रूप इस वर्ग के अर्थ को द्योतित करते हैं[२७]—

अहै- आदि अंत जस गाथा अहै। (जायसी० १।२४)
राखनहार अहै कोउ औरै। (सूर० ७।३)
विदित मति सबकी अहै। (मानस १।२३६)

आह- मेरा पति सिव आह। (सूर० ४।७)

आहि- सिंह दीप आहि, कैलासू। (जायसी० ६।७)
मन तो एकहि आहि। (सूर० १।७६)
परम प्रेम पद्धति जो आहि। (नंद० रूप० १)

आदरार्थ में 'आहि' का 'आहिं' रूप मिलता है—
इनमें को पति आहिं तिहारे। (सूर० ६।४५)

आहै प्रबल सत्रु आहै यह मोर। (सूर० १।२२६)

है- भगति भजन हरि नाव है। (कबीर० २।४)
समदरसी है नाम तिहारो। (सूर० १।२२०)

२६—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २२५ पृ० १०६।

२७—एवोल्यूशन आफ अवधी, पृ० २६०।

हैं प्रभु परम मनोहर ठाउँ। (मानस ३।१३)
असन सो प्रीति मुनी है। (नंद० रास० ७।६)
जब लागी हाय हाय है। (घनआनंद ७)

हैं— हैं आदरार्थ प्रयुक्त होता है, यथा—
प्रभु भक्तवछल हैं। (सूर० १।३२)

है∠हइ— हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाइ। (मानस २।१७४)

अहै∠अहइ— अहइ कुमार मोर लघु भ्राता। (मानस ३।१७)

अहहिं— (आदरार्थ प्रयुक्त) राम अहहिं दशरथ के। (तुलसी राम लला० १२)

अन्यपुरुष बहुवचन— इस वर्ग के अन्तर्गत मध्ययुगीन हिन्दी में 'अहैं' 'आहिं' 'हहिं' 'होहिं' और 'हैं' आदि रूपों का प्रयोग होता है—

अहैं— अहैं जो पदमिनि सिंहल माहाँ। (जायसी० ६।२)
अहैं कुल कुलटा ये दोऊ। (सूर० १३०६)

आहिं, आहीं— ते आहिं वचन बिनु। (सूर० ३५३४)
रिचा स्रुति की आहीं। (वही ११७५)

हहिं— हहिं पुरानि तउ एक नारिव्रत पालक (तुलसी० पार्वती० १०४)

होहिं— सगुन होहिं। (जायसी० २२।१०)
मुकुट न होहिं भूपगुनचारी। (मानस ६।३८)

हैं— इस रूप का मध्ययुगीन हिन्दी में (विशेषकर पश्चिमी हिन्दी-ब्रज आदि में) काफी प्रयोग दिखलाई पड़ता है—
भावी के बस तीनि लोक हैं। (सूर० १।२६४)
अवधि भूत इन्द्रादि इहाँ क्रीडत हैं। (नंद० रास० ३।१)
हैं गुरु संग सुखारी (तुलसी गीता० २।१००)
जतन बुझे हैं। (घनआनंद १८)

उक्त समस्त रूपों का सम्बन्ध संस्कृत अस से है, यथा—

अस्ति > अत्थि > अहइ > अहै > है।
असि > अहसि, अहहु, हहु
अस्मि > अम्हि > अहउ > हौं।

वर्तमान संभावनार्थ—(सामान्य भविष्यत्) मध्ययुगीन हिन्दी में इस वर्ग के अन्तर्गत हौं, होउँ, होहुँ (उ०पु०एक०व०), होहिं (उ०पु०बहु०व०),

होय (म०पु०ए०व०), होहु (म०पु०व०व०), होय, होइ (अ०पु०एकवचन)
होहिं (अ०पु०ब०व०) आदि रूप मिलते हैं[३८]। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

जातें जीवन होइ। (कबीर० ३।४०)
करम जुरे जो होहिं, जोग क्यों फिरि कोउ धारै (नंद०भ्रम०१८)
पाहन हौं तो वही गिरि को। (रस० १)
देशादि के ऊपर आसक्ति न होय (गोकुल० ८।२०)

भूत निश्चयार्थ

इस वर्ग के रूपों में पुरुष की दृष्टि से कोई रूपान्तर नहीं दिखाई पड़ता। वचन और लिंग के अनुसार अवश्य उनमें परिवर्तन पाये जाते हैं। मध्ययुगीन हिन्दी में 'होना' क्रिया के भूत निश्चयार्थ के प्राय निम्नलिखित रूप प्राप्त होते हैं—

भया— थिति पाइ मन थिर भया। (कबीर० ५।२६)
भा— नयन जो देखा कँवल भा। (जायसी० ७।८)
अपनी समुझि साधु सुचि को भा। (मानस० २।२६१)
भो— एतो बड़ो अपराध भो न मन बावो। (तुलसी विनय० ७२)
भौ— वह सुख बहुरि न भौ री। (सूर० ३३७१)
कहा भौ चढ़ाय चाप। (तुलसी गीता० १।६३)
भे (बहुवचनरूप)—भे निरास सब भूप बिलोकत रामहिं (तुलसी जानकी०६७)
भएउ— भएउ फिरीरा। (जायसी० २।१)
भयउ— रुप कै मन भयउ कुभाउ। (सूर० १।२६०)
भए, भये (बहुवचन और आदरार्थ रूप)—
भए दस मास पूरि भइ घरी। (जायसी ३।२)
भए कुमार जबै सब भ्राता (मानस)
भय करुनासिंधु सकर। (तुलसी पार्व०)
भइ— इसका प्रयोग प्राय स्त्रीलिंग एकवचन में होता है—
भइ जग छाँह। (जायसी० २।३)

३८—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २२८ पृ० १०७।

तीनि पैंड भई (सुधि) मारी। (सूर० ८।१४)
सा कुचालि सब कहँ भइ नीकी (मानस २।३।१७)

भई– पापिए पाई चिति भई। (कबी० १।२६)
हिन्दू तुरक्क् ह भई लराइ। (जायसी १।२४)
मुरली भई रानी। (सूर० १३२६)
अपान सुधि भोरी भइ। (मानस १।३२१)

भईं– इन रूपों का प्रयोग [illegible] बहुवचन में होता है—
दासी सहस [illegible] तह भइ। (सूर० ६।३)
उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भईं (तुलसी श्रीकृ० ३२)
भूप भामिनि दोउ भईं सुमगल खानी। (तुलसी० कवि० २।२)

हताऊ–हुतौ– जा ए शान हुतोऊ। सूर० ३६७५)
तहाँ हुतौ एक सुत को अग। (वही, १।२२६)
एक हा जीव हुतौ सुतौ वार्‌यौ (घन० १५)

हुते–हुतीं– हुते का प्रयोग बहुधा पुल्लिग बहुवचन और 'हुतीं' का प्रयोग स्त्रीलिंग बहुवचन के निमित्त होता है—
द्वारपाल जय विजय हुते। (सूर० ३।११)
दिन द्वै जनु औध हुते पहुना"। (तुलसी कवि०)

हे– जाक जोधा हे सौ भाई। (सूर० १,२४)
तब तौ छबि पीवत जीवत हे। (घनआनद १३)
'हे' का प्रयोग बहुधा बहुवचन म होता है।

हो–ही– 'हो' सामान्यभूतकाल (भूतनिश्चयार्थ, पुल्लिग एकवचन तथा 'ही' स्त्रीलिंग एकवचन में प्रयुक्त होता है—
कहा सुदामा के घन हो। (सूर० १।१६)
माता कहि, कहाँ ही प्यारी। (वही, ६७७)

रहा, रहे, रही आदि—

'रहा' प्रायः पुल्लिग एकवचन तथा 'रही' स्त्रीलिंग एकवचन म व्यवहृत होता है। 'रहे' रूप 'पुल्लिग' बहुवचन में प्रयुक्त होता है–'रहा' का प्रयोग प्राय पूर्वी हिन्दी म होता है।

रहा बालि बानर मैं जाना। (मानस ६।२१)
रहे तुम्हहु बल बिपुल बिसाला। (वही ६।६)

'मा' तथा तत्सबंधित रूपों का सम्बन्ध संस्कृत के √भू से माना जाता है। 'हुते' तथा उसके रूपान्तरित रूप हुतो हुतोउ हुती हुतीं आदि का सम्बन्ध संस्कृत के √भू धातु के भूतकालिक कृदन्तज रूप 'भूत' से माना जाता है। 'रहा' 'रहे' 'रही' आदि रूपों की व्युत्पत्ति टर्नर ने 'रहित' शब्द में प्रयुक्त होने वाली 'रह्' धातु से स्वीकार किया है। परन्तु विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'रह' का सम्बन्ध अर्थ की दृष्टि से नहीं ढूँढ़ा जा सकता। इसका सम्बन्ध काल्पनिक रूप 'रहित' से माना जा सकता है।[३९] 'रह' वाले रूप वस्तुत पूर्वी हिन्दी (अवधी इत्यादि) के रूप हैं—

सहायक क्रिया के उक्त रूपों के अतिरिक्त अशार्थ हो, होउ, होंग भविष्य निश्चयाय है हैं, होब आदि रूप भी मिलते हैं। अध्ययन की दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व नहीं है, क्योंकि अन्य क्रियाओं के समानान्तर उनके भी रूप बनते हैं, तथा उनका विवेचन पहले किया जा चुका है।

वाच्य

मध्ययुगीन हिन्दी में तीनों वाच्यों कर्तृ, कर्म और भाववाच्य के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध होते हैं। कर्तृवाच्य में यहाँ पर वर्तमान और भविष्य-काल में अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियायें प्रयुक्त हुई हैं, परन्तु भूतकाल में प्रायः अकर्मक क्रियाओं का ही प्रयोग कर्तृवाच्य के लिए हुआ है—

मन मेरो हरि साथ गयौ। (सूर० १८८८)
पहिराओ राधा जू को सखियाँ सिखावतीं (कवि०)
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। (मानस १।२०)

मध्ययुगीन हिन्दी के कर्मवाच्य वाले रूप विशेष उल्लेखनीय हैं। ऐसे रूप प्रथम तो खड़ीबोली की भाँति 'जाना' क्रिया के संयोग से निर्मित हुए हैं, दूसरे प्रकार के रूप ऐसे हैं, जो प्रत्ययों के संयोग से बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त कर्मवाच्य के अन्य प्रयोग भी उपलब्ध होते हैं। प्रथम प्रकार के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

छबि नहिं जाति बखानी। (सूर १०।१५२)
कहि न जाइ सोभा अनूप बर। (तुलसी श्रीकृष्ण० २१)

३९—एवोल्यूशन आफ अवधी। २६२ पृ० २३७।

संयुक्त क्रियायें

संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग अपभ्रंश और पुरानी हिंदी में होने लगा था। आगे चलकर मध्ययुगीन हिन्दी म इसके प्रचुर प्रयोग मिलने लगते हैं। रूप के विचार से मध्ययुगीन हिन्दी में प्राय निम्नलिखित प्रकार की संयुक्त क्रियाओं का व्यवहार मिलता है—

(अ) क्रियार्थक संज्ञा के योग से बनी हुई—क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप के द्वारा निर्मित तीन प्रकार (आरम्भबोधक, अनुमति बोधक और अवकाशबोधक) की संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग मध्ययुगीन हिंदी की कृतियों म उपलब्ध होता है, जैसे—

आरंभबोधक—कुहुकहिं मोर सोहावन लागा। (जायसी० २।५)
कहन लगे मोहन मैया मैया। (सूर० बाललीला)
लगे कहन हरिकथा रसाला। (मानस)

अनुमतिबोधक–फिरि नहि भूलन देइहि साई (जायसी) ४।३)
खेलन फिरन देव। (ठाकुर)

अवकाशबोधक–को देखै पावै वह नागू। (जायसी० १०।१७)
चलत न देखन पायउँ तोहीं (मानस)
चलत न पावत निगम मग (बिहा०)

क्रियार्थक संज्ञा के साधारण रूप से बनी हुई आवश्यकताबोधक संयुक्त क्रियायें भी मध्ययुगीन हिन्दी म उपलब्ध होती हैं, जैसे—

चाहहिं बेध कीन्ह कंचुकी। (जायसी)
पुरवासी नाहिंन चहत जियौ। (सूर० ९।५६)
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ (मानस० १।२।२२)

(आ) वर्तमानकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई—इस वर्ग के अन्तर्गत मध्ययुगीन हिन्दी में प्राय नित्यताबोधक और निरंतरताबोधक संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग मिलता है, जैसे—

नित्यताबोधक—कबीर कहता जात हूँ। (कबी० २।१)
चितै रहति ज्यों चंद चकोरा। (सूर० १०।३०५)
दरपन देखत जाय। (बिहा० १६१)

निरन्तरताबोधक—पपीहा छन छन रटत रहाव (सूर० भ्रमरगीत)
लपटाति जाति अछेह (बिहा० १)
हृदय बिचारत जात। (मानस० १।४८ क)

(इ) भूतकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई —मध्ययुगीन हिन्दी में मूतकालिक कृदन्त से निर्मित सयुक्त क्रियाओं का प्रचुर प्रयोग हुआ है। वहाँ पर ऐसी क्रियाओं म मुख्यत तत्परता बोधक क्रियाओं का प्रयोग मिलता है, जैसे–

तत्परताबोधक क्रिया–पीछे लागा जाय था। (कबीर १।११)
कह्यो, उहाँ अब गयौ न जाइ (सूर० ४।५)
उड़ी जाति कितहूँ गुड़ी। (विहा० ८६)
चले जात सिव सती समेता। (मानस १।५०)

इच्छाबोधक–कहा कर्यो चाहत। (सूर० भ्रमरगीत)
देखा चहौं जानकी माता (मानस)

(इ) पूर्वकालिक कृदन्त से बनी हुइ –मध्ययुगीन हिन्दी में इस वर्ग के रूप प्रचुर माना म उपलब्ध होते हैं। रूप के विचार से पूर्वकालिक कृदन्त से निर्मित सयुक्त क्रियाओं के बहुधा दो रूप (अवधारणबोधक, शक्तिबोधक) मध्ययुगीन हिन्दी में प्राप्त होते हैं।

अवधारणबोधक–उठना, आना, जाना, पड़ना, रहना, रखना, निकलना आदि ऐसी क्रियायें हैं, जिससे कार्य की निश्चयता सूचित होती है। इनका प्रयोग व्यवहार के अनुसार विविध अर्थों में होता है—

उठना—(इस क्रिया से प्राय अचानकता का बोध होता है।
चमकि उठै तस बनी बतीसी। (जायसी० १०।६)
मोहि देखत कहि उठी। (सूर० भ्रमरगीत)

आना– पारस रूप यहाँ लगि आई (जायसी)
इनके कुल ऐसी चलि आई। (सूर० भ्रमरगीत)
जहि के तहि चलि आये (नंद० रास० १।५८)

जाना– (प्राय कर्मवाच्य और भाववाच्य बनाने म प्रयुक्त) —
लागत ही मैं मिलि गया (कबीर १।७)
मेटि न जाइ लिखी जस होनी (जायसी ३।१)
सो मो सनु कहि जात न कैसे (मानस)
मन-सरोज बढ़ि जाय। (विहा०)

पड़ना– (इसका प्रयोग भी 'जाना' क्रिया की भाँति होता है)।
कलयुगह मस्यूँ लड़ि पड़्या। (कबीर)

अस कछु समुझि परत रघुराया (मानस)
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय (रहीम)

'पड़ना' के इस अर्थ में कभी कभी 'बनना' क्रिया के पश्चात् 'आना' क्रिया का भी प्रयोग मिलता है, जैसे—दरस ईं बनि आवै (सूर० भ्रमरगीत), या बनहीं बनिआवै (नंद० राम० १।२४)।

डालना—(प्रायः इसका प्रयोग सकर्मक क्रियाओं के साथ होता है। इससे बहुधा उग्रता का बोध होता है)—
सूर काढ़ि डारयौ है बज तें दूध माझ की माखी (सूर० भ्रमरगीत)।

रखना— इस क्रिया के अधिक प्रयोग नहीं मिलते—यह विधिना लिखि राखयौ। (सूर० १३०१), होइहि सोइ जो राम रचि राखा (मानस)।

निकलना—इसका भी प्रयोग सीमित मात्रा में मिलता है—
सुत गोद कै भूपति लै निकसे। (तुलसी कवि०)

रहना—इसका प्रयोग प्रायः भूतकालिक कृदंतों से निर्मित कालों में मिलता है। अन्य कालों में इसका प्रयोग साधारणतया अकर्मक क्रियाओं के साथ होता है—
अब मन रामहि ह्वै रह्या। (कबीर, २१६)
रे मन, गोविन्द के ह्वै रहियै। (सूर० ११६२)
तऊ गुड़ी लौं बढ्यौ रहै। (घनआनन्द)

शक्तिबोधक—(ऐसी संयुक्त क्रियाओं का निर्माण 'सकना' क्रिया के योग से होता है)
लूटि सकै तौ लूटियो (कबीर २।२५)
त्रासहि बोलि सकै नहि माता। (जायसी ३।७)
चलि न सकत थकि रहे पथिक सब। (सूर० भ्रमरगीत)
पकरि सकै नहिं ताही (नंद० रास० ५।३५)
ओछे बड़े न ह्वै सकैं। (बिहा० ५३)

(उ) अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त से बनी हुई—इस वर्ग की क्रियायें योग्यता, विवशता तथा आश्चर्य आदि के भाव सूचित करती हैं। अधिकांश ऐसी संयुक्त क्रियाओं का निर्माण 'बनना' क्रिया के योग से हुआ है, यथा—

करतैं निकमत बनत नाहीं। (सूर० १४५३)
कागद पर लिखत न बनत। (विहा० ६६)

(ऊ) पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त के योग से बनी हुई —मध्ययुगीन हिन्दी में इस वर्ग की क्रिया के दो रूप-निरंतरताबोधक, और निश्चय बोधक मिलते हैं।

निरंतरताबोधक-नन्द कौ कर गहे ठाढे। (सूर० ८३७)
निश्चयबोधक-कहे देति यह रावरो सब गुन निन गुनमाल। (विहा०)

पुनरुक्त संयुक्त क्रियायें

संयुक्त क्रियाओं के अन्य रूपों के साथ साथ पुनरुक्त संयुक्त क्रियाओं के भी प्रयोग मिलते हैं, यथा—

आवत-जात चहूँ म लोई। (सूर० १२।४)
लरिका सग खेलत डोलत हैं। (तुलसी० कवि०)
आवत जात न जानियत। (विहा० ३२)

षष्ठ परिच्छेद

खड़ी बोली के क्रिया रूपों का अध्ययन

प्रा० भा० आ० के क्रियारूपों का सम्यक् विवेचन द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है। वहाँ धातुओं को दस गणों में विभाजित किया गया है तथा प्रत्येक गण के रूप भी अलग अलग चलते हैं। क्रियाओं के तीन पुरुष हिंदी में अब भी वर्तमान हैं, परन्तु तीन वचनों के स्थान पर दो वचनों का व्यवहार मध्य भारतीय आर्यभाषा काल से ही देखा जाने लगा। मध्यभारतीय आर्यभाषा काल से ही गण विधान की प्रक्रिया ढीली पड़ गई और प्रायः भ्वादिगणी धातु रूप ही व्यवहृत दिखाई देने लगे। लिंग की संख्या भी तीन के स्थान पर दो शेष रह गई। हिन्दी कालों की संख्या में अवश्य वृद्धि हुई, परन्तु उनके रूप संस्कृत की भाँति जटिल नहीं दिखाई देते। आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों के स्थान पर परस्मैपदी रूपों का व्यवहार आ० भा० आ० में पाया जाता है।

हिन्दी में तिङन्त क्रियाओं की अपेक्षा कृदंत क्रियाओं का प्रचुर प्रयोग मिलता है, जो क्रियाओं के सरलीकरण की प्रवृत्ति का द्योतक है। संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग म०भा०आ० काल में ही होने लगा था। आ०भा०आ० में उसका पूर्ण विकास दिखाई देता है। प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी धातुओं के तीन वर्ग किये जाते हैं—कर्तरि, कर्मणि और भावे प्रयोग। हिन्दी धातुओं का विकास कई स्रोतों से हुआ। कुछ धातुएं ऐसी हैं, जिनका विकास संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की शृंखला से हुआ। कुछ ऐसी धातुएँ हैं जो देशी धातुओं की श्रेणी में रखी जाती हैं। कुछ धातुओं का सीधा संबंध संस्कृत से ही परिलक्षित होता है[1], यथा—सं० पठ् (हिं० पढ़) सं० कृ (हिं० कर)। यही प्रवृत्ति हिन्दी तथा उसकी प्रायः समस्त विभाषाओं—अवधी, ब्रज, बंगला, पंजाबी इत्यादि में देखी जाती है।

१—किशोरीदास वाजपेयी हिन्दी शब्दानुशासन, पृ० ३६०-६१।

हिन्दी धातुओं के मुख्यतया दो रूप पाये जाते हैं—मूल धातुयें और यौगिक धातुयें। हिन्दी की ऐसी क्रियायें जिनकी निष्पत्ति निश्चित या असंदिग्ध होती है, मूल धातुओं के अन्तर्गत आती हैं। 'राम जाता है' में जा + ता (कृदंत) क्रिया के निश्चित रूप को सूचित करता है। 'है' काल की सूचना देता है। अतः कृदंतज क्रियायें 'सिद्ध क्रियाओं' के अन्तर्गत रखी जाती हैं। भूतकालिक अर्थ द्योतित करने वाली क्रियायें भी निश्चित कार्य या घटना को सूचित नहीं करती हैं। हिन्दी में उनका प्रयोग कृदंतज होता है तिङन्तज नहीं। संभावना, विधि, आज्ञा, आशीर्वाद आदि का भाव द्योतित करने वाली क्रियायें सदा अनिश्चित होती हैं, हिन्दी में इनका प्रयोग तिङन्तज होता है, ऐसी धातुओं को यौगिक धातुओं के अन्तर्गत रखा जाता है। संस्कृत व्याकरण में क्रिया के तिङन्त रूपों को यौगिक या 'साध्य' और कृद-न्त रूपों को मूल या 'सिद्ध' की संज्ञा दी जाती है।[२] यहाँ पर कृदंत क्रियायें विधयात्मक प्रयोग होने पर 'साध्य' नहीं होतीं।

ऊपर मूल और यौगिक धातुओं के वर्गों का उल्लेख किया गया है। ऐसी धातुयें जो स्वयं सिद्ध हैं, उनमें विकार लाकर ही विविध रूपों का निर्माण किया जाता है, मूल धातुएँ कहलाता है, यथा—कर, चल। यौगिक धातुओं का निर्माण या तो मूल धातुओं में विकार के द्वारा होता है या धातुओं में विशेष प्रकार के प्रत्यय जोड़कर अथवा ध्वनि संशापद की सहायता से निर्मित होते हैं, जैसे—कर-करवा(ना), चल चलवा (ना)।

हिन्दी का मूल धातुओं के कई रूप पाये जाते हैं। प्रथम प्रकार की मूल धातुयें ऐसी हैं, जो संस्कृत में आई हुई तद्भव सिद्ध धातुयें हैं। ऐसी धातुयें प्रा० भा० आ० से म० भा० आ० में होती हुई हिन्दी में आई हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी तद्भव मूल धातुयें हैं जिनका सीधा सम्बन्ध केवल म० भा० आ० में सर्वप्रथम व्यवहृत धातु रूपों से है। म० भा० आ० में संस्कृत की कई धातुओं के विकरणयुक्त रूपों का प्रयोग धातुवत् देखा जाता है। हिन्दी में भी म० भा० आ० के विकरणयुक्त कुछ धातु रूप दिखाई पड़ जाते हैं[३], यथा—

२—किशोरीदास वाजपेयी हिन्दी शब्दानुशासन, पृ० ४०४ ५।
३—हार्नली-हिन्दी ग्रामर भाग १।

नाच (ना) < प्रा० नचइ < सं० नृत्यति—नृत् + य + ति (य विकरण)

प्र० भा० आ० से आई हुई धातुओं के दो रूप उपलब्ध होते हैं—ऐसी धातुयें जिनका व्यवहार साधारण क्रिया के रूप में होता है, साधारण धातुयें कहलाती हैं,[४] यथा—

कर (ना) ∠ (सं० कृ०), काँप (ना) ∠ म०भा०आ० कम्पइ ∠ सं० कम्पते।

कह(ना) ∠ म०भा०आ० कह (कहेइ) ∠ प्रा०भा आ० कथयति (कथ्) इत्यादि। दूसरे प्रकार की वे धातुयें हैं जो धातु के पूर्व उपसर्ग लगाकर बनायी जाती हैं। ऐसी धातुयें उपसर्गयुक्त धातुयें कहलाती हैं,[५] यथा—

उपज (ना) ∠ प्रा० उप्पज्जइ ∠ सं० उत्पद्यते।

पैठ (ना) ∠ प्रा० पइट्ठइ ∠ सं० प्रविष्ट।

नैठ (ना) ∠ प्रा० उवइट्ठ ∠ सं० उपविष्ट इत्यादि

संस्कृत की कुछ ऐसी प्रेरणार्थक धातुओं का रूप हिन्दी में यौगिक से मूल धातुओं के रूप में हुआ है, जिन्होंने अपने प्रेरणार्थक अर्थ को खो दिया है, यथा—संस्कृत में पठ् से बना हुआ रूप—पाठयति (पढ़ाता है) प्रेरणार्थक है, वहाँ इसका प्रयोग यौगिक धातु के रूप में होता है, परन्तु हिन्दी में 'पढ़ाता है' जैसे रूप सकर्मक है।[६] इसका प्रेरणार्थक रूप 'पढ़वाता है' बनता है। पहले को प्रथम प्रेरणार्थक रूप और दूसरे को द्वितीय प्रेरणार्थक रूप की भी संज्ञा दी जाती है। हिन्दी में इस प्रकार की अनेक धातुयें व्यवहृत मिलती हैं यथा—

उखाड़ (ना) ∠ सं० उत्पाटयति

मार (ना) ∠ सं० मारयति

जला (ना) ∠ सं० ज्वालयति

हिन्दी तथा उसकी विभाषाओं में अनेक स्थलों पर संस्कृत की धातुयें कहीं कहीं तत्सम रूप में कहीं कहीं अर्धतत्सम रूप में व्यवहृत दिखाई देती हैं।[७] मध्ययुगीन हिन्दी में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनका प्रयोग संस्कृत के ही ढर्रे पर हुआ है, उदा०—

४—तिवारी-हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास ३५६ पृ० ४६७।

५—वही, ३५७ पृ० ४७०।

६—तिवारी-हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास ३६१ पृ० ४७३।

७—तिवारी-हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास। ३६१ पृ० ४७२।

अरज् < (√अर्ज), गरज् < √गर्ज, सोभ् < √शोभ
सेव् < √सेव इत्यादि ।

हिन्दी की कुछ मूल धातुयें ऐसी हैं जिनका सीधा सम्बन्ध संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं से स्थापित नहीं किया जा सकता ।[८] ये हिन्दी की अपनी धातुयें हैं, इनकी व्युत्पत्तियाँ भी संभावित ढंग से दी जाती हैं, यथा—

पटक (ना)   फड़क (ना)
लाट (ना)   बटोर (ना)

मूल धातुओं की चर्चा करने के उपरांत यहाँ हम यौगिक धातुओं का अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी में यौगिक धातुओं के-णिजंत (प्रेरणार्थक) नामधातु, संयुक्त एवं प्रत्यय युक्त धातुयें, ध्वन्यात्मक अथवा अनुकार ध्वनित धातुयें, जैसे पाँच रूप उपलब्ध होते हैं।

इस बात का संकेत पहले ही किया जा चुका है कि संस्कृत की कतिपय प्रेरणार्थक धातुओं का प्रयोग प्रेरणार्थक रूप में न होकर हिन्दी में सकर्मक क्रिया रूप में होता है, यथा—'सुनाता है' (सुन), इसका प्रेरणार्थक रूप हिन्दी में 'सुनवाता है' होगा। ऐसे प्रेरणार्थक रूपों का निर्माण निम्नलिखित प्रक्रियाओं के आधार पर होता है—

(अ) मूलधातु के अन्त में वा जोड़ने से—

उठ (ना)—उठवाना,   गिर (ना)—गिरवाना
पढ़ (ना)—पढ़वाना,   सुन (ना)—सुनवाना

(आ) 'ए' या 'ओ' को छोड़कर द्वयक्षरीय धातुओं में आदि व अन्त्य दीर्घ स्वर का ह्रस्व करके 'वा' जोड़ते हैं—

√ओढ़ (ना)   ओढ़वाना (उढ़वाना)
√डूब (ना)   डुबवाना
√जाग (ना)   जगवाना

(इ) एकाक्षरीय धातुओं में दीर्घस्वर को ह्रस्व करके 'ला' अथवा 'लवा' जोड़कर प्रेरणार्थक रूप बनाये जाते हैं—

√खा (ना)   खिलवाना
√पी (ना)   पिलवाना

८—वही, ।३६१ (द) पृ० ४७२।

√छु (ना) छुलवाना
√जी (ना) जिलवाना
√सो (ना) सुलवाना

उक्त अध्ययन के फलस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी में मुख्य रूप से दो प्रेरणार्थक रूपों का व्यवहार होता है–(१) वा और (२) ला।[१] प्रेरणार्थक धातु के इन दोनों रूपों के प्रयोग थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ हिन्दी तथा उसकी विभाषाओं में उपलब्ध होते हैं, जिनके उदाहरण मध्ययुगीन और आधुनिक हिन्दी (परिनिष्ठित हिन्दी) में प्रभूत मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

'वा' वाले रूप –

काहू करतु न जनावत (सूर० ८।४)
त्रिविध भाँति भोजन करवावा (मानस १।२०७)
उत्साह की उमंग जिस प्रकार हाथ पैर चलवाती है।
(चिन्ता० पृ० १०)

'ल' वाले रूप—

कर्म सौन्दर्य के सच्चे उपासक ही सच्चे कहलाते हैं।
(चिन्ता० पृ० १०)

ब्रज और अवधी की कृतियों में 'ल' अथवा 'ला' के बदले 'र' रूप मिलता है।

हाँ तुम्हें दिखराइहौं वह रूप (सूर० ८।१०)
देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड। (मानस १।२०१)

हिन्दी की यौगिक धातुओं का दूसरा वर्ग नामधातु है। संज्ञापद तथा क्रियामूलक विशेषण से क्रियापद बनाने की प्रक्रिया प्रा० भा० आ० काल से ही पाई जाती है। म० भा० आ० काल में नामधातुओं की संख्या में काफी वृद्धि हुई। आ० भा० आ० में तो न केवल प्रा० भा० आ० और म० भा० आ० के नाम धातु प्रयुक्त होते हैं अपितु विदेशी संज्ञा तथा विशेषण शब्दों से नामधातु बनाने का क्रम देखा जाता है, आ०भा०आ०

१—तिवारी–हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, १९५६ पृ० ४६४।

में नामधातु की रचना के लिये 'आ' प्रत्यय का व्यवहार होता है, जिसका सम्बन्ध प्रा० भा० आ० के प्रेरणार्थक (णिजत) 'आय' से है।[10] इस प्रकार हिन्दी म व्यवहृत होने वाला नाम धातुओं को मुख्य रूप से दो वर्गों म विभाजित किया जा सकता है—

(क) प्रा० भा० आ० और म० भा० आ० ने सज्ञा तथा विशेषण पदों से बने तत्सम या अर्धतत्सम रूप—

√अलाप (ना) <स० आलाप

√लुभा (ना) <स० लोभ

√पक (ना) <स० पक्व 7 म० भा० आ० पक्क

√पीट (ना) <स० पिष्ट 7 म० भा० आ० पिट्ठ

(ख, विदेशी सज्ञा तथा विशेषणों स बने हुए रूप—

√गमा (ना) फा० गम + आ

√शमा (ना) फा० शर्म + आ

हिन्दी की यौगिक धातुओं के दूसर वर्ग के अन्तर्गत मिश्रित या सयुक्त एव प्रत्यय युक्त धातुयें आती हैं। ऐसी धातुओं का निमाण धातु से पूर्व सज्ञा, क्रियाजात विशेष्य या कृदत रूप जोड़ने से होता है। यद्यपि धातुओं के योग स भी ऐसी धातुयें निष्पन्न होती ह, परन्तु उनके उदाहरण हिन्दी म (आ०भा०आ० म) कदाचित् ही कहीं उपलब्ध हो जाते हैं।[11] कहदेना, पढ-लेना, सोजाना, उठ बैठना, कर जाना इत्यादि ऐसी धातुयें ह जो प्राय पूर्व कालिक कृदत स निर्मित होती ह।

प्रत्यय युक्त धातुयें मूल अथवा नाम धातुओं मे प्रत्यय जोड़न से निष्पन्न होती हैं। आ०भा०आ० म इस प्रकार की धातुओं के प्रचुर प्रयोग उपलब्ध होते ह—

(अ) 'क' प्रत्यय युक्त (स० कृ) युक्त—

√अटक् (ना) <पा० अट्टो, प्रा० अट्ट <स० आर्त + √कृ

√फूक (ना) <स० स्फुत् या फूत-√कृ इत्यादि।[12]

१०—तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास।३६७ पृ० ४७४।

११—तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास ३७० पृ० ४७५।

१२—वही, ३७१ पृ० ४७६।

(आ)—ट् <स० √वृ म०भा०आ० वट्ट) प्रत्यय युक्त—

√घिसट (ना) <स० घष + वृत्त ।

√चिपट (ना) <प्रा० *चिप्प + वट्ट इत्यादि ।[१३]

(इ)—ड म० भा० आ० ड प्रत्यय युक्त—

√पकड़ (ना) ∠म० भा० आ० *पक्क + ड

√हकार (ना) हाँक (ना) <म० भा० आ० हक्क + ड

∠स० को० √हक्कार -बुलाना, प्रा० हक्कारइ

म० को० हक्कयति-चिल्लाता है' प्रा० हक्कति-हाँकता है, चिल्लाता है इत्यादि[१४]

(ई)—'र' प्रत्यय युक्त—

√पुकार (ना) ∠प्रा० पुक्कारेइ, पोक्वार , पोक्करइ ।

√ठहर (ना, प्रा० भा० आ० *स्तम्भिर स० स्तभित -स्थिर किया हुआ, स्तभायति-स्थिर करता है ।[१५]

(उ)—ल' प्रत्यय युक्त—

√टहल (ना) ने० टहलनु ∠*टहल्ल (स० भ्रमति का विस्तृत रूप)[१६]

√फुसला (ना) गुज० फोसलाव्यु, मरा० फुसलाविणे उ० फुसलाइबा ने० फुसल्याउनु, कु० फुसलुणा ।[१७]

यौगिक धातुओं का चौथा वर्ग अनुकरणमूलक धातुओं का है। ऐसी धातुओं का व्यवहार प्रा० भा० आ० और म० भा० आ० में भी देखा जाता है, परन्तु प्रा० भा० आ० में इस रूपों की संख्या बहुत कम है, जैसे—

१३—वही, ३०१ पृ० ४७६ ।

१४—टर्नर नेपाली डिक्शनरी पृ० ६१८ तथा ६१४ ।
(ति० हि० भा० उ० वि० पृ० ४७६ पर उद्धृत)

१५—वही, पृ० २४१ (हि० भा० उ० वि० पृ० ४७६)

१६—टर्नर : नेपाली डिक्शनरी (ति० हि० भा० उ० वि० पृ० ४७७)

१७—डॉ० तिवारी : हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास ३०१ पृ० ४७७ ।

झकार, गुंजन, कुंजन, । म० भा० आ० में अनुकरणात्मक धातुओं के पर्याप्त प्रयोग मिलते हैं, जैसे—तडफडइ, थरथरइ, धमधमइ इत्यादि ।

अनुकरणात्मक धातुओं को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है—(१) मुख्य अनुकरणात्मक धातुयें । (२) द्वित्व अनुकरणात्मक धातुयें । आ० भा० आ० में दोनों ही रूप उपलब्ध होते हैं ।

मुख्य अनुकरणात्मक धातुयें—

√टप (ना), √फूक (ना) ∠ प्रा० फुक्कद, स० फूत्करोति ।
√छींक (ना), ∠प्रा० छिक्कत – स० को० छिक्का[१८] ।

द्वित्व—

√कटकटा (ना) √खटखटा (ना) इत्यादि ।

हिंदी रचनाओं में संस्कृत शब्दों अथवा धातुओं के तत्सम अथवा अर्धतत्सम रूप प्रयुक्त मिलते हैं—

√गज (ना) ∠तत्सम स० √गर्ज् ।
√गरज (ना) (अर्धतत्सम)
√त्याग (ना) √बरज (ना)

यौगिक धातुओं के चौथे वर्ग के अंतर्गत संदिग्ध व्युत्पत्ति वाली धातुयें आती हैं । म०भा०आ० काल में ऐसी धातुयें जिनका सम्बन्ध संस्कृत धातुओं से स्थापित नहीं किया जा सकता था, वैयाकरणों ने उन्हें देशी धातु की संज्ञा दी । परन्तु आ०भा०आ० काल में ऐसी अनेक धातुयें हिंदी या उसकी विभाषाओं में गृहीत हैं, जिनका सम्बन्ध संस्कृत से न होकर विदेशी भाषाओं की धातुओं से है । ऐसी धातुओं को देशी धातु की संज्ञा नहीं दी जा सकती[१९] । इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं ।

√अट (ना)   √चौंक (ना),   √टाग (ना) इत्यादि ।

इसके अतिरिक्त कुछ पुनरुक्त अनुकरणात्मक धातुयें भी हिंदी में व्यवहृत होती हैं, जिनकी व्युत्पत्ति ठीक रूप से नहीं बतायी जा सकती ।

१८—डॉ० तिवारी हिंदी भाषा का उद्गम और विकास । ३७२ पृ० ४७७ ।

१९— वही, पृ० ४७८-७९ ।

इनमें से कुछ तो पूर्ण पुनरुक्त अनुकरणात्मक धातुयें हैं और कुछ अपूर्ण पुनरुक्त। प्रत्येक के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) पूर्ण पुनरुक्त— √टनटना (ना), √धुकधुका (ना)

(ख) अपूर्ण पुनरुक्त- √हड़बड़ा (ना), √सकपका (ना)

सकर्मक और अकर्मक क्रियायें

हिन्दी में सकर्मक और अकर्मक दो प्रकार की धातुयें पायी जाती हैं। कर्मयुक्त धातुयें सकर्मक और कर्मरहित धातुयें अकर्मक होती हैं। मूल अकर्मक धातु के ह्रस्व स्वर को दीर्घ करके अथवा सिद्ध अकर्मक धातुओं में प्रेरणार्थक प्रत्यय 'आ' जोड़कर सकर्मक धातुयें बनायी जाती हैं जैसे—

मिलना – मिलाना, मरना – मारना

चलना – चलाना, देखना – दिखाना

संस्कृत में क्रियाओं की समस्त अवस्थाओं की सूचना क्रिया के रूपांतर मात्र से ही सूचित होता है परन्तु हिन्दी में इनके लिए सहायक क्रियाओं के विविध रूपों का भी प्रयोग होता है। क्रियाओं के अध्ययन में काल, रीति, पुरुष, लिंग और वचन का भी जिक्र कर देना आवश्यक होता है।

समापिका क्रियायें

सामान्य वर्तमान काल

खड़ी बोली में वर्तमानकालिक कृदंत के त, ता, रूप के साथ स्थिति दर्शक सहकारी क्रिया के वर्तमान काल के रूप जोड़ देने पर सामान्य वर्तमान काल की रचना होती है।[20] इसके रूप निम्नलिखित पद्धति पर निष्पन्न होते हैं—

कर्ता पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१– मैं चलता हूँ	हम चलते हैं।
२– तू चलता है	तुम चलते हो
३– वह चलता है	वे चलते हैं।

कर्ता स्त्रीलिंग

१– मैं चलती हूँ	हम चलती हैं

२०- का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ३८८ पृ० २८

२– तू चलती है　　　　तुम चलती हो
३– वह चलता है　　　　वे चलती हैं।

ब्रजभाषा में भी सामान्य वर्तमानकाल की रचना खड़ीबोली की भाँति वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ स्थिति दर्शक सहकारी क्रिया के सामान्य वर्तमान काल के रूप जोड़ने से होती है। ब्रजभाषा में सामान्य वर्तमान काल के दो रूप मिलते हैं–

१ – मूलकाल, जिसमें पुरुष का अर्थ क्रिया के रूप में संयुक्त रहता है।

२—वर्तमानकालिक कृदन्त से निर्मित, जिसमें पुरुष का अर्थ क्रिया के रूप में सन्निहित नहीं रहता।

खड़ी बोली में केवल दूसरे वर्ग के ही रूपों का प्रयोग उपलब्ध होता है। प्रथम वर्ग के रूपों में ब्रजभाषा में निम्नलिखित रूप उपलब्ध होते हैं[२१]—

	एकवचन	बहुवचन
१–	औं (चलौं), ऊँ (चलूँ)	ए (चलें), अहिं (चलहिं)
२–	ऐ (चलै), अहि (चलहि)	औ (चलौ), अहु (चलहु)
३–	ए (चलै), अहि (चलहि)	ऐं (चलें), अहिं (चलहिं)

ब्रजभाषा में सामान्य वर्तमान काल का दूसरा रूप वर्तमानकालिक कृदन्तों से निर्मित रूप है। यहाँ पर धातुओं के पश्चात् 'त्' प्रत्यय लगाकर इस वर्ग के रूप बनाये जाते हैं[२२]–जैसे–जात्, पढ़त्, चलत्।

आधुनिक ब्रज में लिंग और वचन के कारण इन रूपों में कोई परिवर्तन नहीं दिखलाई देता, केवल स्त्रीलिंग बहुवचन में 'त्' का 'ती' हो जाता है,[२३] जैसे–राम जात है, लरिके पढ़त हैं, नारी जात है, नारियाँ जाती हैं।

आधुनिक अवधी में भी सामान्य वर्तमान काल के उक्त दोनों ही रूप (मूलकाल और वर्तमानकालिक कृदन्त से निर्मित) प्रयुक्त होते हैं[२४]। मूलकाल वाले रूप मुख्यतः निम्नलिखित हैं–

२१—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा।२१९ पृ० ६४।

२२—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २१७ पृ० ६८।

२३—वही, ।२१७ पृ० ६६।

२४—डॉ०बाबूराम सक्सेना एवोल्यूशन आफ अवधी।३०२ पृ० २५०

एकवचन	बहुवचन
१– उँ (चलउँ)	इअइ (चलिअइ)
२– इ (चलइ)	अउ (चलउ)
३– इ (चलइ)	ईं (चलईं)

दूसरे वर्ग के (वर्तमानकालिक कृदन्तों से निर्मित) रूपों में इस काल में मुख्यतया त' वाले रूप उपलब्ध होते हैं। 'त' के स्थान पर कहीं कहीं 'इत' और 'ता' वाले रूप भी उपलब्ध होते हैं[२५] जैसे—

चलत अउँ चलित अउँ, इत्यादि।

भोजपुरी में इस काल में 'त्' और 'ल' वाले रूपों का प्रयोग होता है इसके पश्चात् 'हइ' या 'बाट्' सहायक क्रिया का प्रयोग होता है। 'त्' वाले रूपों में लिंग, वचन व पुरुष का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, केवल सहायक क्रिया के रूपों में विकार पाया जाता है। 'ल' वाले रूपों में विकृति देखी जाती है और उसके साथ सहायक क्रिया नहीं प्रयुक्त होती[२६]—

पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१ जात् बाटी, हइ (जाइला)	जात् बाटीं हईं (जाइला)
२—जात् बाटा, हवा (जाला)	जात् बाटा, हवा (जाला)
३—जात् बाय, हवै (जाला)	जात् बाटैं, हव जालैं)

स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—जात् बाटीं, हइ	जात् बाटीं, हइ
२—जात् बाटू हऊ	जात् बाटू, हऊ
३—जात् बाटीं हईं	जात् बाटीं, हइ

'त्' वाले तथा उसके विकृत रूप हिन्दी की प्रायः समस्त बोलियों में उपलब्ध होते हैं। खड़ीबोली के 'ता' वाले रूप पंजाबी, मराठी में पाये जाते हैं। राजस्थानी की बोलियों, गुजराती तथा गुर्जरी में 'तो' रूप वर्तमान हैं।

---

२५ वही, ।२६६ पृ० २४७।

२६—तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य ५७४।

पूर्वी भाषाओं म 'इन' तथा 'ते' प्रत्यय उपलब्ध होते हैं। पजाबी, लहदा म 'दा' पहाड़ी म 'दो' तथा सिन्धी म 'औंदो' रूप मिलते हैं।

पूर्ण वर्तमान काल

भूतकालिक रूप के साथ सहकारी क्रिया ने सामान्य वतमानकालिक रूप जोड़ने पर पूर्ण वर्तमान काल या आसन्न भूतकाल की रचना होती है।[२७] खड़ी बोली म इस काल के रूप भूतकालिक कृदतज रूपों से ही निमित होते हैं। खड़ी बोली म इस काल के रूप विभिन्न लिंग, पुरुष और वचन म निम्नलिखित ढग से बनते हैं—

कर्ता पुल्लिग

एकवचन	बहुवचन
१—चला हूँ	चले हैं।
२—चला है	चले हो।
३—चला है	चले हैं।

कर्ता स्त्रीलिंग

१—चली हूँ	चली हं
२—चली है	चली हा
३—चली है	चली हं।

ब्रजभाषा म इसके निम्नलिखित रूप होते हैं[२८]—

कर्ता पुल्लिग

एकवचन	बहुवचन
१—चलो, चलूँ, चल्यौ, चल्यो, हौं, हूँ	चले हैं, चल हैं
२—चलो, चलै, चल्यौ, चल्यो, है	चले हो, चलौ हौ
३—चलो, चलै, चल्यौ, चल्यो, है	चले हैं, चलैं हं

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१- चली हौं, हूँ	चली हैं

२७—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण १९८९ पृ० २८५।
२८—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २२४ पृ० १११।

२– चली है	चली हो, हौ
३– चली है	चली हैं

अवधी म इस काल के रूप निम्नलिखित पद्धति पर निष्पन्न होने हैं[२६]।

पुल्लिग

एकवचन	बहुवचन
१– चलेउँ है, चले हौं	चले हन, चलेन है, चले अहीं
२– चले है, चलिसि है	चले हउ, चलेउ हैं
३– चलेस् है, चलिसि ह	चलेन् हैं, चलिन् है

स्त्रीलिग

१– चलिउ हौं, चला हौ	चले अहीं, चली हन
२– चलिस् है, चली है	चलिउ हैं, चली हौ
३– चली है, चलिसि ह	चलिनि है, चली हैं

भोजपुरी म सामान्यतया इस काल के रूप निम्नलिखित ढग पर चलते [३०]–

कर्ता पुल्लिग

एकवचन	बहुवचन
१– चलल हौं, चलल बाना, चलल हों	चलली ह, हइ
२– चलला या चलल् हइस	चलला है।
३– चलल् है	चलले हैं

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१– चलली हैं	चलला हैं
२– चलली या चलल् है	चलल् है
३– चललि है	चलली हैं

२६—सक्सेना एवोल्यूशन आफ अवधी। १७७ पृ० २७८।

३०—तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य, १७८४

सामान्य भूतकाल

खड़ी बोली में सामान्य भूतकाल की रचना के लिये भूतकालिक कृदन्तज रूपों का व्यवहार होता है। इन रूपों की रचना पद्धति से सम्बन्ध में भूतकालिक कृदन्त की चर्चा करते समय इसी अध्याय में आगे विचार किया जायगा। पुरुष, लिंग और वचन की दृष्टि से इनके रूप निम्नलिखित पद्धति पर बनते हैं–

कर्ता-पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१– मैं चला	हम चले
२– तू चला	तुम चले
३– वह चला	वे चले

कर्ता-स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१– मैं चली	हम चलीं
२– तू चली	तुम चलीं
३– वह चली	वे चलीं

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस काल में 'आ' 'ई' रूप क्रमशः पुल्लिंग और स्त्रीलिंग एकवचन तथा 'ए' और 'ईं' रूप क्रमशः पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के बहुवचन के लिये व्यवहृत होते हैं। अवधी में इस काल के लिये सामान्य रूप से विभिन्न भूतकालिक कृदन्त प्रत्ययों का प्रयोग होता है[११]। नीचे उनके उदाहरण दिए जाते हैं–

पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१–एउँ (चलेउँ)	आ (चला)
एहुँ (चलेहुँ)	एन (चलेन)
२–ए (चले)	एउ (चलेउ)
सि (चलसि)	आ (चला)
एह (चलेह)	
३–इसि (चलिसि)	इनि (चलिनि)

११–एवो यूशन आफ अवधी। ३०४ पृ०२६०।

इस् (चलिस्)	एन् (चलेन्)
आ (चला)	ए (चले)
ऐ (चलै)	एँ (चल)

स्त्रीलिंग

१–इउँ (चलिउँ)	इ (चलीं)
२–इस (चलिस्)	ईं (चलीं)
इसि (चलिसि)	
३ ई (चली)	ईं (चलीं)
इसि (चलिसि)	इनि (चलिनि)

आधुनिक ब्रज म सामान्य भूतकाल के रूप धातु के अन्त म 'ओ', 'यो' और 'यौ' जोड़कर बनते है [३२] जैसे–गओ, गयो, सुयौ इत्यादि।

ब्रज म इसके स्त्रीलिंग रूप 'ई' मिलते हैं, जैसे—'गई'

भोजपुरी म इस काल के रूप निम्नलिखित पद्धति पर बनते हैं[३३]—

कर्ता पुल्लिग

एकवचन	बहुवचन
१—चलल , चललों, चलली	चलल् , चललीं
२—चलला, चललिस , चलले	चलल् , चलला
३—चलल्	चलल् , चलल

कर्ता स्त्रीलिंग

१—चलली	चललीं
२—चलल् , चललिस्	चलल्
३—चलली	चललिन्

अपूर्ण भूतकाल

अपूर्ण भूतकाल की रचना के लिय प्रधान क्रिया के वर्तमानकालिक कृदत के साथ सामान्य भूतकाल का रूप जोड़ा जाता है।[३४] इस प्रकार का

३२–धीरेन्द्रवमा ब्रजभाषा।२१६ पृ०१००।

३३—ति ारी भोजपुरी भाषा और साहित्य, ५२८।

३४—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ३८८ पृ० २८५।

प्रयोग लगभग समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में प्राप्त होता है। खड़ी बोली में इसके रूप इस प्रकार बनते हैं—

कर्ता पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलता था	चलते थे
२—चलता था	चलते थे
३—चलता था	चलते थे

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलती थी	चलती थीं
२—चलती थी	चलती थीं
३—चलती थी	चलती थीं

व्रजभाषा म इसके रूप इस प्रकार बनाये जा सकते हैं।

कर्ता पुल्लिंग

१—चलत या चलतु हौ, हो	चलत या चलतु हे, हे
२—चलत या चलतु हौ, हो	चलत या चलतु हे, हें
३—चलत या चलतु हौ, हो	चलत या चलतु हे, हें

कर्ता स्त्रीलिंग

१—चलत या चलतु ही	चलत या चलतु हीं
२—चलत या चलतु ही	चलत या चलतु हीं
३—चलत या चलतु ही	चलत या चलतु हीं।

अवधी में इसके निम्नलिखित रूप बनते हैं[३५]—

कर्ता पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलत् रहेउँ	चलत् रहे, रहा
२—चलत् रहेस्, रहिस्	चलत् रहेउ, रहा
३—चलत् रहेस्, रहिस्, रहा, रहे	चलत् रहेन्, रहिन्, रहे, रहई

३५—एवोल्यूशन आफ अवधी ३२० पृ २७५।

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलत् रहिउँ	चलत् रहीं
२—चलत् रहिस्	चलत् रहीं
३—चलत् रही	चलत रहीं

भोजपुरी में अपूर्ण भूतकाल के निम्नलिखित रूप उपलब्ध होते हैं[३६]—

कर्ता पुल्लिग

१—चलत् रहल् , रहली	चलत् रहल् , रहलीं
२—चलत् रहल् , रहला	चलत् रहला
३—चलत् रहल्	चलत् रहलें

कर्ता स्त्रीलिंग

१—चलत् रहली	चलत् रहलीं
२—चलत् रहलू	चलत् रहलू
३—चलत रहलि	चलत् रहलीं

पूर्ण भूतकाल

भूतकालिक सामान्य क्रिया के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य भूतकाल के रूप जोड़ने पर पूर्ण भूतकाल की रचना होती है[३७]—खड़ी बोली म इसके रूप इस प्रकार बनते हैं।

कर्ता पुल्लिग

एकवचन	बहुवचन
१— चला था	चले थे
२— चला था	चले थे
३— चला था	चले थे

कर्ता स्त्रीलिंग

१— चली थी	चली थीं।

३६—तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य।५७६।

३७—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण।३८८ (३) पृ० २८५।

२– चली थी	चली थीं
३– चली थी	चली थीं

ब्रजभाषा में इसके निम्नलिखित रूप बनते हैं[३८] –

कर्ता पुल्लिंग और स्त्रीलिंग

१–चलो, चल्यौ चल्यो हौ, हो,(ही) चलो, चल्यो, चल्यौ है, हैं, (हीं)
२ चलो, चल्यो, चल्यौ हौ, हो,(ही) चलो, चल्यो, चल्यौ, है, हैं, (हीं)
३–चलो, चल्यो, चल्यौ, हौ, हो,(ही) चलो, चल्यो चल्यौ, है, हैं, (हीं)

अवधी में इसके निम्नलिखित रूप होते हैं[३९]–

कर्ता पुल्लिंग

१– चला रहेउँ	चला रहे, रहा
२– चला रहेस, रहिस्	चला रहेउ, रहा
३– चला रहेस, रहिस्, रहा, रहे	चला रहेन्, रहीं, रहे, रहइ

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चली रहिउँ	चली रहीं
२—चली रहिस्	चली रहीं
३—चली रही	चली रहीं

भोजपुरी में इसका रूप इस प्रकार निष्पन्न होता है[४०]—

कर्ता पुल्लिंग

१—चलल् रहली	चलल् रहलीं
२—चलल् रहल् रहला	चलल् रहल्, रहला
३—चलल् रहल्	चलल् रहलैं

कर्ता स्त्रीलिंग

१—चलल् रहली	चलल् रहलीं

३८—धीरेन्द्र वर्मा–ब्रजभाषा।२३६ पृ० ११२।
३९—सक्सेना एवोल्यूशन आफ अवधी।२६ पृ० २७१
४०—तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य ५८५।

२—चलत् रहत्	चलत [illegible]
२—चलत् रहती	चलत् रहतीं

सामान्य भविष्यत् काल

खड़ी बोली में इस काल में केवल तिङन्त रूप ही मिलता है, कृदन्त नहीं। इस काल की रचना में 'ग' प्रत्यय का व्यवहार होता है। लिंग वचन और पुरुष के अनुसार इस काल के रूपों में परिवर्तन होता है।[४१] नीचे के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा—

कर्ता पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलूँगा	चलेंगे
२—चलेगा	चलोगे
३—चलेगा	चलेंगे

कर्ता स्त्रीलिंग

१—चलूँगी	चलेंगी
२—चलेगी	चलोगी
३—चलेगी	चलेंगी

व्रजभाषा में सामान्य भविष्यत् काल की रचना में दो प्रत्ययों का व्यवहार होता है—'ह' और 'ग'। ये दोनों रूप प्राचीन तथा आधुनिक व्रज में सामान्य रूप से व्यवहृत होते हैं। खड़ी बोली के समान व्रज में भी सामान्य भविष्यत् काल के 'ग' वाले रूपों में लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार विभिन्नता दिखाई देती है। 'ह' वाले रूपों में पुरुष तथा वचन के कारण भिन्नता अवश्य दिखलाई देती है, परन्तु लिंग की दृष्टि से इनके रूप समान हैं।[४२]

उदाहरण—'ग' वाले रूप।

कर्ता पुल्लिंग

१—चलुगो	चलगे

४१—का० प्र० गु० : हिन्दी व्याकरण ३८६ (२) पृ० २७६।
४२—धीरेन्द्र वर्मा व्रजभाषा २१३-१४, पृ० ६६-६७।

२—चलैंगो	चलोगे
३—चलैंगो	चलेंगे

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलुँगी	चलैंगीं
२—चलैगी	चलौगी
३—चलैगी	चलैंगीं

पूर्व तथा दक्षिण के ब्रज प्रदेशों में अनेक स्थानों पर उक्त रूप पाये जाते हैं। 'ग' भविष्य वाले रूप खड़ी बोली और ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य आधुनिक भाषाओं मालवी, मेवाती, गुजरी, पजाबी, बुन्देली, मारवाड़ी तथा मैथिली म भी पाये जाते हैं।[४३]

'ह' भविष्य वाले रूप—ब्रजभाषा का यह रूप सामान्यतया पूर्वी ब्रज प्रदेशों म उपलब्ध होता है। ये रूप निम्नलिखित पद्धति पर बनते हैं—

कर्ता पुल्लिंग या स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलिहौं	चलिहैं
२—चलिहै	चलिहौ
३—चलिहै	चलिहैं

अवधी म इस काल के लिए प्राय 'ब' और 'ह' रूप का व्यवहार देखा जाता है—

कर्ता पुल्लिंग या स्त्रीलिंग

१—चलबूँ, चलिहौं	चलब, चलिब
२—चलव, चलवेस्, चलिहै	चलवा, चलिहौ
३—चले, चलिहै	चलिहैं।

भोजपुरी म भी अवधी के समान 'ब' तथा 'ह' वाले रूपों का प्रयोग सामान्य भविष्यत् काल के अर्थ में होता है,[४४] जैसे-हम घर जाइब-मैं घर

४३—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २१३ पृ० ६७।

४४—तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य।५७७

जाऊ गा। उ पोथी पढ़िहैं-वे पोथा पढ़ेंग। 'ह' वाले रूपों का प्रयोग पूर्वी सीमा पर ब्रजप्रदेश के कुछ जनपदों में भी देखा जाता है, जैसे हम चलिह।

'ह' भविष्य वाले रूप बुन्देली तथा मारवाड़ी में वैकल्पिक रूप से व्यवहृत होते हैं। गुजराती, जयपुरी, सिन्धी तथा लहंदा में इस काल के लिये 'स' प्रत्यय का व्यवहार होता है[४५], जैसे-पढ़िसि, चलिसि, लिखिसि इत्यादि। 'स' मूलक भविष्यत् के रूपों का व्यवहार अपभ्रंश के 'स' भविष्यत् के रूपों के आधार पर हुए हैं-करीसु (हेम० ४ ३६६।४,) पावीसु (वही)।

संभाव्य वर्तमानकाल

क्रिया के वर्तमानकालिक रूप के साथ विकार द्योतक सहकारी क्रिया के संभाव्य भविष्यत् काल के रूप जुड़ने पर संभाव्य वर्तमानकाल बनता है[४६]। खड़ी बोली में यह निम्नलिखित रूपों में व्यवहृत होता है।

कर्ता पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलता होऊं	चलते हों
२—चलता हो	चलते हो
३—चलता हो	चलते हों

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलती होऊँ	चलती हों
२—चलती हो	चलती हो, होओ
३—चलती हो	चलती हों

ब्रजभाषा तथा सम्बद्ध बोलियों में इस काल के रूपों का अधिक प्रचार नहीं है। ऐसे रूप ब्रजभाषा में निम्नलिखित ढंग से बनाये जा सकते हैं—

कर्ता पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलत् होउँ, होऊँ	चलत् होंय

४५—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा।२१४ पृ० ६८।

४६—का०प्र० गु० हिंदी व्याकरण।१८६ (१) पृ० २७८।

२—चलत् होय, चलत् होऊ   चलत् होउ
३—चलत् होय, होइ   चलत् होयँ (चलता होयँ स्त्री०)

भोजपुरी में सभाव्य वर्तमानकाल के रूप निम्नलिखित आधार पर बनते हैं—

कर्ता पुल्लिंग या स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चलत् होइ, होखीं	चलत होइ, होईजा, होखीं
२—चलत् होय, होखु	चलत होय, होलसन्हि
३—चलत् हो	चलत हों, होखो

सभाव्य भूतकाल

क्रिया के भूतकालिक रूप के साथ सहकारी क्रिया के सभाव्य भविष्यत्-काल के रूप जोड़ने पर सभाव्य भूतकाल की रचना होती है[४७]। खड़ी बोली में इसके निम्नलिखित रूप बनते हैं—

कर्ता पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चला होऊ	चले हों
२—चला हो	चले होओ
३—चला हो	चले हों

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चली होउँ	चली हों
२—चली हो	चली हो
३—चला हो	चली हो

व्रजभाषा में इस काल के निम्नलिखित रूप बन सकते हैं—

कर्ता पुल्लिंग

१—चलो, चल्या, चल्यौ, होऊँ	चल होय

४७—का०प्र०गु० हिन्दी व्याकरण।३८९ (४) पृ० २८५।

२—चलो, चल्यो, चल्यौ, होय
होवै, होहिं — चले हो।
३—चलो, चल्यो, चल्यौ, होय,
होवै, होहिं — चले होयँ

कर्ता स्त्रीलिंग

१—चली होऊ — चला हायँ
२—चली होय, होवे, होहिं — चला हो
३—चली हो, होवे, होहिं — चली होंय

अवधी म समान्य भूतकाल क रूप निम्नलिखित प्रयय जोड़कर बनते हैं[४८]—

कर्ता पुल्लिंग

१—तेउँ (चलतेउँ) — इत् (चलित्)
२—तेस्, तिस (चलतेस्, चलतिस्) — तेहु तेउ (चलतेहु, चलतेउ)
३—त् (चलत्) — तेन्, तिन् (चलतेन्, चलतिन्)

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—तिउँ (चलतिउ)	इत् (चलित्)
२—*तिस् (चलतिस्)*	*तिन् (चलतिन्)*
३—इत् (चलित्)	तिन् (चलतिन्)

आदर्श भोजपुरी म इसके निम्नलिखित रूप उपलब्ध होते हैं[४९]—

एकवचन	बहुवचन
१—हम चलल् होइ, होखीं	हमन् (नि) का चलल् होइँजा
१—तूँ, तैं, चलल, होय, होखु	तोहन (नि) का चलल होखसिह
३—उ चलल हो	उ लोग चलल् हो, होखो

४८—सक्सेना : एवोल्यूशन आफ अवधी ३१५ पृ० २७२।
तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० २८०।

४९—तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य ५६३।

सभाव्य भविष्यत्काल

खड़ी बोली में सामान्य भविष्यत्काल के 'ग' प्रत्यय के निकालने के पश्चात् क्रिया का जो रूप शेष बचता है उस समाव्य भविष्यत् काल की सज्ञा दी जाती है,[५०] जैसे—जाऊँगा—गा = जाऊँ, जायगा —गा = जाय, पढ़ोगे—गा = पढ़ा इत्यादि। ब्रजभाषा, अवधी आदि विभाषाओं में इस काल क रूपों का प्रचार प्राय कम है। वहाँ पर प्राय क्रिया के सामान्य वर्तमानकालिक तिङन्तज रूपों क द्वारा ही इस काल क अर्थ सूचित होते हैं।

संदिग्ध वर्तमानकाल

सदिग्ध वतमानकाल की रचना वर्तमानकालिक कृदत क साथ सहकारी क्रिया के सामान्य भविष्यत् के रूप जोड़ने से होती है,[५१] जैसे—मैं पढ़ता होऊँगा, वे पढ़ते होंगे, वह पढ़ती होगी। वतमानकालिक कृदत के साथ सहायक क्रिया के निम्नलिखित रूप जुड़ते हैं—

कर्ता पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१—होऊँगा (ब्र० होऊँगो, होंगो, अव०, भो० होइब, रहवि)	होंगे (ब्र० होंगे, अव०, भो०होइब, रहवि)
२—होगा (ब्र०होयगो,होगो, अव०,भो० होब, रहब)	होगे (ब्र० होउगे, होगे, अ०, भो० होना, रहब)
३—होगा (ब्र०होयगो,होगो,अव०, भो होइब, होइहैं, रहवि)	होंगे (ब्र० होंग, अव०,भो० होइहैं, रहवि)

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—होऊँगी (ब्र० होऊँगी, होंगा, अव०, भो० होइब)	होंगी (ब्र०होंगी, अव०,भो०रहनि)
२—होगी (ब्र० होयगी, होगी, अव०, भो० रहवि, रहिब्)	होगी (ब्र० होउगी, होगी, अव० रहवि, भो० रहिव्)

५०—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ३८६ (१) पृ० २७८।
५१—वही, ३८८ (५) पृ० २८५।

३—होगी (ब्र० होयगी, होगो, अव० रहबि, भो० रहिबी)	होंगी (ब्र० होंगा, अव० रहिहैं, भो० रहिबीं)

सदिग्ध भूतकाल

क्रिया के भूतकालिक रूप के साथ सहकारी निया के सामान्य भविष्यत् काल के रूप जोड़ने पर संदिग्ध भूतकाल की रचना होती है।[५२] इसके रूप निम्नलिखित पद्धति पर बनते हैं—

कर्ता पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१—चला होऊगा (ब्र चल्यो होऊगो, होंगो, अव० चलेउ, होइब, रहबि, भो० चलल होरा, रहब)	चले होंगे (ब्र०चले होंगे, अ० चलेउ होइब, रहबि, भो० चलल होइब)
२ चला होगा (ब्र०चल्यो होयगो, होगो, अव० चलेउ होब, रहब, भो० चलल होब, रहब)	चले होगे (ब्र० चले होउगे, होगे, अव० चलेहु होब, रहब)
३—चला होगा (ब्र० चल्या होयगो, होगो, अव०चलेउ, चलिह, होइहै, रहनि, चलल होइहै, होई)	चले होंगे (ब्र०चले होंगे अव०, भो० चल, चलल्, चलेउ होइहैं, भो० चलल् होइहैं।

कर्ता स्त्रीलिंग

१—चली होऊगी (ब्र०चली होऊँगी होंगी, अव० चली होइब, भो० चलल होइब, रहबि)	चली होंगी (ब्र० चली होंगी, अव चलीं, चलल रहबि, होइब, भो० चलल रहबि जा)
२—चली होगी (ब्र० चली होयगी, होगी अव० भो० चललि, रहबि)	चली होगी (ब्र चली होउगी अव० भो० चलल रहबि)
३—चली होगी (ब्र०चली होयगी, अव०, भो० चलल, रहनि)	चली होंगी (ब्र० चली होंगी, अव०, भो० चलल होइहैं, रहनि)

५२—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण, ३८६ (५) पृ० २८५।

प्रत्यक्ष विधि काल

रचना की दृष्टि से प्रत्यक्ष विधि काल के रूपों का निर्माण सभाव्य भविष्यत् काल क समान होता है, केवल मध्यम पुरुष एकवचन के रूपों में कभी कभी थोड़ी भिन्नता दिखाई देती है। जहाँ सभाव्य भविष्यत् काल म उक्त पुरुष और वचन म 'ए' प्रत्यय का व्यवहार होता है, वहीं प्रत्यक्ष विधि काल में क्रिया के शून्य रूप का भी प्रयोग होता है[४३]। इस प्रकार प्रत्यक्ष विधि काल में निम्नलिखित प्रत्यय जोड़ जाते हैं—

एकवचन	बहुवचन
१—ऊँ (पदूँ), ब्र० औं (पढ़ौं), ऊँ (पढ़ूँ), अव० अउँ (पढ़उँ), ओं (पढ़ों)	एँ (पढ़ें), ब्र० ऐं (पढ़ैं)
२—शून्य या ए (पढ़, पढ़े), ब्र० शून्य (पढ़), उ (पढ़उ), इ (पढ़इ), हि (पढ़हि), अव० उ (पढ़उ), अ (पढ़) असि (पढ़सि), अहि (पढ़हि)	ओ, (पढ़ो) ब्र० औ (पढ़ौ), अव० अहु (पढ़हु), ओ (पढ़ो)
३—ए (पढ़े) ब्र० ऐ (पढ़ै), अव० औ (पढ़ौ) अउ (पढ़उ), अइ (पढ़इ)	एं (पढ़ें), ब्र० ऐं (पढ़ैं) अव० अहिं (पढ़हिं)

आदर सूचक वाक्यों म 'इए' प्रत्यय का व्यवहार होता है, जैसे-कीजिए, बोलिए इत्यादि।

परोक्षविधि काल

इस काल के रूपों का प्रयोग केवल मध्यम पुरुष में मिलता है। इसम प्राय प्रत्यक्ष विधि काल या सभाव्य भविष्यत् काल के मध्यम पुरुष एकवचन *वाले रूपों का प्रयोग दोनों वचनों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त* इस काल म नियार्थक सज्ञावत् रूप भी उपलब्ध होते हैं[४४] यथा—तुम वहाँ मत जाना। इस लता को मर हा समान गिनियो। (शकु०)

४३—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ३८६ (३) पृ० २७१।

४४- वही, (४) पृ० २८०।

सामान्य सकेतार्थ काल

क्रिया के वतमानकालिक रूप को पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार बदलने से सामान्य सक्तार्थ काल की रचना होती है।[५५] इसके साथ सहायक क्रिया का सवथा अभाव होता है। इस काल के लिए प्राय उन्हीं प्रत्ययों का व्यवहार होता है जो सामान्य वतमानकाल के अर्थ द्योतन के लिए प्रयुक्त होते हैं, जैसे—यदि वह पढ़ता तो उत्तीर्ण हो जाता। यदि आप यहाँ आते तो मैं अवश्य मिलता।

सामान्य सकेताथ काल के रूप लगभग समस्त आधुनिक आय भाषाओं में समान पद्धति पर निष्पन्न होते हैं।

अपूर्ण सकेतार्थ काल

क्रिया के वतमानकालिक रूप के साथ सहायक क्रिया के सामान्य सकेतार्थ काल के रूप जोड़ने पर अपूर्ण सकेताथ काल की रचना होती है,[५६] जैसे—यदि हम न पढे होते तो हमारी क्या दशा होती। अपूर्ण सकेताथ काल के रूप निम्नलिखित आधार पर बनते हैं—

कर्ता पुल्लिंग

एकवचन	बहुवचन
१—मैं चलता होता	हम चलते होते
२—तू चलता होता	तुम चलते होते
३—वह चलता होता	वे चलते होते।

कर्ता स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—मैं चलती होती	हम चलती होतीं।
२—तू चलती होती	तुम चलती होतीं
३—वह चलती होती	वे चलती होतीं

इस काल का प्रयोग बहुधा कम होता है। इसके स्थान पर प्रायः सामान्य सकताथ काल का प्रयोग किया जाता है।

५५—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ३८८ (१) पृ० २८४।

५६—वही, ३८८ (६) पृ० २८५।

पूर्ण संकेतार्थकाल

क्रिया के भूतकालिक रूप के साथ सहायक क्रिया के सामान्य संकेतार्थ काल के रूप लगाने से पूर्ण संकेतार्थ काल की रचना होती है,[५७] जैसे—यदि तू एक बार भी इस पुस्तक को पढ़ा होता तो तुम्हारी ऐसी दशा न होता। इस काल के रूप निम्नलिखित पद्धति पर बनते हैं—

कर्ता पुल्लिङ्ग

एकवचन	बहुवचन
१—चला होता	चले होते
२—चला होता	चले होते
३—चला होता	चले होते

कर्ता स्त्रीलिंग

१—चली होती	चली होतीं
२—चली होती	चली होतीं
३—चली होती	चली होतीं

ब्रजभाषा, अवधी और भोजपुरी आदि बोलियों में इस काल के रूपों का प्रयोग बहुत कम होता है। उपर्युक्त पद्धति के आधार पर उनकी रचना की जा सकती है।

वाच्य

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में तीन वाच्य उपलब्ध होते हैं-कर्तृ, कर्म और भाववाच्य। जब वाक्य में क्रिया का रूपान्तर कर्ता के अनुसार होता है तो क्रिया कर्तृवाच्य में रहती है और कर्म के अनुसार रूप ग्रहण करने पर कर्मवाच्य की संज्ञा प्राप्त करती है। क्रिया का ऐसा रूपान्तर जिसमें कर्ता अथवा कर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अपितु वह स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयुक्त होता है, भाववाच्य कहलाता है।

हिन्दी तिङन्तज और कृदतज क्रियाओं के वाच्य रूपों में पर्याप्त भिन्नता दिखलाई पड़ती है। तिङन्तज और कृदतज क्रिया के दोनों रूपों में कर्तृ-

---

५७— का० प्रा० गु० हिन्दी व्याकरण २८६ (६) पृ० २८६।

वाच्य के अन्तर्गत क्रिया के वचन प्रायः कर्ता के अनुसार ही चलते हैं, जैसे—लड़का घर जाता है, लड़के घर जाते हैं, इत्यादि।

हिन्दी में वर्तमान काल की क्रियायें प्राय कर्तृवाच्य में ही आती हैं परन्तु ऐसी क्रियायें शक्ति और निषेध के अर्थ म भाववाच्य तथा कर्मवाच्य म भी प्रयुक्त होती हैं,[४८] जैसे—मुझसे पुस्तक पढी नहीं जाती। तुमसे चला नहीं जाता।

हिन्दी म भविष्यत् काल की क्रियायें भी सदा कर्तृवाच्य में ही आती हैं,[४९] जैसे—मैं पुस्तक पढ़ूँगा। परन्तु शक्ति और निषेध के अर्थ म यहाँ भी ये भाववाच्य म व्यवहृत होती हैं, यथा—मुझसे रहा नहीं जायगा।

संस्कृत के कर्मणि प्रयोग का हिन्दी के सकर्मक क्रिया के रूपों से काफी सम्बन्ध है, जैसे—

राम ने रोटी खायी। (हिन्दी)
रामेण रोटिका खादिता। (संस्कृत)

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं म भूतकालिक क्रियाओं के तीनों प्रयोग (कर्तरि, कर्मणि और भावे प्रयोग) दिखलाई पड़ते हैं। अकर्मक क्रियायें कर्तरि प्रयोग के अन्तर्गत और सकर्मक क्रियायें कर्मणि प्रयोग म आती हैं। कर्तरि प्रयोग में क्रिया कर्ता के विशेषणवत् प्रयुक्त होती है और वह कर्ता की विशेषता सूचित करता है। कर्मणि प्रयोग म सकर्मक क्रिया के कर्म के विशेषण का काम करती है। भावे प्रयोग म क्रिया का स्वतन्त्र प्रयोग होता है जैसे—

हि० वह चला, ब्र० सो चल्यौ सं० तत् चलितं । (कर्तरि प्रयोग)
हि० उसने पुस्तक पढ़ी, ब्र० सो पुस्तक पढ़यौ, सं० तेन पुस्तकं पठितम् (कर्मणि प्रयोग)।

हि० मुझसे यह कहा नहीं जाता, ब्र० मोसो यह कह्यौ न जाइ, सं० मया इदं न कथ्यते। (भावे प्रयोग)
मुझसे चला नहीं जाता, ब्र० मोसो चल्यो न जाइ, सं० मया न चल्यते (गम्यते) (भावे प्रयोग)।

४८—किशोरीदास वाजपेयी—हिन्दी शब्दानुशासन पृ० ४१०।
४९—वही पृ० ४१०।

कृन्तज रूप

क्रियार्थक संज्ञा

खड़ी बोली में धातु के अन्त में 'ना' जोड़ने से क्रियार्थक संज्ञा की रचना होती है। क्रियार्थक संज्ञा केवल पुल्लिंग और एकवचन में प्रयुक्त होती है और संबंध कारक को छोड़कर शेष सभी कारकों में इसकी कारक रचना आकारान्त पुल्लिंग के समान होती है।[६०] क्रियार्थक संज्ञा के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

बर्बर हूणों से बचना कठिन है। (स्क०)
नाहक उस लड़के की जान लेना क्यों चाहते हो। (सिन्दू०)
सब मेरी गुलामी करने को तैयार हैं। (गोदान)
इसीलिए युवराज को वहाँ भेजने का मेरा अनुरोध था। (स्क०)
है लाभकारक रीति शव के गाड़ने से दाह की। (भारत०)

ब्रजभाषा में क्रियार्थक संज्ञा के दो रूप प्राप्त होते हैं—

(१) 'ब' वाले रूप, (२) 'न' वाले रूप। इन दोनों के मूल और विकृत दोनों रूप पाये जाते हैं। पूर्वी ब्रज प्रदेश और कभी कभी पश्चिमी और दक्षिणी ब्रज प्रदेश में धातुओं के अन्त में 'नो' प्रत्यय लगाकर क्रियार्थक संज्ञा के मूलरूप की रचना होती है,[६१] जैसे पढ़नो, चलनो, रहनो, देखनो, इत्यादि।

पश्चिमी ब्रज प्रदेश में 'बौ' और दक्षिणी ब्रज प्रदेश में 'बो' का प्रयोग धातु के पूर्वकालिक रूप के आगे करके क्रियार्थक संज्ञा के रूप बनाये जाते हैं,[६२] यथा—चलिबौ, करिबौ, पढ़िबो, लिखिबो, देखिबो इत्यादि।

यजान्त धातुओं में 'नो' रूप के स्थान पर ब्रज में 'अन' जोड़कर विकृत रूप बनते हैं, जैसे—पढ़न, देखन, चलन इत्यादि। 'आ' और 'ए' में अन्त होने वाली धातुओं में तथा सहायक क्रिया 'हो' में केवल न जोड़ा जाता है,[६३] जैसे—खान, पान, जान, लेन, देन, होन इत्यादि।

ब्रजभाषा में इकारान्त धातुओं में क्रियार्थक संज्ञा की रचना के लिए पूर्व

६०—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण, ३७२ पृ० १७१।
६१—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २२० पृ० १०१।
६२—वही २२०, पृ० १०२।
६३—वही,

स्वर को ह्रस्व कर दिया जाता है, जैसे—पिअन, सिअन, पिअन। सहायक क्रिया 'हो' को छोड़कर अन्य ओकारान्त धातुओं म 'उन' प्रत्यय का व्यवहार होता है,[६४] जैसे—सोउन, मोउन, रोउन, लोउन इत्यादि।

व्रजभाषा के जिन प्रदेशों में 'व' मूल रूप लगाकर क्रियार्थक सज्ञा की रचना होती है उस क्षेत्र में पूवकालिक कृदत व पश्चात् 'वे' अथवा 'वै' लगाकर भी इसके विकृत रूप बनाये जाते हैं,[६५] यथा—चलिवे, सोइवे, जाइवे, पढिव, रहिवै, खाइवै इत्यादि।

अवधी म क्रियार्थक सज्ञा के लिए 'व' रूप का प्रयोग होता है, यथा—बु—चढ़बु, लिखबु, खेलबु, चलबु, जागबु, सोइबु इत्यादि। वबु-पढ़ावबु, उबु—रोउबु, लुटाउबु आदि। इसके अतिरिक्त अवधी में 'इ' वाले रूपों का भी प्रयोग क्रियाथक सज्ञा के अर्थ के द्योतन के लिये होता है, यथा—पढ़इ, लिखइ, खाइ, सोइ आदि, उदा०—उनका पढ़इ से का मतलब उनके पढ़ने से क्या लाभ[६६]

भोजपुरी म क्रियार्थक सज्ञा के निम्नलिखित रूपों का प्रयोग किया जाता है[६७]—

१—अन, अना, ना, अनि, नि, प्रत्यय युक्त शब्दों द्वारा-इन प्रत्ययों से युक्त सभी क्रियाथक सज्ञायें मैथिली, मगही, वगला तथा असमिया में प्राप्त होती हैं। वगला तथा असमिया का 'अना' प्रत्यय ही खड़ी बोली में 'ना' व्रजभाषा म 'नो' तथा पजाबी म 'णा' हो गया है।

२—ऐसे अकारात सज्ञा पद जिनमें अकार का लोप हो गया है किन्तु आधुनिक व्यजनान्त धातुओं में किसी समय वतमान थे, जैसे—देख, मार, घर इत्यादि। इसका स्त्रीलिंग 'रूप 'ई' है, जैसे-बोली, घेरी, भरी आदि।

३—'इ' प्रत्यय युक्त सज्ञा पद—जैसे, देखि, सुनि, चलि इत्यादि। कर्ताकारक में 'इ' का लोप हो जाता है, जैसे—मार भइल, किन्तु

६४—वही।
६५—वही।
६६—सक्सेना एवोल्यूशन आफ अवधी ३३६ पृ० २८३।
६७—तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य ६४२।

अन्य स्थलों एव सयुक्त पदों में 'इ' का प्रयोग होता है, जैसे—मारि पीटि भइल।

४—'अल्' युक्त सज्ञा पद—यह रूप भोजपुरी, मैथिली, और मगही म अधिक प्रचलित है, जैसे—पढ़ल्, लिखल्, चलल् इत्यादि। इसका सम्बन्ध *अल्ल प्रत्यय* से जोड़ा जाता है—चलिअ+अल्ल <चलितम्। बगला तथा असमिया म इसके समान ही 'इल' *प्रत्यय लगता है।*

आधुनिक भोजपुरी में 'ब' प्रत्यय (चलब) के प्रयोग का प्रचलन कम होता जा रहा है। इसका स्थान 'अल्' *प्रत्यय लेता जा रहा है।*

क्रियार्थक सज्ञा के 'न' वाल रूपों का व्यवहार पश्चिमी हिन्दी की बोलियों मालवी, निमाड़ी, पहाड़ी बोलियों तथा उत्तरी पश्चिमी भाषाओं में होता है। 'ब' रूप का प्रयोग राजस्थानी की बोलियों तथा हिन्दी की पूर्वी बोलियों में भी देखा जाता है।[६८]

वतमानकालिक कृदत

परिनिष्ठित हिन्दी (खड़ी बोली) में धातु के अन्त में 'ता' जोड़ने से वर्तमानकालिक कृदत बनता है।[६९] यह वाक्य में विशेषण के समान प्रयुक्त होता है, किंतु आजकल हिन्दी तथा उसकी सम्बद्ध बोलियों म काल-रचना म भी इसका प्रचुर प्रयोग देखा जाता है। परिनिष्ठित हिन्दी म तो वतमान काल में केवल कृदतज रूपों का ही व्यवहार होता है, तिङन्तज रूप ब्रज, अवधी आदि विभाषाओं में दिखाइ देते हैं, यथा—

वह विद्यालय जाता है (काल रचनागत)
क्रोध से तिलमिलाता हुआ अत्याचारी (चिता०) } विशेषणवत्
आकाश म खेलती हुई कोकिल (स्क०)

ब्रजभाषा में मुख्य रूप से 'त' या 'त्' प्रत्यय धातु के पश्चात् लगाने से वतमानकालिक कृदत को रचना होती है। आधुनिक ब्रज में विशेषतया स्वरान्त धातुओं में 'त्' प्रत्यय (जात्, खात्) लगाकर तथा व्यजनान्त धातुओं में 'त' प्रत्यय का प्रयोग कर वतमानकालिक कृदत के रूप बनाये जाते हैं,[७०] *यथा—चलत, रहत, पढ़त इत्यादि।*

६८—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २२०, पृ० १०३।
६९—का० प्र० गु० हिंदी व्याकरण, ३७४, पृ० २७२।
७०—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २१७ पृ० ६६।

पश्चिमी ब्रज प्रदेशों म साधारणतया 'तु' प्रत्यय (चलतु, रहतु) दक्षिणी ब्रज प्रदेश के कुछ जनपदों म 'तो' प्रत्यय (चलतो, पढ़तो) तथा 'तौ' प्रत्यय (पढ़तौ, चलतौ) का प्रयोग करते हैं। पूर्वी ब्रज प्रदेश के कुछ प्रदेशों में व्यजनान्त धातुओं के बाद 'अत' (चलत) और स्वरान्त धातुओं के पश्चात् 'त' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है,[७१] जैसे–जात, खात इत्यादि।

अवधी में 'त्' 'इत्' और 'ता' प्रत्यय धातु के अन्त में लगा करके वतमानकालिक कृदन्त की रचना की जाती है,[७२] जैसे –देखत्, देखित्, देखता इत्यादि।

भोजपुरी में 'अत्' प्रत्यय के सयोग से वर्तमानकालिक कृदन्त बनता है,[७३] जैसे पढ़त्, देखत् इत्यादि।

'अत' अथवा 'अतु' प्रत्यय वाले वर्तमानकालिक कृदन्त का प्रयोग प्राय हिन्दी की समस्त बोलियों में उपलब्ध होता है। पजाबी, खड़ीबोली, मराठी तथा भोजपुरी में 'ता' रूप पाया जाता है। राजस्थानी की बोलियों म 'तो' (पढ़तो) रूप का प्रचार है। बगला म अन्त', 'इते', उड़िया में 'अन्त' तथा असमिया में 'ओत' प्रत्यय का व्यवहार होता है। पजाबी तथा पहाड़ी बोलियों म 'ता' का 'दा हो जाता है[७४] जैसे–पढ़दा (पजाबी), पढ़दो (पहाड़ी)।

भूतकालिक कृदन्त

खड़ीबोली म भूतकालिक कृदन्त बनाने के लिए व्यजनान्त धातु के अन्त म आ' जोड़ा जाता है, जैसे –

√मिल,	चला	√देख	देखा
√मर	मरा	√पढ़	पढ़ा

(क) यदि धातु के अन्त में आ', 'ए', 'वा', 'ओ' इत्यादि हो तो धातु के अन्त म 'य' कर दिया जाता है, यथा –

√पा	पाया	√गे	गेया
√खा	खाया	√कटवा	कटवाया

७१ धारेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २१०, पृ० ८१।
७२ एवोल्यूशन आफ अवधी २६६ पृ० २४७।
७३ तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य।
७४ धारेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २१०।

√रो रोया √सो सोया

धातु के अन्त में 'ई' होने पर उसे ह्रस्व कर दिया जाता है, यथा—

√सी सिया √पी पिया

√जी जिया

(ख) ऊकारान्त धातुओं में 'ऊ' को ह्रस्व करके उसके आगे 'आ' लगा दिया जाता है, यथा—

√चू चुआ √छू छुआ

(ग) कुछ भूतकालिक कृदत नियम के अपवाद स्वरूप प्रयुक्त होते हैं—

√हो हुआ √कर किया

√दे दिया √ले लिया

√जा गया

आधुनिक ब्रज भाषा में धातु के अन्त में 'ओ', 'यो', या 'यौ' जोड़ने से भूतकालिक कृदत बनता है,[७५] जैसे—

गओ, गयो, गयौ।

लिंग और वचन के परिणामस्वरूप इस कृदतज रूप म रूपान्तर पाया जाता है। खड़ी बोली तथा ब्रज दोनों म पुल्लिग बहुवचन क लिये 'ए' प्रत्यय का व्यवहार होता है, जैसे—पढ़े, चले, देखे, इत्यादि। स्त्रीलिंग एक वचन में 'ई' तथा बहुवचन में ई प्रत्यय का प्रयोग होता है, जैसे—पढ़ी, पढ़ीं।

अवधी में भूतकालिक कृदत के लिये 'आ' (चला), ए (चले), इ (चली), एउँ (चलेउँ), इउँ (चलिउँ) एन् (चलेन्), इसि (चलिसि), एउ (चलेउ), इनि (चलिनि), ई (चलीं) आदि प्रत्ययों का व्यवहार होता है। 'आ' प्रत्यय का प्रयोग पुल्लिग एकवचन के लिए और 'ई' प्रत्यय का व्यवहार स्त्रीलिंग एकवचन के लिये होता है। परन्तु 'आ' प्रत्यय पुल्लिग का और 'ई' प्रत्यय केवल स्त्रीलिंग का बोध तभी तक कराता है, जबकि क्रिया या तो स्वयं अकर्मक होती है, या अकमक अथवा कमवाच्य रूप धारण करती है, यथा—मैं चला हौं (पुल्लिग), म चली हैं (स्त्रीलिंग)। यदि क्रिया अकमक रूप में प्रयुक्त नहीं होती अथवा स्वयं सकमक होती है, तो

७५—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २१६ पृ० १००-१०१।

उक्त दोनों प्रत्ययों का प्रयाग पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में समान रूप से हा सक्ता है, यथा—मैं पदा या पदी हौं (पुल्लिंग या स्त्रीलिंग) 'ए' प्रत्यय का प्रयोग पुल्लिंग बहुवचन क लिये हाता है–हम चले हन। 'ई' प्रत्यय स्त्रीलिंग बहुवचन क लिय भी आता है–हम चली हन। आ, इ, ए प्रत्यय का प्रयोग तीनों पुरुषों म समान रूप से होता है। सकमक क्रिया रूपों क साथ अन्य-पुरुष बहुवचन को छोड़कर शेष किसी भी वचन, पुरुष और लिंग क कता के साथ 'ए' रूप का प्रयोग होता है। एउँ और इउँ का प्रयाग उ० पु० एकवचन के लिये होता ह। 'एउँ' रूप सकमक क्रियाओं के योग में दोनों लिंगों में प्रयुक्त होता है, परन्तु क्रिया के अकमक होने पर इसका प्रयोग केवल पुल्लिंग में होता है। 'इउँ' का प्रयोग अकमक क्रियाओं के साथ स्त्रीलिंग म हाता है—मैं चलिउँ। 'एन' का प्रयोग उ० पु० बहुवचन वाले कता के साथ होता है—हम देखेन है, हम चलेन है। 'इसि' का प्रयोग सकर्मक क्रिया के साथ मध्यम पुरुष एकवचन अथवा अन्यपुरुष एकवचन के लिये होता है—तुइ देखिसि है उ या वा देखिसि है। 'इउ' और 'इन' का प्रयोग मध्यमपुरुष बहुवचन वाले कर्ता के साथ होता ह। 'इउ' सकमक क्रियाओं के साथ दोनों लिंगों में प्रयुक्त होता है और अकर्मक क्रियाओं क साथ इसका प्रयोग पुल्लिग क लिये होता है—तुम देखेउ है। (पुल्लिग या स्त्रीलिंग), तुम चलेउ है (पुल्लिग)। अकमक क्रियाओं क साथ 'इन' प्रत्यय का व्यवहार स्त्रीलिग म होता है—तुम चलेउ है। सकमक क्रियाओं के साथ अन्यपुरुष बहुवचन के लिये 'इनि' का प्रयोग होता है। ई केवल स्त्रीलिंग अन्यपुरुष बहुवचन के लिये आता है। ऐसी दशा में क्रिया अकमक होती है और बिना किसी सहायक क्रिया के सयोग से एसे रूप निष्पन्न होते हैं—उइ गई।[७६]

ब्रजभाषा के 'यो' वाले रूप का प्रचार गुजराती, राजस्थानी, नेपाली, गढ़वाली, गुजरी आदि बालियों म भी है। बुन्देली तथा कुमायुनी म 'औ' प्रत्यय वाले (चल्यौ) भूतकालिक कृदतज रूप मिलते हैं।[७७]

भोजपुरी म धातु के अन्त में 'ल्' प्रत्यय जोड़ने से तथा इसके कमवाच्य में 'इल्' प्रत्यय जोड़ने से बहुधा भूतकालिक कृदतज रूप बनते हैं। इसकी

७६—सक्सेना एवोल्यूशन आफ अवधी २६६ पृ० २४८।
७७—धारेन्द्र वमा ब्रजभाषा २१६ पृ० १०१।

उत्पत्ति त + अल् तथा इसके कर्म वाच्य की उत्पत्ति त् + अ + इल् से मानी जाती है,[७८] जैसे—सुनाइल्, देराइल्, मराइल्, पिटाइल् इत्यादि।

भोजपुरी से इस 'ल' प्रत्यय का प्रसार अवधी म भी हो गया है, उदा०—वा गइल।

कर्तृवाचक कृदत

कर्तृवाचक सज्ञा की रचना क्रियार्थक सज्ञा के विकृत रूप में 'वाला' प्रत्यय लगाने से होती है।[७९] जैसे—पढने वाला, रहने वाला, खाने वाला, सोने वाला इत्यादि।

'वाला' प्रत्यय के बदले कभी कभी 'हार' या 'हारा' प्रत्यय का व्यवहार होता है, जैसे—चलनहार, चलनहारा। 'हार' प्रत्यय का व्यवहार प्राय ब्रज, राजस्थानी तथा अवधी में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली की कुछ प्रारम्भिक कृतियों म भी 'हार' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है—

आप वेद पुराण सब शास्त्र के सार जाननिहार, (नासि० २)

इन रूपों के अतिरिक्त कर्तृवाचक कृदत के लिये सस्कृत की पद्धति पर 'क' वाले रूप भी कहीं कहीं व्यवहृत मिल जाते हैं, जैसे—पाठक, साधक, हिंसक, दाहक। ब्रज और अवधी म 'ऐया या इया' प्रत्यय का भी प्रयोग होता है—देवैया, पढ़ैया, सुनइया।

पूर्वकालिक कृदत

खड़ी बोली म धातु के अन्त में 'के' 'कर' अथवा 'करके' जोड़ने से पूर्वकालिक कृदत बनता है, यथा[८०]—

मालिक क्या खाके लेंगे। (गोदान)

मुझसे लेकर किसी हाकिम हुक्काम को दे देते। (वही)

वे अपनी समस्त शक्ति सकलित करके बढ रहे हैं (स्क०)

समस्त ब्रज प्रदेश म व्यजनान्त धातुओं म 'इ' तथा अकारान्त अथवा ओकारान्त धातुओं म 'य' जोडकर पूर्वकालिक कृदत बनाये जाते हैं[८१]—

७८—तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य ६२५।

७९—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ३७२ पृ० २७१।

८०—का० प्र० गु हिन्दी व्याकरण ३८० पृ० २७७।

८१—धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा २२१ पृ० १०३।

जैसे—करि, जाय, रोय, गोय, खोय। निम्नलिखित धातुओं के पूर्वकालिक कृदतज रूप इस प्रकार होते हैं—

√लै लै √दे दै

√पी पा

'होना' सहायक क्रिया का पूवकालिक कृदत पूर्वी ब्रज प्रदेश में हुइ; दक्षिणी और पश्चिमी ब्रज प्रदेश म 'ह्वै' अथवा 'है' बनता है।[८२]

पूवकालिक कृदत के उक्त रूपों के अतिरिक्त ब्रज क कुछ प्रदेशों में (साधारणतया पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी ब्रज प्रदेश में) कृदतज रूप के आगे 'कै' अथवा 'कें' परसर्ग का प्रयोग मिलता है,[८३] यथा—खायकै, पढ़िकें।

खड़ी बोली और ब्रज की भाति अवधी म भी धातु के पश्चात् 'कै' अथवा 'के' परसग का योग करने पूवकालिक कृदत की रचना होती है, जैसे—देखकै, देख के, सुनकै, सुनके इत्यादि। साथ ही साथ अवधी में बिना परसग के भी 'अ' और 'इ' प्रत्यय का प्रयोग पूवकालिक कृदत के लिये होता है[८४]—देख, देखि, पढ़, पढ़ि आदि।

अन्य आधुनिक भारतीय आय भाषाओं के समान आदर्श भोजपुरी म भी धातु के अन्त म 'इ' प्रत्यय लगा कर तथा उसके बाद 'के' परसर्ग का प्रयोग करके पूवकालिक कृदतज रूप बनाया जाता है,[८५] जैस—देखिके, सुनिके।

तात्कालिक कृदत

खड़ी बोली में तात्कालिक कृदत की रचना के लिये वर्तमानकालिक कृदतज रूप 'ता' को 'ते' आदेश करके उसके पश्चात् 'ही' जोड़ते हैं,[८६] यथा—पढ़ते ही, लिखते ही, चलते ही।

ब्रजभाषा और अवधी में 'त' का 'ते' आदेश नहीं होता अपितु उसके

८२—वही।

८३—वही २२१ पृ० १०३।

८४—एवोल्यूशन आफ अवधी ३३६।

८५—तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य।

८६—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण, २८९ पृ० २७५।

अनन्तर 'ही' या 'हिं' जोड़ते हैं, जैसे—सुमिरत ही, पढ़तहिं। इसके अतिरिक्त ब्रज और अवधी में वर्तमानकालिक कृदन्तज रूप के द्वारा भी तात्कालिक कृदंत का अर्थ द्योतित हो जाता है।

भोजपुरी में तात्कालिक कृदंत की रचना के लिये धातु के अन्त में 'ते' प्रत्यय जोड़ते हैं, यथा—जाते (जाते ही), खाते (खाते ही)।

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत

खड़ी बोली में तात्कालिक कृदंत की भाँति 'ता' को 'ते' आदेश कर देने से अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत बनता है, किन्तु इसके साथ 'ही' नहीं जोड़ा जाता,[८७] जैसे—रहते, खाते, जाते इत्यादि।

ब्रजभाषा, अवधी और भोजपुरी आदि बोलियों में प्रायः वर्तमानकालिक कृदंतज रूप के द्वारा ही अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत की रचना हो जाती है, जैसे—जात, खात, चलत इत्यादि।

पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत

भूतकालिक कृदंत विशेषण के अन्त्य को 'ए' आदेश करने से पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत बनता है। यह कृदन्तज रूप मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की पूर्णता सूचित करता है,[८८] जैसे—पढ़े, देखे, सुने, पाये आदि।

भविष्यत्कालिक कृदंत

खड़ी बोली में भविष्यत्कालीन घटनाओं अथवा कार्यों का अर्थ द्योतित करने के लिए कृदंतज रूप उपलब्ध नहीं होते। अवधी, भोजपुरी आदि कुछ बोलियों में बहुधा भविष्यत्कालिक कृदंत का व्यवहार होता है। अवधी और भोजपुरी में धातु के अन्त में 'ब' प्रत्यय जोड़कर यह कृदंत बनाया जाता है, यथा—पढ़ब (पढ़बु), रहब, खेलब, करब, जाइब।

संयुक्त क्रियायें

क्रिया के अनेक अर्थों के द्योतन के लिये प्रायः दो अथवा तीन क्रियाओं का एक साथ प्रयोग प्रायः समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में पाया जाता है। ऐसी संयुक्त क्रियाओं का अध्ययन की दृष्टि से बड़ा

८७—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ३८२ पृ० २७५।

८८—वही, ३८३ पृ० २७५।

महत्त्व है। हिन्दी में जिन संयुक्त क्रिया रूपों का व्यवहार होता है उनका विवेचन नीचे किया जा रहा है—

क्रियार्थक संज्ञा के योग से बनी हुई संयुक्त क्रियायें

क्रियार्थक संज्ञा के योग से बनी हुई संयुक्त क्रियाओं के दोनों रूप साधारण और विकृत सामान्य रूप से हिन्दी तथा उसकी सम्बद्ध बोलियों में उपलब्ध होते हैं—

(अ) साधारण रूप या मूलरूप—

चाहना–करना चाहिए–ब्रज० करन चइऐ, अव० करब चहिअ भोज० करल या करब चाहिअ।

होना –होने देना

पड़ना –जान पड़ना–ब्र० जान पड़नो।

(ब) विकृत रूप––

देना –चलने दो – ब्र० चलन दओ, अव० चलइदेउ

लगना–होने लगा, ब्र० होन लग

पाना –चलने पाता है–ब्र० चलन पावै, चलइ पावै

भूतकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई संयुक्त क्रियायें

आना –चला आया, ब्र० चल्यो आयौ, अव० चला आया।

चाहना–पढ़ा चाहता है, ब्र० पढ्यौ चहत, अव० पढ़ा चहत।

जाना –रहा जाता है, ब्र० रह जात है, अव० रहा जात है।

करना –चला करता है ब्र० चल्यो करै, अव० चला करत।

रहना –पड़ रहा, ब्र० पड़ो रह्यो, अव० पर रह।

वर्तमानकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई संयुक्त क्रियायें

जाना –चलती जाती है, ब्र० चलत जात, अव० चलत जात

फिरना–खेलते फिरते, ब्र० खेलत फिरै अव० खेलत फिर।

रहना –करते रहते हैं, ब्र० करत रहत।

पूर्वकालिक कृदन्त के योग से बनी हुई संयुक्त क्रियायें

आना –ले आओ, ब्र० लै आओ, अव० लइ (लइ) आ, आउ

चलना–ले चला, ब्र० लै चल्यौ, अव० लइ चला।

देना –दे दिया, ब्र० दै दइ, अव० दइ दिया।

जाना –भाग गये, ब्र० भजि गये, अव० भगि गये।
करना –पढ़ कर, ब्र० पढ़िकै, अव० पढि, पढ़िके।
लेना –बुला लिया, ब्र० बुलाए लियो, बोलाइ लिहिसि।
निकलना–आ निकला, ब्र० आय निकल्यो, अव० आइ निकसा।
पड़ना –जान पड़ता है, जानि पड़त, अव० जानि परत।
पाना –कर पाता है, ब्र० करि पावत, अव० कइ पावत।
रहना –कर रहा था, ब्र० करि रह्यो, अव० करि रहउ।
सकना–चल सकता है, ब्र० चलि सकत, अव० चलि सकत।

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त के योग से बनी हुई क्रियायें—

बनना –पढ़ते बना, रहते बना, देखते बना इत्यादि।

पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त के योग से बनी हुई क्रियायें—

जाना –पढ़े जाता था लिखे जाता था इत्यादि।
लेना –उठाये लिये जाता था।
देना –कहे देता था।
डालना–मारे डालता था।
बैठना –लिये बैठता था।

संज्ञा या विशेषण के योग से बनी हुई संयुक्त क्रियायें—

भस्म होना स्वीकार करना, इत्यादि।

पुनरुक्त संयुक्त क्रियायें—

पढ़ा लिखा, ब्र० पढ़यो लिख्यो, देखा भाला, ब्र० देख्यो भाल्यो।
तीन क्रियाओं के संयुक्त रूप–
चले जाया करते हैं, ब्र० चले जायो करें,
ले लेने दो, ब्र० ले लेन देओ, अव० लइ लेन देउ।
संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से सातवें अध्याय में विचार किया जायगा।

सहायक क्रिया

हिंदी के संयुक्त कालों की रचना में 'होना' सहायक क्रिया का व्यवहार होता है। 'होना' सहायक क्रिया दो रूपों में प्रयुक्त होती है—(१)

स्थिति दर्शक सहायक क्रिया के रूप म (२) विकार दर्शक सहायक क्रिया के रूप म। हिन्दी की सहायक क्रियाओं का सम्बन्ध संस्कृत के तिङन्त रूपों से है। 'होना' सहायक क्रिया के विविध रूपों का निम्नलिखित ढग से प्रदर्शित किया जा सकता है—

'होना' (स्थिति दर्शक)

सामान्य वर्तमानकाल (वर्तमान निश्चयार्थ)

कर्ता पुल्लिंग या स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१—हूँ (ब्र०हू, हो, अव०हौं भोज०हइ)	हैं (ब्र०हैं, अव०हन,भोज० हइ)
२—है (ब्र०ह, अव०है, भोज०हउए)	हो (ब्र०हौ, अव०हौ,भोज०हउअ)
३—है (ब्र०ह, अव० है, भोज हौ)	हैं (ब्र०हैं, अव० हैं, भोज०हउएँ)

सामान्य भूतकाल (भूतानिश्चयार्थ)

कर्ता पुल्लिंग

-था (ब्र०हा, हतो, अव०रहउ भोज रहली)	थे (ब्र० हे, हते, अव०हते, रहन, भोज० रहलीं)
२-था(ब्र०हो, हतो, अव०हता, रहइ, भोज० रहले)	थे(ब्र०हे, हते, अव० हते, रहउ, भोज० रहल्)
३-था(ब्र०हो, हतो, अव० रहइ, भोज० रहल, रहलसि)	थे(ब्र० हे, हते, अव० हते, रहैं, भोज० रहलै)

कर्ता स्त्रीलिंग

१-३ थी(ब्र० हा, हता, अव० हता, रही)	थीं(ब्र०हीं, हतीं, अव० हती, रही)

होना (विकारदर्शक)

(१) समान्य भविष्यत्काल (वर्तमान आज्ञा)

कर्ता पुल्लिंग या स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१-हाऊँ, ब० होउ	हों, होवें, ब० हायँ
२-हो, हाव, ब० हाय, अव० हो, रहु	हाओ, ब०होउ, अव०हाउ, रहउ
३-हा, हाव, ब० हाय	हो, हावों, ब० हायँ

(२) सामान्य भविष्यत्काल (भविष्य निश्चयार्थ)

कर्ता पुल्लिंग

१–होऊँगा (ब्र० होउँगो, होंगो)	होंगे, होवेंगे (ब्र० होंगे)
२–होगा, होवेगा (ब्र०होयगा, हागो)	होओगे, होगे (ब्र०होउगे, होगे)
३–होगा, होवेगा (ब्र० होयगो, होगो)	होंगे, होवेंगे (ब्र० होंगे)

कर्ता स्त्रीलिंग

१–होऊँगी (ब्र० होंउँगी, होंगी)	होंगी, होवेंगी (ब्र० होंगी)
२–होगी, होवेगी (ब्र०होयगी, होगी)	होओगी, होगी (ब्र०होउगी, होंगी)
३–होगी, होवेगी (ब्र० होयगी, होगी)	होंगी, होवेंगी (ब्र० होंगी)

(३) सामान्य सकेतार्थकाल (भूत संभावनार्थ)

कर्ता पुल्लिंग

१–होता (ब्र० होतो, होतौ, अव० होतिउ, होतेउँ)	होते (ब्र० होते, अव० होतेन्, होते)
२–होता (ब्र० होतो, होतौ, अव० होति, होते)	होते (ब्र०होते, अव०होतिउ, होतेउ)
३–होता (ब्र० होतो, होतौ, अव० होति, होत)	होते (ब्र०होते, अव०होइतीं, होते)

कर्ता स्त्रीलिंग

१–३ होती (ब्र० होती)	होतीं (ब्र० होतीं)

सामान्य वतमानकाल के हूँ आदि रूपों का सम्बन्ध संस्कृत के 'अस्' से है, जैसे—सं० अस्मि > प्रा० अम्हि, अस्मि > हिं० हूँ (ब्र० हौं), सं० अस्ति > प्रा० अत्थि > हिं० है। अवधी में प्राप्त होने वाले 'अहइ' अहै का सम्बन्ध √अस् से ही माना जाता है—सं० अस्ति > असति > अछइ > अहइ > अहै।

सामान्य भूतकाल के 'था' आदि रूपों का सम्बन्ध सं० 'स्था' से माना जाता है, सं० स्थित > प्रा० थाइ > ठाइ > हिं० था।

कुछ लोग 'था' का सम्बन्ध √भू-अभूत से मानते हैं, जैसे—अभूत > अहूत > हूत > हुतो, तो, था (त+ह)।[८६] ब्रजभाषा में 'था' के स्थान

८६—डा० नामवर सिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग ४० पृ० १३७।

पर 'हुतो' हो, तो आदि रूपों का व्यवहार होता है। 'था' वाले रूपों का प्रचुर प्रयोग दक्खिनी हिन्दी में देखने को मिलता है—

आये दो जने, रतन थो आये।[६०]

पूर्वी हिन्दी की कुछ बोलियों में 'बाटे' आदि रूपों का व्यवहार सहायक क्रिया के रूप में होता है जैसे—उ जात् बाटे। इसका सम्बन्ध सं० √वृत्त से माना जाता है—सं० वतते > वट्टति > वट्ठे > बाटे, बाड़े > बा।

अवधी तथा भोजपुरी आदि कुछ बोलियों में 'रहना' सहायक क्रिया का प्रयोग होता है। टर्नर इसका सम्बन्ध √रह से मानते हैं।[६१]

सामान्य भविष्यत् काल के 'होगा' आदि रूपों की कोई निश्चित व्युत्पत्ति नहीं दी गई है। इनका सम्बन्ध सं० √भू + √गम् (भूतकालिक कृदतज रूप गत) से माना जाता है।

इसी प्रकार सामान्य सकेताथ काल के होता रूप का सम्बन्ध सं० भू + शतृ प्रत्ययांत रूप (त) से माना जा सकता है।

बगला में इसके अतिरिक्त आछ् तथा थाक् दो अन्य सहायक क्रियाओं का भी प्रयोग मिलता है, जो मैथिली में 'छ्' और थीक् के रूप में दिखाई देते हैं। 'अछ्' वाले रूपों का प्रयोग अवहट्ट में अच्छी तरह हुआ है। प्रारम्भिक अवधी में भी अछ वाले रूप दिखाई पड़ते हैं, देखत आछ्, चाखते आछ (उक्ति० ६), भलहिं जी आछै पास।[६२] भोजपुरी में 'अछइत' रूप मिलता है। इसके अतिरिक्त गुजराती तथा राजस्थानी की कतिपय बोलियों में अछ या आछ् रूप उपलब्ध होते हैं। प्रो० टर्नर ने इसकी व्युत्पत्ति 'आक्षेति' से दी है।

सहायक क्रिया के अन्य रूपों की चर्चा यथास्थान कर दी गई है यहाँ पर केवल मुख्य रूपों की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की गई है।

६०—डॉ० सक्सेना दक्खिनी हिन्दी, पृ० ६१।

६१—टर्नर नेपाली डिक्शनरी, पृ० १६१।

सप्तम परिच्छेद

हिन्दी क्रिया रूपो का प्रायोगिक अध्ययन

प्रायोगिक दृष्टि से हिन्दी की दोनों प्रकार की क्रियायें—समापिका और असमापिका उल्लेखनीय हैं। समापिका क्रियाओं का प्रयोग कालरचना में तथा असमापिका क्रियाओं का प्रयोग विशेषणवत् व अव्ययवत् होता है।

समापिका क्रियायें

हिन्दी म समापिका क्रियाओं के निम्नलिखित रूप पाये जाते हैं—

(क) निश्चयार्थ-

१—सामान्य सकेतार्थ काल
२—पूर्ण वतमान काल
३—सामान्य भूतकाल
४—अपूर्ण भूतकाल
५—पूर्ण भूतकाल
६—सामान्य भविष्यत्काल

(ख) संभावनार्थ-

७—सभाव्य वतमान काल
८—सभाव्य भूतकाल
९—सभाव्य भविष्यत्काल

(ग) सदेहार्थ-

१०—सदिग्ध वतमान काल
११—सदिग्ध भूतकाल

(घ) आज्ञार्थ-

१२—प्रत्यक्ष विधि
१३—परोक्ष विधि

(च) सकेतार्थ-

१४—सामान्य सकेतार्थ काल

१५–अपूर्ण संकेतार्थ काल
१६–पूर्ण संकेतार्थ काल

इन कालों के लिये संस्कृत में विविध लकारों की व्यवस्था है, जिनका प्रयोग तिङन्तज हुआ है। परिनिष्ठित हिन्दी में उन लकारों में से सभाव्य भविष्यत्काल, सामान्य भविष्यत्काल, प्रत्यक्ष विधि और परोक्ष विधि के रूपों को छोड़कर शेष कालों के रूप कृदन्तज हैं।

सामान्य वर्तमानकाल

इस काल का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है—

(क) बोलने के समय की घटना के अर्थ में–

मैं तो बाहर ही गाड़ता हूँ। (गोदान)
आपु कहत हम सुनत। (सूर० भ्रमरगीत)
बिकल बिलोकि सुतहिं समुझावति। (मानस)
अबहिन पानी बरसत बाटै (भोजपुरी)—अभी पानी बरसता है।

(ख) ऐतिहासिक वर्तमान–

गोपियाँ कहती हैं (चिंतामणि प्रथम भाग)
ता लालच न धुआवति सारी। (सूर० भ्रमरगीत)
भोजन करत बोल जब राजा (मानस)
सुकदेव जी कहत् बाड़ (भोज०)—सुकदेव जी कहते हैं।

(ग) स्थिर सत्य—*ऐसी बात जो सदैव एक समान स्थित रहने वाला और सत्य है,* उसका द्योतन करने के लिये सामान्य वर्तमानकाल का प्रयोग किया जाता है—

सूर्य पूर्व में उदित होता है।
चिड़ियाँ उड़ती हैं।
दादुर रहत सदा जल भीतर कमलहिं नहिं नियरात (सूर० भ्रमरगीत)

(घ) वर्तमान की अपूर्णता—यह काल वर्तमानकाल के कार्य की अपूर्णता भी सूचित करता है—

यूरोप के ही साहबों की हम सुनाते हैं कथा (भारत भारती)
कोऊ आवत हैं तन स्याम (सूर० भ्रमरगीत)
तू छल बिनय करत कर जोरे।
हम आज जात बाटीं। (भोजपुरी)—मैं आज जाता हूँ।

(सुनाते हैं-सुना रहे हैं, आवत-आ रहा है, करत-कर रहे हैं, जात बाटों-जा रहा हूँ।)

(च) अभ्यास—दैनिक जीवन की कुछ घटनायें ऐसी होती हैं, जो अभ्यास बन जाती हैं, उनकी सूचना सामान्य वतमानकाल के रूपों द्वारा मिलती है—

वह सवेरे सात बजे उठता है।
मिलत एक दुख दारुन देहीं (मानस)
माली रोज फूल लाव ला (भोजपुरी)—माली रोज फूल लाता है।

(छ) आसन्न भूतकाल के अर्थ को सूचित करने के लिए सामान्य वर्तमानकाल का प्रयोग होता है। ऐसी स्थिति में भूतकाल में आरम्भ हुई क्रिया की पूर्णता वर्तमान काल में होती है—

आपको पिता जी घर में याद करते हैं।
वह अभी आफिस से आता है।
(करते हैं-किया है, आता है-आया है।)

(ज) आसन्न भविष्यत् के भी अर्थ का बोध सामान्य वतमान काल के रूपों द्वारा होता है। ऐसी अवस्था में भविष्यत् काल में आरम्भ होने वाली क्रिया का आरम्भ वतमान काल में होता है—

अभी आके जवाब देता हूँ (गोदान)
अब वह जाता है।
(देता हूँ-दूँगा, जाता है—जायगा)

पूर्ण वर्तमानकाल

पूर्ण वतमानकाल का निम्नलिखित अर्थों में प्रयोग होता है—

(क) किसी भूतकालिक क्रिया का वतमान काल में पूरा होना—

जितना आज दिया है, उतना और (सिन्दू०)
कह्यो तिय को जिन कान कियो है (तुलसी कवि०)
आये हैं बार चले बनिता है (नेशव)
सुनहु भरत हम सब सुधि पाइ (मानस २।२०६)
ई काम अब भइल है। (भोजपुरी)-यह काम अब हुआ है।

(ख पूर्ण वतमानकाल का प्रयोग प्राय ऐसी भूतकालिक क्रिया का

पूर्णता के लिये होता है, जिसका प्रभाव वतमानकाल में पाया जाता है,[1] जैसे—

गोस्वामी तुलसी दास ने रामचरितमानस लिखा है ।
ससार में ऐसे अनेक विद्वान् हो गये हैं ।

(ग) वर्तमान स्थिति का बोध—बैठना, सोना, लेटना, आदि शरीर-व्यापार अथवा शारीरिक स्थिति सूचक क्रियाओं के पूर्ण वर्तमानकाल के रूप से बहुधा वर्तमान स्थिति का बोध होता है[2], जैसे—

मैं तुझे अभी मारता हूँ । (प्रेम० १।२)
गुरु जी अभी कक्षा म बैठे हैं ।
वह अभी सोया है ।
जमीन पर कुत्ता अभी लेटा है ।

(घ) भूतकालिक क्रिया की आवृत्ति—भूतकालिक क्रिया की आवृत्ति सूचित करने के लिये बहुधा पूर्ण वतमान काल का प्रयोग किया जाता है[3]—

जब जब आप आये हैं, तब तब पुस्तकें ले गये हैं ।
जब जब भक्तों पर विपत्ति पड़ी है तब तब भगवान ने जन्म लिया है ।

(ङ) किसी क्रिया का अभ्यास

मैंने अनेक पुस्तकें पढी हैं ।
उसने बढइ का काम किया है ।

सामान्य भूतकाल

इस काल से प्राय निम्नलिखित अर्थ सूचित होते हैं—

(क) बोलने या लिखने के पूर्व क्रिया की स्वतन्त्र घटना—

मालती ने कटोरे के मद्देपन पर मुँह बनाया (गोदान)
आए जोग सिखावन पाडे (सूर० भ्रमरगीत)
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढा । (मानस)
गाड़ी सबेरे आइल (भोज०)—गाड़ी सबेरे आई ।

१—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ५१० (आ)
२—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ५१० (इ)
३—वही, ५१० (३) पृ० ४६६ ।

(ख) सामान्य भूतकाल से कभी-कभी आसन्न भविष्यत् का भी अर्थ द्योतित होता है—

मैं अभी आया।

अब मैं बे मौत मरा।

अब तुम गये काम से।

(ग) साधारण या निश्चित भविष्यत्—साकेतिक अथवा सबध वाचक वाक्यों में सामान्य भूतकाल से साधारण या निश्चित भविष्यत् का बोध होता है,[४] जैसे—

ज्यों ही आगे बढे, तुम्हारी बुरी दशा होगी।

ज्यों ही वे आये, त्यों हम चले।

(बढे—बढोगे, आये-आयँगे, चले—चलेंगे)

(घ) सामान्य वर्तमान काल की भाँति इस काल का प्रयोग अभ्यास, सम्बोधन अथवा स्थिर सत्य सूचित करने के लिये होता है[५], जैसे—

ज्यों ही वह घर के बाहर हुआ, शोर मचाया।

जिन्होंने रामचरित मानस पढा, वे ही तुलसी हो गये।

(हुआ होता है, मचाया-मचाता है, पढ़ा-पढ़ता है, गये-जाते हैं।)

(ङ) वर्तमान काल की इच्छा—'होना' क्रिया के सामान्य भूतकाल में निषेधवाचक रूप से वतमान काल की इच्छा सूचित होती है[६]—

आज मेरे पास पैसे नहीं हुए, नहीं तो मैं भी पुस्तकें खरीद लेता।

(च) वर्तमान निश्चय-होना, ठहरना, कहलाना के सामान्य भूतकाल से वर्तमान निश्चय सूचित होता है,[७] जैसे-

आप लोग बड़े हुए (कहलाए, ठहरे) फिर किस बात की चिंता!

(छ) वर्तमानकालिक अवस्था-'आना' क्रिया के भूतकाल से कभी कभी वतमानकालिक अवस्था सूचित होती है,[८] जैसे,

---

४—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ६०६ (इ) पृ० ४६७।

५—वही, ६०६ (इ) पृ० ४६८।

६—वही, ,, (अ) ,, ।

७—का० प्र० गु० हिंदी व्याकरण। ६०६ (अ) पृ० ४६८।

८—वही ६०६ (क) पृ० ४६८।

ये आये दुनिया भर के विदार्।
हम उसको जल से छुड़ा आये।

(ज) वर्तमान काल का बोध–प्रश्न करने म समझना, देखना आदि क्रियाओं के सामान्य भूत स वतमान काल का बोध होता है,[९]–

अब वह घर जाता है–समझे ?
देखा, वह कैसी बातें बनाता है !

(झ) सभाव्य भविष्यत्–सकताथ वाक्यों म सामान्य भूतकाल स बहुधा सभाव्य भविष्यत्काल का अथ सूचित होता है–

यदि उसने इतना पढ़ा भी, तो भी कोई लाभ नहीं है।
यदि मैं वहाँ गया भी, तो भी आपका काम न होगा।

अपूर्ण भूतकाल

अपूर्ण भूतकाल से यह बोध होता है कि व्यापार भूतकाल म पूर्ण नहीं हुआ, अपितु जारी रहा [१०]। इस काल से निम्नलिखित अथ सूचित होते हैं

(क) भूतकाल की किसी क्रिया की अपूर्ण दशा को सूचित करने के लिये अपूर्ण भूतकाल का प्रयोग किया जाता है—[११]

सम्राट सभासदों के बीच सिंहासन पर विराजते थे। (चिता०)
कौशल्या क्या करती थी ? (साकेत चतुथ सग)

(ख) भूतकाल की किसी अवधि म एक काम जब बार बार होता है, तो उसके लिए अपूर्ण भूतकाल का प्रयोग होता है—[१२]

अध्यापक ज्यों ज्यों प्रश्न पूछता था, बच्चे उत्तर देते जाते थे।

(ग) भूतकालिक अभ्यास–वतमानकालिक कृदत के द्वारा जब भूतकालिक अभ्यास सूचित होता है, तो उसके लिए अपूर्ण भूतकाल का प्रयोग किया जाता है, जैसे–

अम्मा को पान की तरह फेरती रहती थी। (गोदान)
पहले मैं बहुत पढ़ता था।

९—वही ३८९ (२) पृ० ३८५।
१०–केलॉग हिन्दी ग्रामर ४६१, ५५०।
११–का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ६७५।
१२–वही ६०५ (आ)।

(घ) भूतकालीन उद्देश्य सूचित करने के लिये अपूर्ण भूतकाल का प्रयोग किया जाता है-

मैं उसके बारे में सोचता ही था कि नौकर चिट्ठी लेकर आ गया।

वह विद्यालय जाता ही था कि गुरु जी से भेंट हो गई।

इस अर्थ में क्रिया के साथ प्रायः 'ही' अव्यय प्रयुक्त होता है।

(ङ) अयोग्यता—अपूर्ण भूतकाल के साथ 'कब' शब्द प्रयुक्त होने पर अयोग्यता सूचित होती है—

वह वहाँ कब जाता था।

राम के आगे रावण कब ठहर सकता था।

(च) वर्तमान काल की किसी क्रिया के दुहराने में इस काल का प्रयोग किया जाता है—

मैं चाहता था कि तुम पढ़ो।

तुम कहते थे कि वह यहाँ रहने वाला है।

पूर्ण भूतकाल

इस काल का प्रयोग प्रायः निम्नलिखित अर्थों में होता है—

(क) बोलने या लिखने के बहुत पहले की क्रिया—

मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया था। (खड़ीबोली) सो आज इवाँ गयो हो। (ब्रज)—वह आज वहाँ गया था।

तू तब घर गय् रहेस (अवधी)—तू तब घर गया था।

उ आज पढ़े गइल रहल (भोज पुरी)—वह आज पढ़ने गया था।

भूतकाल की निकटता या दूरता का परिज्ञान बहुधा अपेक्षा या आशय से होता है। 'एक ही समय' कभी कभी वक्ता की दृष्टि से निकट और कभी कभी दूर प्रतीत होता है, [१३] उदा०

'तुम रात को दस बजे आये थे'। और फिर उस अवधि को अल्प मानकर कोई व्यक्ति यह भी कह सकता है—तुम रात को दस बजे आये हो।

(ख) पूर्ण भूतकाल से दो भूतकालिक घटनाओं की समकालीनता भी सूचित होती है--

---

१३ का०प्र० गु० हिंदी व्याकरण। ६११ (मू०)।

मैं थोड़ी दूर गया ही था कि एक मित्र मिले।

पढाइ पूरी न होने पाई थी कि अध्यापक कक्षा छोड़कर चले गये।

(ग) असिद्ध संकेत—सांकेतिक वाक्यों में इस काल से असिद्ध संकेत सूचित होता है—[१४]

यदि तुम यहाँ न आये होते, तो काम समाप्त हो ही चुका था।

यदि उसको और चोट लगी होती, तो वह मर ही गया था।

(घ) आसन्न भूतकाल की सूचना—पूर्ण भूतकाल कभी-कभी आसन्न भूतकाल म भी आता है[१५]—

मैं आपके पास इसलिए आया था कि आप मेरे साथ चलेंगे

उसने तुमको इसलिए बुलाया था कि तुम उसका कहना मानोगे।

सामान्य भविष्यत्काल

इस काल से निम्नलिखित अर्थ सूचित होते हैं—

(क) अनारम कार्य या दशा—

वह आज शाम को जायगा।

हम उनको देखेंगी। (सूर० १७३)

मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। (मानस ५।४७)

कल हम घर जाइब। (भोजपुरी)—कल मैं घर जाऊँगा।

(ख) निश्चय की कल्पना—

वहाँ वह पहुँच गया होगा।

परशुराम मच पर आ गये होंगे।

(ग) संभावना—

अब वह वहाँ नहीं होगा।

कबहूँ तो मेरियो पुकार कान खोलिहैं। (देव)

(घ) संकेत—

यदि आप परिश्रम करेंगे, तो सफल होंगे।

राम अहर चढ़िहैं जब गजरथ बाजि सँवारि। (तुलसी, गीता० १११६)

---

१४ का०प्र० गु० हिंदी व्याकरण। ६११ (इ)

१५ वही, । ६११ (ई)।

(ध) संदेह—उदासीनता—

कौन जाने वह पास होगा, या नहीं।

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो। (तुलसी, विनय०)

सभाव्य वर्तमानकाल

सभाव्य वर्तमानकाल का निम्नलिखित अर्थों में प्रयोग होता है—

(क) वर्तमान काल की अपूर्ण क्रिया की सभावना सूचित करने के लिए सभाव्य वर्तमान काल का प्रयोग किया जाता है। आशंका सूचित करने के लिए इस काल के साथ प्राय 'न' जोड़ दिया जाता है—[१६]

शायद अभी वह जाता हो।

कहीं वह लौटता न हो।

(ख) अभ्यास, स्वभाव या धर्म—

मुझे ऐसा नौकर चाहिए जो भोजन बना सकता हो।

हमें ऐसे लोगों की जरूरत है जो देश की सेवा करते हों।

(ग) भूत अथवा भविष्यत् काल की अपूर्णता की संभावना—

जब मैं पढ़ता होऊँ तो मत आना।

(घ) उत्प्रेक्षा—

वह इस प्रकार हसती है, मानो ज्योत्स्ना छिटकती हो।

इन कपड़ों में तुम ऐसे लगते हो मानो विदेश से आते हो।

(ङ) सभाव्य वर्तमान काल का प्रयोग प्राय सांकेतिक वाक्यों में भी होता है—

अगर पिताजी आते हों, तो मैं विद्यालय जाऊं।

यदि तुम पढ़ती होओ, तो मैं पुस्तक दूं।

सभाव्य भूतकाल

सभाव्य भूतकाल से नीचे लिखे अर्थ का बोध होता है—

(क) भूतकाल की अपूर्ण क्रिया की सभावना—

हो सकता है वह वहाँ गया हो। (खड़ीबोली)

---

१६ का०प्र० गु० ' हिंदी व्याकरण। ६०६ (अ) पृ० ४६६।

तुम जा सुनो हो, हमसो कहो। (ब्रज)—तुमने जो सुना हो,
हमसे कहो।
तास जोर कुछ सुनल् गइल् होय ठीक ठीक कह। (भोज०)
=तुमसे जो कुछ सुना गया हो, ठीक ठीक कहो।

(ख) इस काल से कभी-कभी आशंका या संदेह सूचित होता है—
कहीं वह मार न डाला गया हो। (खड़ी०)
सो घर आयो न होय (ब्रज)—(कहीं) वह घर आया न हो।
पठवा बालि होइ मन मैला। (मानस)
कहीं उ हँसा म न कइल होय। (भोजपुरी)—कहीं उसने हँसी
हँसी में न कहा हो।

(ग) भूतकालीन उत्प्रेक्षा—संभाव्य भूतकाल का प्रयोग कभी-कभी
भूतकालीन उत्प्रेक्षा के लिए भी होता है—
वह मुझे ऐसा देखता है मानो मैंने कोई अपराध किया है।
वह ऐसा बनता है, मानो कोई मंत्री हो गया हो।

(घ) संभाव्य भूतकाल का प्रयोग सांकेतिक वाक्यों में भी होता है—
यदि तुमने उसकी पुस्तक ली हो, तो लौटा क्यों नहीं देते।
अगर मैंने कोई त्रुटि की हो तो क्षमा कीजिएगा।

संभाव्य भविष्यत्काल

(क) संभावना—

कदाचित वह जाये।
कै ए नयन जाहु जित ऐरी। (तुलसी गी० १।७६)

(ख) निराशा अथवा परामर्श—

अब मैं कैसे पढ़ूँ।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै (सूर०)
को कार वादविवाद विषाद बढ़ाइए (तुलसी पार्वती० ७२)

(ग) इच्छा, आशीर्वाद शाप—

मैं आपकी हरकतों का वर्णन करूँ।
आप सौ वर्ष तक जीवित रहें।
जहन्नुम में जाय आपकी इज्जत।
अब मैं उनको ज्ञान सुनाऊँ। (सूर० १।२८४)

(घ) कर्तव्य, आवश्यकता—

यह पुस्तक अवश्य पढ़ा जाय।
जेहि विधि अवध आव फिर सीया। (मानस २।६६)

(ङ) उद्देश्य, हेतु—

काम इतना करो जिससे दो दिन में पूर्ण हो जाय।
इतना परिश्रम उसने इसलिए किया कि उत्तीर्ण हो जाय।
जाते रहइ नरनाह सुरारी। (मानस २।१५२)

(च) विरोध—

आप पढ़े या न पढ़े, मैं अवश्य पढ़ाऊँगा।

(छ) उत्प्रेक्षा—

आप ऐसे लगते हैं मानो अंग्रेज हों।
आप ऐसे पढ़ते हैं, मानो पंडित जी हों।

(ज) सांकेतिक भावना—

आज्ञा हो तो घर जाऊँ।
जौ राउर अनुसासन पावौं नगर देखाइ तुरत लै आवौं।
(मानस १/२१८)

(झ) प्रतिज्ञा—

यदि उसे मैं मजा न चखा दूँ तो,
आज जु हरिहिं न सस्त्र गहाउउ। (सूरदास १/२१७०)

संदिग्ध वर्तमानकाल

संदिग्ध वर्तमानकाल से निम्नलिखित अर्थ सूचित होते हैं—

(क) वर्तमानकाल की क्रिया का संदेह—

वह बाजार से आता होगा।
तुम पुस्तक पढ़ते होगे।

(ख) इस काल से तर्क सूचित होता है—

ये कपड़े रेशम से बनते होंगे।
पंडित जी दिल्ली रहते होंगे।

(ग) भूतकाल की अपूर्णता सूचित करने के लिए संदिग्ध वर्तमानकाल का प्रयोग किया जाता है–

जब आप पहुँचेंगे तब मैं भोजन करता हूँगा।

(घ) उदासीनता या तिरस्कार।–

क्या वह बाजार जाता है ? जाता ही होगा।
तुम घर आते हो ? आते ही होगे।

संदिग्ध भूतकाल

इस काल से निम्नलिखित अर्थ सूचित होते हैं–

(क) भूतकालिक क्रिया का संदेह–

वह घर गई होगी।
तुम उस पुस्तक को पढ़े होगे।

(ख) अनुमान–

कल गुरु जी आ गये होंगे।
उसका बच्चा अब बड़ा हो गया होगा।

(ग) जिज्ञासा–

हनुमान ने समुद्र कैसे लाँघा होगा ?
उसकी माता ने क्या कहा होगा ?

इस प्रकार का प्रयोग बहुधा प्रश्नवाचक वाक्यों में होता है।

(घ) तिरस्कार या घृणा–

उसने रामायण पढ़ा है–पढ़ा होगा।

(ङ) संभावना–

सांकेतिक वाक्यों में इस काल से संभावना की कुछ मात्रा सूचित होती है, यथा–

यदि उसने पढ़ा होगा तो अवश्य उत्तीर्ण होगा।
यदि मैंने कोई बुराई की होगी, तो उसका फल मुझे अवश्य मिलेगा।

प्रत्यक्ष विधिकाल

इस काल से निम्नलिखित अर्थ सूचित होते हैं–

(क) अनुमति, परामर्श—इस काल के द्वारा उ०पु० में प्रश्नों के द्वारा अनुमति या परामर्श का बोध होता है—

मैं आज बाजार जाऊँ।
आप कहें तो हम उसे अभी लिवा लायें।

(ख) सम्मति—इस काल से कभी कभी उत्तमपुरुष के दोनों वचनों द्वारा सम्मति का बोध होता है—

चलो टहलने चलें।
हम उसे यहाँ से जाने दें।

(ग) आज्ञा और उपदेश—

किसी की पुस्तक मत चुराओ।
कठिन परिश्रम करो।
हरि की सरन महँ तू आव। (सूर० १/३१४)
बेगि आनु जल पाय पखारू। (मानस २/१०१)

(घ) प्रार्थना—

कृपा कर आप यहाँ बैठ जायँ।
एक बेर हरि दरसन देहु। (सूर० ६/२)
करउ अनुग्रह सोइ। (मानस, सोरठा १)

(च) आदर—

महाराज, विराजिये।
जागिए, गोपाल लाल। (सूर० १०/२०५)
दीन जानि तेहि अभय करीये। (मानस ४/४)

परोक्ष विधिकाल

इस काल के रूपों का प्रयोग केवल मध्यमपुरुष में मिलता है। इसमें प्राय प्रत्यक्ष विधिकाल या सामान्य भविष्यत्काल के मध्यमपुरुष एकवचन वाले रूपों का प्रयोग दोनों वचनों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इस काल में क्रियार्थक संज्ञावत् रूप भी उपलब्ध होते हैं,[10] जैसे—

इस लता को मेरे ही समान गिनियो। (शकु०)

---

१० का० प्र० गु० हिंदी व्याकरण, §०० पृ० ४६३।

वधू, फरियो राज सँभार। (सूर० ६/६४)
अपराध छमियो पालि पठये (मानस १/३२६)

परोक्षविधि में आदरसूचक अर्थ म भविष्यत्कालिक रूप प्रयुक्त होता है–
आप वहाँ न रहियेगा।

परोक्षविधि से आज्ञा, उपदेश, प्रार्थना आदि भाव सूचित होते हैं–
तुम कल यहाँ मत आना। (आज्ञा)
पति घर जाकर गुरुजनों की सेवा करना। (उपदेश)
कृपया मेरे नौकर को अपनी सायकिल दे देना। (प्रार्थना)

सामान्य सङ्केतार्थ काल

इस काल का निम्नलिखित अर्थों में प्रयोग होता है–

(क) क्रिया की असिद्धता का सङ्केत–इसमें तीनों कालों (वर्तमान, भूत और भविष्य) में क्रिया की असिद्धता का सङ्केत मिलता है–
यदि वह पढ़ना न चाहता तो विद्यालय न जाता। (वर्तमान)
यदि उसने परिश्रम किया होता तो अवश्य उत्तीर्ण हो जाता (भूत)
डाक्टर मेहता यदि गौर करते, तो उन्हें मालूम होता कि
उनमें और मिर्जा में कोई भेद नहीं (गोदान)-(भविष्यत्)

असिद्ध इच्छा–
अगर उनको दवा दारू होती तो वे बच जाते। (गोदान)
कोऊ सर्वाँ जुरतो भरिमट (जो) (नरो० सुदामा चरित)
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू (मानस ६/६१)

(ग) सम्भाव्य भविष्यत्काल के अर्थ में–कभी-कभी इस काल से सम्भाव्य भविष्यत्काल के अर्थ में इच्छा सूचित होती है–
यदि तुम पढ़ते तो पास हो जाते।
(पढ़ते-पढ़ो, पास हो जाते-पास हो जाओ)

(घ) संदेह का उत्तर–सामान्य सङ्केतार्थ काल का प्रयोग कभी-कभी भूतकाल की किसी घटना के विषय में संदेह का उत्तर देने के लिये होता है, इस अर्थ में उसका प्रयोग प्रायः प्रश्नवाचक और निषेधवाचक वाक्यों में होता है, जैसे–
पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता ? (भारत भारती)
वह इस पुस्तक को क्यों न पढ़ती !

सकल घरम धुर घरनि घरत को ? (मानस २।२३३)

अपूर्ण संकेतार्थ काल

अपूर्ण संकेतार्थ काल से प्राय निम्नलिखित अर्थ सूचित होते हैं–

(क) अपूर्ण क्रिया की असिद्धता का संकेत–

अगर हम पढ़ते होते, तो आप ऐसा क्यों कहते।
अगर यह चोर न होता, तो क्यों पकड़ा जाता।

(ख) वर्तमान या भूतकाल की कोई असिद्ध इच्छा–

उसकी यह इच्छा है कि मैं नौकरी करता होता।
मैं यह चाहता था कि यह उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण होता।

(ग) कभी कभी बोलने के पूर्व वाक्य का लोप करके केवल उत्तर वाक्य ा प्रयोग किया जाता है–

आज वह विद्यालय जाता होगा।
अभी वह सोता होता।

अपूर्ण संकेतार्थ काल का प्रयोग बहुधा कम होता है। इसके स्थान र प्राय सामान्य संकेतार्थ काल का प्रयोग किया जाता है।

पूर्ण संकेतार्थ काल

पूर्ण संकेतार्थकाल का प्रयोग बहुधा सांकेतिक वाक्यों में होता ।[१८] इस काल से निम्नांकित अर्थ द्योतित होते हैं–

(क) पूर्ण क्रिया का असिद्ध संकेत–

यदि तुमने परिश्रम किया होता, तो पास हो जाते।
यदि हम गये होते, तो वह क्यों न जाता।

(ख) भूतकाल की असिद्ध इच्छा–

तुमने अपनी पुस्तक एक बार भी तो देख ली होती।
जब वे तुम्हारे पास गए थे, तुमने उन्हें बिठलाया तो होता।

इस अर्थ में प्राय अवधारण बोधक निपात विशेषण 'तो' का प्रयोग होता है।[१९]

---

१८ का०प्र०गु० हिन्दी व्याकरण ६१४
१९ वही, ६१४ (ख) पृ०

असमापिका क्रियायें
क्रियार्थक-संज्ञा

क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग निम्नांकित अर्थों में होता है –

(क) भाववाचक संज्ञावत् प्रयोग—क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग बहुधा भाववाचक संज्ञा के समान होता है। यही कारण है कि इसका व्यवहार बहु वचन में नहीं होता, अर्थात् जब कारक, वचन, लिंग, पुरुष आज्ञा, प्रार्थना आदि अन्य कोई भी अर्थ सामने नहीं आता, अपितु केवल धात्वर्थ की प्रतीति होती है, तो हिंदी में इस प्रकार के शब्दों को भाववाचक संज्ञा कहते हैं।[२०] इस प्रकार के रूपों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

नाहक उस लड़के की जान लेना क्यों चाहते हो ! (हिन्दू०)
बर्बर हूणों से बचना कठिन है। (स्क०)
तुमसो प्रेम कथा सो कहिबो। (सूर० भ्रमरगीत)
भगत विपति भंजन। (मानस)

(ख) विशेषणवत् प्रयोग—जब क्रियार्थक संज्ञा विशेषणवत् प्रयुक्त होता है, तो उसका रूप विशेष्य के लिंग, वचन के अनुसार बदलता है, जैसे—

देखनी हमको पड़ी औरंगजेबी अंत में। (भारत भारती)
कर धरि चक्र चरन की धावनि। (सूर० १।२७९)
सो सुख लाख जाइ नहिं बरनी। (मानस)

(ग) क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग विधेय में—जब क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग विधेय में होता है, तो उसका प्राणिवाचक उद्देश्य सम्प्रदान कारक में और अप्राणिवाचक उद्देश्य कर्ताकारक में रहता है,[२१] जैसे—

तुम्हें कहना ही होगा। (स्क०)
औरौ कछू संदेस कहन को। (सूर० भ्रमरगीत)
जौ बहोरि कोउ पूछन आवा। (मानस)
जौन होए के रहल तौन होइ गइल्। (भोजपुरी)—जो होना था वह हो गया।

(घ) जातिवाचक संज्ञा के समान प्रयोग—क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग

२०—प० किशोरी दास वाजपेयी। हिन्दी शब्दानुशासन, पृ० २६६।
२१—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ६१२ पृ० ४७३ (अ)।

कभी-कभी जातिवाचक सज्ञा के समान होता है, जैसे—गाना (गीत), खाना (भोजन) उदा०—

गाना तथा रोना किसे आता नहीं। (भारत भारती)
कहा भयो पय पान कराये। (सूर० भक्ति के पद)
मुखिया मुख सो चाहिए खान पान को एक। (मानस)

क्रियार्थक सज्ञा के अन्य प्रयोग

(क) निमित्त या प्रयोजन—क्रियार्थक सज्ञा का सम्प्रदान कारक प्राय निमित्त या प्रयोजन के अथ में प्रयुक्त होता है, पर कभी-कभी उसके विभक्त्यश का लोप भी होता है,[२२] यथा—

धर म खाने को भगवान का दिया बहुत है। (गोदान)
मौत के वक्त बयान लेने फौरन आइये। (सिन्दू०)
सदेह कहन को कहि पठयो। (सूर० भ्रमरगीत)
देन आए ऊधो मत नीको। (सूर० भ्रमरगीत)
जो अवतरेउ भूमि भय टारन। (मानस)

(ख) इच्छाबोधक—बोल चाल म प्राय वाक्य की मुख्य क्रिया से निमित क्रियाथक सज्ञा इच्छा या विशेषता को प्रकट करती है। इसी प्रकार जब मुख्य क्रियापद विकारी रूप म आता है, तो इस प्रकार की यथुक्त क्रियायें इच्छाबोधक होती हैं,[२३] जैसे—

जाना तो चाहती हूँ मगर भी पास मिल जाय। (गोदान)
बीरता विदित ताको देखिए चहतु हौं। (तुलसी कवि० १।१८।
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। (मानस १।२२)
उ सुते चाहता (भोज०)[२४]—वह सोना चाहता है।

(ग) निश्चयबोधक—निश्चय क अथ में क्रियाथक सज्ञा के लिंग, वचन उद्देश्य के अनुसार होते हैं। इस अथ में यह क्रिया सबधकारक में 'नहीं' के साथ आती है,[२५] यथा—वह वहाँ नहीं जाने को।

२२—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ६१७ पृ० ४७३।
२३—वही, ६१७ (अ) पृ० ४७३।
२४—डा० तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य ६५६।
२५—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ३७३ पृ० २७२।

वर्तमानकालिक कृदंत

वतमानकालिक कृदन्त से निम्नलिखित अर्थ सूचित होने हैं —

(क) विशेषणवत् प्रयोग—वतमानकालिक कृदन्त का उपयोग विशेषण या सज्ञा के समान होता है और उसम आकारान्त शब्द की भाँति विकार होता है,[२६] जैसे—चलता आदमी, उड़ती चिड़िया। मारतों के आगे, भागतों के पीछे, डूबते को तिनके का सहारा।

जाते समय, लौटते वक्त, जीते जो, फिरती बार आदि अनेक उदाहरणों में वतमानकालिक कृदन्त का प्रयोग विशेषणवत् होता है। इन उदाहरणों में समय, वक्त, बार आदि सज्ञायें एक प्रकार से लक्षण में विशेष्य मानी जा सकती हैं, पर वास्तव में ये विशेष्य नहीं हैं-(जाते-जाने के, लौटते-लौटने के।) इस प्रकार यहाँ जाते, लौटते आदि सम्बन्ध कारक में हैं और सम्बन्ध कारक एक प्रकार से विशेषण का रूपांतर ही है,[२७] यथा—

लौटते वक्त झटके में पड़ जाना बुरा होता है। (सिन्दू०)
किते न औगुन जग करै नै वै चढ़ती बार (बिहा०)
फिरती बार मोहिं जो देवा (मानस)

चले के बेरी तुहार इहै हाल रहेला (भोज०)—चलने के समय तुम्हारी यही हाल रहती है।

वतमान कालिक कृदन्त के पुल्लिंग रूपों में विकारी तथा अविकारी दोनों प्रकार के रूप पाये जाते हैं, जिनमें विशेष्य के वचनगत, कारकगत प्रयोग के अनुसार 'ए' तथा 'ओ' विभक्ति चिह्न का प्रयोग करते हैं। स्त्रीलिंग शब्दों में ये कृदन्तज रूप विशेष्य के वचनगत तथा कारकगत प्रयोग के अनुसार विकारी रूपों का वहन नहीं करते, सर्वत्र जाती, खाती आदि रूपों का व्यवहार होता है, जैसे—

आकाश में खेलती हुई कोकिल (स्क०)
अपना मुँह दबाती हुई भीतर चली जाती है। (सिन्दू०)

किन्तु खड़ी बोली की कुछ प्रारम्भिक रचनाओं में इस प्रकार के रूप

२६—वही, ६२१ पृ० ४७५।
२७—का० प्र० गु० : हिन्दी व्याकरण ६७१ पृ० ४७५।

मिलते हैं जहाँ इकारान्त वर्तमानकालिक स्त्रीलिंग कृदन्तज रूप भी अपने विशेष्य के अनुसार विकारी रूपों का वहन करते हैं, जैसे—आतियाँ जातियाँ साँसें। (रानी केतकी की कहानी)

परिनिष्ठित हिन्दी में इसका प्रयोग नहीं होता। आज का शुद्ध प्रयोग 'आती जाती साँसें' होगा।

(ख) क्रिया विशेषणवत् प्रयोग—कभी कभी वर्तमानकालिक कृदन्त क्रिया की विशेषता बतलाता है। इस अर्थ में इस कृदन्त की द्विरुक्ति भी होती है,[२८] जैसे—

किसी प्राणी का दुःख देख आँसू बहाता हुआ रुक जाता है (चिंता०)
लरिका संग खेलत डोलत हैं (तुलसी कवि०)
राम सुभग्रहिं आवत देखा। (मानस)
उ लरिका हँसत आवत बा। (भोज०)—वह लड़का हँसता हुआ आता है।

(ग) वर्तमानकालिक कृदन्त विधेय में—वर्तमानकालिक कृदन्त विधेय में आकर कर्ता अथवा कर्म की विशेषता प्रकट करता है,[२९] जैसे—

गोबर जब अकेला गाय को हाँकता हुआ चला। (गोदान)
गोचारन को चलत (सूर० भ्रमरगीत)
ओहि मेरवत मैं पाई करना। (जायसी)
उ लरिकन के मारत जात बाटे (भोज०)—वह लड़कों को मारते हुए जाता है।

भूतकालिक कृदन्त

इस कृदन्त का निम्नलिखित अर्थों में प्रयोग होता है—

(क) विशेषणवत् प्रयोग—

मगन हुआ यौवन। (स्क०)
सूखा हुआ पेड़ (सिन्दू०)
भरा भरी से देह (विहा०)
करिल केस विसहर विस-भरे (जायसी)

२८—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण। ६२१ (इ) पृ० ४७५।
२९—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण। ६२१ (अ) पृ० ४७५

मराइल आदमी (भोज०)—मारा गया आदमी।

(ख) सज्ञावत् प्रयोग-भूतकालिक कृदन्त का प्रयोग बहुधा सज्ञा के समान भी होता है—

भूले हुए को पथ दिखाना यह हमारा काय था। (भारत०)
चढी हिंडोरे सी रहें। (बिहा०)
गई बहोरि गरीब निवाजू। (मानस)
पिटाइल के पीटब (भोज०)—पिटे को पीटना।

(ग) विधेय विशेषणवत् प्रयोग—भूतकालिक कृदन्त कभी-कभी विधेय विशेषण होकर भी आता है,[३०] यथा—

युवराज की मानसिक अवस्था बदली हुई है। (स्क०)
दरवाजे सभी खुले हुए हैं। (सिन्दू०)

(घ) भूतकालिक कृदन्त का सम्बन्धकारक में प्रयोग—भूतकालिक कृदन्त बहुधा सम्बद्ध सज्ञा के सम्बन्ध कारक के साथ प्रयुक्त होता है[३१]—

आर्य स्कदगुप्त का दिया हुआ खड्ग। (स्क०)
मेरी लिखी पुस्तकें, कपास का बना कपड़ा।

(ङ) कर्तृवाचक प्रयोग—सकमक भूतकालिक कृदन्त का प्रयोग कभी कभी कर्तृवाचक होता है और तब उसका विशेष्य कम न होकर कर्ता अथवा कोइ दूसरा शब्द होता है,[३२] जेसे, घर आया हुआ आदमी, पर कटा हुआ गिद्ध (सत्य०), नीचे लिखी हुई पुस्तकें।

कर्तृवाचक कृदन्त

कर्तृवाचक कृदन्त का प्रयोग सज्ञा अथवा विशेषण के समान होता है। इसके साथ-साथ कभी-कभी इससे आसन्न भविष्यत् का भी अर्थ सूचित होता है—

होरी ने आने वाली गाय के पुट्ठे पर हाथ रखकर कहा (गोदान)

३०—का० प्र० गु हिन्दी व्याकरण ६२२ (ई) पृ० ४७६।
३१—वही, ६२२ (ई) पृ० ४७६।
३२—वही, ६२२ (आ) पृ० ४७६।

पूर्वकालिक कृदंत

पूर्वकालिक कृदन्त के प्रयोग के कुछ सामान्य नियम नीचे दिये जाते हैं।

(क) पूर्वकालिक कृदन्त बहुधा मुख्य क्रिया के उद्देश्य से संबंधित रहता है, जो कर्ताकारक में आता है,[३३]

गोबर ने मुँह फेरकर कहा। (गोदान)
ब्रज जुवती सब दृष्टि थकित भई। (सूर० माखन चोरी)
हँसि कह रानि गालु बड़ तोरे। (मानस)
उ कुछ कहिके चलि गइल (भोज०) वह कुछ कहकर चला गया।

(ख) सकर्मक क्रियाओं में सकर्मक धातुओं से बने पूर्वकालिक क्रिया रूपों के साथ कर्म का भी प्रयोग होता है,[३४] जैसे–

होरी का मन उन गायों को देखकर ललचा गया। (गोदान)
उसकी दया को स्मरण हमारा भय बढ़ता नहीं। (चिंता०)

(ग) कभी-कभी पूर्वकालिक कृदन्त के साथ स्वतंत्र कर्ता आता है, जिसका मुख्य क्रिया के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता,[३५] जैसे–

हानि होकर यों हमारी दुर्दशा होती नहीं। (भारत०)
दृष्टि सिसौह पिय नयन किये रिसौंह नैन। (विहा०)
सुनि आचरज करै जनि कोइ। (मानस)

(घ) जहाँ प्रधान क्रिया का कर्ता आक्षिप्त होता है, वहाँ उसका आक्षेप सम्बद्ध पूर्वकालिक क्रिया के साथ भी कर लिया जाता है –[३६]

जाके सीसे में मुँह देखो। (गोदान)
तोहि कहा कहिके समुझाऊ। (नरो० सुदामा०)
बदि कहैं कर जोरि। (मानस)

(च) करना, हरना, बढ़ना और होना क्रियाओं के पूर्वकालिक कृदन्त कुछ विशेष अर्थों में प्रयुक्त होते हैं–

---

३३ का०प्र०गु० हिन्दी व्याकरण ६२७ पृ० ४८०।
३४ वही, ६२७ (अ) पृ० ४८०।
३५-वही, ६२७ (ई) पृ० ४८१।
३६ वही, ६२७ (घ) पृ० ४८१।

अधिक विशेषण—संसार में एक से बढ़कर दूसरे दुःख हैं। (सिन्दू०)
दूर क्रियाविशेषण—घर नदी से हटकर है।
नाम से सम्बन्ध सूचक—वे महत्ता करके प्रसिद्ध हैं।
तुम स्त्री होकर यह कह रही हो। (होने पर भी)

(छ) 'लेकर' कृदन्तज रूप से काल, संख्या अवस्था और स्थान का आरम्भ सूचित होता,[२७] यथा—
कालसूचक—सवेरे से लेकर शाम तक।
संख्यासूचक—दस से लेकर सौ तक।
स्थानसूचक—हिमालय से लेकर सेतुबन्ध रामेश्वर तक।
अवस्था—राजा से लेकर रंक तक।
इन सभी अर्थों में इस कृदन्त का प्रयोग प्रायः स्वतंत्र रूप में होता है।

उक्त प्रयोगों के अतिरिक्त पूर्वकालिक कृदन्त का निम्नांकित अर्थों में प्रयोग होता है—

(क) पूर्वकालिक कृदन्त से प्रायः मुख्यक्रिया के पहले होने वाला व्यापार सूचित होता है,[२८] यथा—

तुम्हारी बुद्धिमत्ता देखकर मैं प्रसन्न हुआ। (स्क०)
तनु सूखकर काँटा हुआ। (भारत०)
तुलसी रघुवीर प्रिया सम जानिकै।
बैठि बिलनु लौं कटकु काढ़ें। (तुलसी कवि०)
उ मारिके गइल (भोज०)—वह मारकर गया।

(ख) कार्यकारण बोधक—पूर्वकालिक कृदन्त से कार्य और कारण सूचित होता है—

सर्वस्व करके दान जो चालीस दिन भूखे रहे। (भारत०)
माता पिता को हेत जानिके कान्ह मधुपुरी आए। (सूर० भ्रमर०)
अरि करनी करि करिअ लराई। (मानस)
उ दउरि के आव ता (भोज०)—वह दौड़कर आता है।

---

२७ का०प्र०गु० हिन्दी व्याकरण ६२७ (ज पृ० ४८१।
२८ वही, ५७६, पृ० २७५।

(ग) विरोध सूचक—पूर्वकालिक कृदन्त से कभी-कभी विरोध सूचित होता है[३९], यथा-

हम भूप होकर भी कभी होते न भोग-सक्त थे। (भारत०)

प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं। (मानस)

(घ) द्वारा—

राय साहब को भी दबाकर सुलह करा दीजिए। (हिन्दू०)

सुरति सँदेस सुनाय मेटो बल्लभिन को दाहु। (सूर० भ्रमरगीत)

भय दिखाइ ले आवहु तात सखा सुग्रीव। (मानस)

(ङ) रीति—वह भोजन कर पुस्तक पढ़ता है।

तात्कालिक कृदंत

इस कृदत से निम्नलिखित अर्थ सूचित होते हैं—

(क) तात्कालिक कृदंत से मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की समाप्ति का बोध होता है[४०], जैसे—

उसके जाते ही उसका काम सफल हो गया।

ताते जल देखत ही भजि जाते। (सूर० भ्रमरगीत)

छुवतहिं टूट रघुपतिहिं न दोसू। (मानस)

राम के जातै घर मिलि गइल। (भोज०) राम के जाते ही घर मिल गया।

(ख) इस कृदंत की कभी-कभी पुनरुक्ति होती है[४१], यथा-

मेरे देखते ही देखते वह भाग गया।

आप सोते ही सोते दिन बिताते हैं।

(ग) तात्कालिक कृदंत का कर्ता कभी-कभी मुख्य क्रिया का कर्ता और कभी-कभी स्वतन्त्र होता है[४२], यथा-

उसके आते ही उपद्रव मच गया।

उसने जाते ही उपद्रव मचाया।

---

३९ का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ३७६ (४) पृ० २७५।

४०—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ६२६, पृ० ४७६।

४१—वही। ६२६ पृ० ४७९

४२ -वही, ६२६ (आ) पृ० ४७६।

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत का प्रयोग निम्नलिखित स्थितियों म होता है--

(क) अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत अविकारी रूप म आता है। यह क्रिया विशेषण के समान प्रयुक्त होता है[४३], यथा—
मैंने तुम्हें तैरते आते देखा। (गोदान)
बढ़त देखि जल सम बचन। (मानस

(ख) अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत का उपयोग बहुधा तभी होता है, जब कृदत और मुख्य क्रिया के उद्देश्य भिन्न भिन्न होते हैं। कभी कभी कृदत का उद्देश्य लुप्त भी रहता है[४४], यथा-
देवकी के रहते तुम किस साहस मुझे महादेवी कहते हो। (स्क०)
मो देखत कन्हैं हसि माधव पगु है धरनि धर। (सूर० माखन०)
गारी देत न पावहु सोभा। (मानस)

(ग) वाक्य में जब कर्ता और कर्म अपनी विभक्ति के साथ प्रयुक्त होते हैं, तब उनका वर्तमानकालिक कृदत अविकारी रूप म उनके पीछे आता है और साधारणतया उसका प्रयोग क्रिया विशेषणवत् होता है[४५], यथा-
मैंने उस शैतान के बच्चे को सिखलाते हुए कि कह देना
साहब से तुम उस लौंडे के नातेदार हो। (सिन्दू०)

(घ) इस कृदत का प्राय द्विरुक्ति होती है। इससे नित्यता का बोध होता है[४६], यथा-
आप भी तो रहते रहते सपना देखने लगते है। (सिन्दू०)
कवि जन कहत कहत चलि आये (सूर० भ्रमरगीत)
बढ़त बढ़त सपति सलिल। (विहा०)

(च) अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदत के पश्चात् 'भी' अव्यय जोड़ने से विरोध सूचित होता है[४७], यथा-

---

४३— वही, ६२४, पृ० ४७७।
४४—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ६२४ (अ) पृ० ४७७।
४५—वही, (आ) पृ० ४७७।
४६—वही, पृ० ४७७।
४७—का प्र गु हिन्दी व्याकरण ६२४ पृ० ४७७।

यह सब होते हुए भी यह आपका घर है। (हिन्दू०)

बहुत से लोग इच्छा रखते हुए भी बुरे काम लज्जा के मारे नहीं करते। (चिन्ता०)

(छ) अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदत का कर्ता कभी कर्ताकारक में, कभी स्वतन्त्र होकर, कभी सम्प्रदान कारक में और कभी सम्बन्ध कारक में आता है[४८], यथा-

स्कद के जीवित रहते स्त्रियों को शस्त्र चलाना पड़ेगा। (स्क०)
मैंने कुत्ते के कई शौकीनों को अपने कुत्ते की बदतमीजी पर शरमाते देखा है। (चिन्ता०)
यह प्रकट करते नहीं बनता। (चिन्ता०)

(ज) वर्तमानकालिक कृदत और अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदत कभी कभी समान अर्थ में प्रयुक्त होते हैं[४९], यथा-

लड़के को मरता देखकर वह रो उठी। (वर्तमानकालिक कृदत)
राम को स्कूल जाते देखकर वह दौड़ पड़ा। (अपूर्ण क्रिया-द्योतक कृदत)

(झ) 'बनना' क्रिया के योग में अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदत से योग्यता-बोधक क्रिया की रचना होती है[५०], यथा

उससे खाते नहीं बनता।
मुझसे चलते नहीं बनता।

वर्तमानकालिक कृदत के पुल्लिंग बहुवचन के रूप तथा अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदत के रूपों में रचना की दृष्टि से कोई अंतर नहीं होता, केवल प्रयोग में भेद है यथा—

लोग जाते हुए दिखाई देते हैं। (वर्तमानकालिक)
धन रहते वह कुछ न कमायेगा। (अपूर्ण क्रियाद्योतक)

पूर्ण क्रियाद्योतक कृदत

पूर्ण क्रियाद्योतक कृदत का निम्नलिखित स्थितियों में उपयोग होता है—

४८—वही, ६२४ (ई) पृ० ४७७।
४९—वही, (उ) पृ० ४७७।
५०—वही, ४१६, पृ० ३२१।

(क) इस कृदंत से साधारणतया मुख्य क्रिया के साथ होने वाले व्यापार की पूर्णता सूचित होती है—

जिसके बीच में नाट बँधे हैं। (हिन्दू॰)

तुमही बदत हम पढ़े एक साथ हैं। (नरो॰ सुदामा॰)

बैठे सोह कामरिपु कैसे। (मानस)

(ख) पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत से कभी कभी रीति सूचित होती है—

लोग हँसी के मारे लोटे जाते थे। (गोदान)

(ग) पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत सदा अविकारी रूप में रहता है। इसका प्रयोग क्रियाविशेषण के समान होता है,[५१] यथा—

अभी उसके बाप को मरे साल भर हो रहा है। (हिन्दू॰)

अति सुंदर सोहत धूरि भरे। (तुलसी कवि॰)

(घ) पूर्णक्रियाद्योतक कृदंत प्रायः तभी प्रयुक्त होता है, जब इसका तथा मुख्य क्रिया का कर्ता भिन्न भिन्न होता है,[५२] यथा—

गरम किये हुए लाडू प्रस्तुत हैं। (स्क॰)

(च) सकर्मक पूर्णक्रियाद्योतक कृदंत से क्रिया और उद्देश्य की दशा सूचित होती है,[५३] यथा—

भोला अपनी गायें लिये, इसी तरफ चला आ रहा है। (गोदान)

पाव सेर चाउर लिये आई सहित हुलास। (नरो॰ सुदामा॰)

(छ) इस कृदंत की द्विरुक्ति होने पर नित्यता तथा अतिशयता का बोध होता है,[५४]

क्या बैठे बैठे काम चल जाता है। (स्क॰)

चारपाई पर पड़े पड़े लिहाफ के नीचे भी लोग ग्लानि से गल सकते हैं। (चिंता॰)

(ज) पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत का सम्बन्ध प्रायः कर्ता के साथ होता है, परन्तु कभी कभी उसका सम्बन्ध कर्म से रहता है,[५५] यथा—

---

५१ का॰प्र॰ गु॰ हिंदी व्याकरण। ६२५, पृ॰ ४७८।

५२ का॰प्र॰ गु॰ हिंदी व्याकरण,। ६२५, पृ॰ ४७८।

५३ वही, (वा पृ॰ ४७८।

५४ वही, ६२५, पृ॰ ४७८।

५५ वही, ६२५, पृ॰ ४७८।

पर धिक् ! हमारे स्वार्थमय सूखे हुए अनुराग को। (भारत०)

इस वाक्य में कृदत का सम्बन्ध कर्म से है। 'उसने चलते हुए उसको बुलाया।' इसमें कृदत का सम्बन्ध कर्ता से है।

सयुक्त क्रियायें

सयुक्त क्रियाओं के विविध रूपों से आवश्यकता, आरम्भ, अनुमति, अवकाश, नित्यता, अपूर्णता, निरतरता, निश्चय, तत्परता, इच्छा, अभ्यास, अधिक निश्चय, शक्ति पूर्णता आदि भाव सूचित होते हैं। इस आधार पर सयुक्त क्रियाओं को निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत कर अध्ययन किया जा सकता है –

(१) **आवश्यकताबोधक क्रिया**—यह सयुक्त क्रिया क्रियार्थक सज्ञा के साधारण रूप के सयोग से निर्मित होता है। इससे कार्य की आवश्कता का अर्थ द्योतित होता है—

अब हमारी तपस्या वो मुनियों की सेवा म बाधा करने चाहता है
(नासिके० पृ० १३)

अब मुझे इनके पास जाना पड़ा। (शकु० १।४८)

तथापि उसके धर्म की एक बेर परीक्षा लेनी चाहिए। (सत्य० १।४)

स्वच्छदता से कर मुझे करने पड़ प्रस्ताव जो, (भारत०)

घटे भर के बाद मुझे चला जाना पड़ेगा। (हिन्दू०)

साहब से इसकी शिकायत करनी चाहिए। (वही)

(२) **आरम बोधक क्रिया**—इस क्रिया को रचना क्रियार्थक सज्ञा के विकृत रूप से होती है। इससे कार्य के आरम्भ की सूचना मिलती है, उदा०—

राजा परीक्षित सब देश जीत धमराज करने लगे। (प्रेम०)

हाथ जोड़ कहने लगे। (नासि० पृ० २)

दुभावना की वारि से उग वह बड़ा होने लगा। (भारत०)

कहन लगे मोहन मैया मैया। (सूर० बाललाला)

लगे कहन हरि कथा रसाला। (मानस)

(३) **अनुमतिबोधक क्रिया**—क्रियार्थक सज्ञा के विकृत रूप में 'देना' क्रिया का सयोग होने से इस क्रिया की रचना होती है और इसमे 'अनुमति' के अर्थ की सूचना मिलती है, यथा—

जाने दीजिए, बच्चा मुझे न चाहिए (चिंता०)

गेलन फिरा देव (ठाकुर)

(४) अवकाशबोधक क्रिया—इस क्रिया में अनुमति बोधक क्रिया के विरुद्ध अर्थ सूचित होते हैं। इसमें कार्य के विषय में 'अवकाश' का अर्थ द्योतित होता है, यथा—

धर्म, तप और राम का नाम करने न पावै। (प्रेम०)
साठे तक पहुँचने की नौबत न पायेगी धारा। (गोदान)
चलन न पावत निगम मग (निहा०)
चलत न देखन पायउँ तोही। (मानस)

(५) नित्यताबोधक क्रिया—इस क्रिया की रचना वर्तमानकालिक कृदंत के संयोग से होती है। वर्तमानकालिक कृदंत के पश्चात् 'आना', 'जाना' और 'रहना' क्रियाओं का प्रयोग नित्यता के अर्थ की सूचना देता है, यथा—

एक शूद्र मारता आता है। (प्रेम०)
दिन पर दिन दुबली होती जाती है। (शकु० ३ ७०)
उनके और आपके बीच हाई कोर्ट तक लड़ता गया है। (सिन्दू०)
स्वाति बूँद के काज पपीहा छिन-छिन रटत रहात। (सूर० भ्रमरगीत)

(६) अपूर्णता बोधक क्रिया—वर्तमानकालिक कृदंत के पश्चात् 'रहना' क्रिया के सामान्य भविष्यत्काल के रूप संयुक्त होने पर कार्य की अपूर्णता का बोध होता है, यथा—

जब वह जायगा, तो तुम पड़े रहोगे।

(७) निरंतरता बोधक क्रिया-अधिकांश भारतीय आर्यभाषाओं में वर्तमानकालिक कृदंत के साथ 'आना' 'रहना' और 'जाना' के संयोग से क्रमशः भूत, वर्तमान और भविष्य की निरंतरता का बोध होता है,[४६] यथा—

हम इस कार्य को वर्षों से करते आये हैं।
वह निरंतर रुदन करती रहती है।
आप सदा यह पाठ रटते जायेंगे।

(८) निश्चय बोधक क्रिया-चलना क्रिया के वर्तमानकालिक कृदंत के साथ 'होना' या 'बनना' क्रिया के सामान्य भूतकाल के रूप लगाने से पिछली क्रिया का निश्चय सूचित होता है,[४७] यथा—

---

४६ का०प्र०गु० : हिन्दी व्याकरण ४०६ (३)।
४७ वही, ४०७ (ख)

वह गठरी लेकर चलता बना।

(६) तत्परता बोधक क्रिया—अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदत के अनतर 'जाना' क्रिया का प्रयोग करने से कार्य के विषय म 'तत्परता' का बोध होता है। इस क्रिया का उपयोग केवल वर्तमानकालिक कृदत से बने हुए कालों मे होता है,[५८] यथा—

जिसके लक्षणों का न तो वर्णन किया जाता है। (नासि० ५)
सिंधु की लोल लहरियों से लिखी जाती है।(स्क०)
हडी जानि कितहू गुडी (बिहा०)

'चलना' क्रिया के अनतर 'जाना' क्रिया का उपयोग होने पर बहुधा पिछली क्रिया का निश्चय सूचित होता है,[५९] यथा—

आशीर्वाद देता चला जाता है।
चले जात मुनि दीन्ह देखाई। (मानस)

इसी अथ में कुछ पयायवाची क्रियाओं क साथ 'पड़ना' जोड़ा जाता है,[६०] यथा—

वह कूदो पड़ती है।

(१०) इच्छा बोधक क्रिया—भूतकालिक कृदत के पश्चात् 'चाहना' क्रिया के सयोग होने पर 'इच्छा' का अथ द्योतित होता है, इस प्रकार के प्रयोग प्राय खड़ीबोली की प्रारंभिककृतियों तथा मध्ययुगीनहिंदी की कृतियों म उपलब्ध होते हैं, यथा—

महाराज, जो नारायन को जीता चाहते हो तो उनने घर म आठ पहर है। (प्रेम०)
म एक दूसर स्थान म जाया चाहता हूँ। (नासि०११)
सखी का प्यार मुझसे कहलाया चाहता है। (शकु० ३७६)
कहा कर्‌यो चाहत। (सूर० भ्रमरगीत)
देखा चहौं, जानकी माता। (मानस)

परिनिष्ठित हिन्दी में इस अथ म भूतकालिक कृदत के स्थान पर क्रियार्थक सज्ञा का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा जाता है, यथा जीता चाहते हो-

---

५८ वही, ४०८।
५९ वही, ४०८ (ख)
६० का०प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ४०८ (आ)।

जीतना चाहते हो, जाया चाहती हूँ—जाना चाहती, हूँ कहलाया चाहता है–कहलाना चाहता है, इत्यादि आज के शुद्ध प्रयोग माने जाते हैं।

(क) इच्छाबोधक क्रिया के रूप में 'चाहना' का आदर सूचक रूप चाहिए भी प्रयुक्त होता है, यथा–

महाराज, अब कहीं बलराम जी का विवाह किया चाहिए। (प्रेम०)

अवसि सीस धर चाहिय काहा। (मानस)

'चाहिए' से यहाँ कर्तव्य का बोध होता है और यह क्रिया भावे प्रयोग में आती है।

(ख) कभी-कभी इच्छाबोधक क्रिया से आसन्न भविष्यत् का बोध होता है, यथा—

रानी रोहिताश्व का मृत कम्बल फाड़ा चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है। (सत्य०)

तू जय शब्द कहा चाहती थी, सो आँसुओं ने रोक लिया। (स्क०)

ठीक इसी अर्थ में कर्तृवाचक संज्ञा के साथ 'होना' क्रिया के सामान्य कालों के रूप जोड़ते हैं, यथा—

सौराष्ठ से अब नवीन समाचार मिलने वाला है। (स्क०)

(ग) इच्छाबोधक क्रियाओं में क्रियार्थक संज्ञा के अविकृत रूप का प्रचुर प्रयोग प्रायः सर्वत्र मिलता है,[६१] यथा

मैंने तपस्वी की कन्या को रोकना चाहा। (शकु०)

(११) **अभ्यासबोधक क्रिया**—भूतकालिक कृदंत के पश्चात् 'करना' क्रिया का प्रयोग करने पर कार्य के अभ्यास का बोध होता है, यथा—

बारह बरस दिल्ली रहे पर भाड़ ही झोंका किये। (भारत०)

(१२) **अवधारण बोधक**—इस क्रिया से मुख्य क्रिया के अर्थ में अधिक निश्चय प्रकट होता है। इन क्रियाओं का प्रयोग व्यवहार के अनुसार होता है। उठना आना, जाना, लेना, देना, पड़ना, डालना, रहना, रखना, निकलना आदि क्रियायें इसी प्रकार की हैं।[६२] इनके प्रयोग के नियम नीचे दिये जाते हैं—

६१—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण। ४०९

६२—का० प्र० गु० हिन्दी व्याकरण ४०६।

(क) उठना—इस क्रिया से अचानकता का बोध होता है, यथा—

अपना जोग साधने को गंगा के तीर पर जा बैठा। (प्रेम०)
मुझे देखकर जल उठती थी। (गोदान)
मोहि देखत कहि उठी। (सूर० भ्रमरगीत)

(ख) आना—'आना' क्रिया का कई स्थानों पर स्वतंत्र अर्थ पाया जाता है, जैसे—कलसा ले आओ। (गोदान) (ले आओ—लेकर आओ।)

दूसरे स्थानों पर इससे यह सूचित होता है कि क्रिया का व्यापार वक्ता की ओर से होता है,[६३] यथा—

यह जहाँ जाते हैं, कुछ न कुछ घर से खा आते हैं। (गोदान)
इनके कुल ऐसी चलि आई। (सूर० भ्रमरगीत)
पारस रूप इहाँ लगि आई। (जायसी)

(ग) जाना—इस क्रिया का प्रयोग कर्मवाच्य और भाववाच्य बनाने में होता है, जिससे अनेक सकर्मक क्रियायें अकर्मक बन जाती हैं,[६४] जैसे—

पिरथी अपने रूप में मिल गई। (प्रेम०)
चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। (गोदान)
मन सरोज बढ़ि जाय। (बिहा०)
सो मो सन कहि जात न कैसे। (मानस)

स्थिति या विकार दर्शक अकर्मक क्रियाओं के साथ इसका प्रयोग बहुधा पूर्णता के अर्थ में होता है,[६५] यथा—हो जाना, बन जाना, फैल जाना, बिगड़ जाना, मर जाना इत्यादि।

कभी-कभी जाना क्रिया के योग से व्यापार दर्शक क्रियाओं में शीघ्रता का बोध होता है,[६६] जैसे—सो जाना, खा जाना, पीजाना इत्यादि।

कभी-कभी जाना क्रिया का अर्थ स्वतंत्र होता है, जैसे-
पढ़ आओ-पढ़कर जाओ, लिख जाओ-लिखकर जाओ।

(घ) लेना-यह क्रिया उस क्रिया के साथ प्रयुक्त होती है, जिसका व्यापार

६३—वही, ४१२।
६४—वही, ४१२।
६५ का० प्र० गु० हिंदी व्याकरण, । ४१२।
६६ वही, । ४१२।

के फल का प्रभाव कर्ता पर पड़ता है। ऐसी संयुक्त क्रियाओं का अर्थ संस्कृत के आत्मनेपद की भाँति होता है,[६७] यथा–खा लेना, पी लेना करलेना, समझ लेना इत्यादि।

(च) देना–इस क्रिया का अर्थ 'लेना' क्रिया के विरुद्ध होता है। इस क्रिया का उपयोग तभी होता है, जब इसके व्यापार का प्रभाव कर्ता पर न पड़कर दूसरे पर पड़ता है,[६८] जैसे–कहदेना, सुनादेना, रुलादेना, खिला देना, पिला देना इत्यादि। उदाहरण–

मरा सप ले ऋषि के गले में डाल दिया। (प्रेम०)
होरी से सारा समाचार कह देना चाहिए था। (गोदान)
किसी को धूल म मिला देना – –। (चिंता०

'देना' का प्रयोग प्रायः सकमक क्रियाओं के साथ होता ह,[६९] जैसे–मारदेना, खोदेना, त्याग देना इत्यादि।

परन्तु कुछ अकमक क्रियायें ऐसी हैं, जिनके साथ देना' क्रिया का उपयोग 'अचानकता' के अर्थ म होता है,[७०] जैसे––चलदेना, हस देना, रोदेना इत्यादि।

मारना, पटकना जैसी कुछ क्रियाओं के साथ कभी कभी 'देना' क्रिया का प्रयोग पहले होता है,[७१] यथा–दे मारा, दे पटका इत्यादि। 'लेना' और 'दना' अपने अपने कृदतज रूपों के साथ भी प्रयुक्त होते ह,[७२] जैसे-ले लेना, दे देना इत्यादि।

(छ) पड़ना–इस क्रिया का अर्थ अवधारण बोधक क्रियाओं में 'जाना' के समान होता है। यही कारण है कि इसके सयोग स अनेक सकमक क्रियायें अकमक क्रियाओं के रूप में परिणत हो जाती हैं, यथा–जानना–जान पड़ना, देखना देख पड़ना, सूझना–सूझ पड़ना, समझना समझ पड़ना इत्यादि। उदा०—

---

६७ वही। ४१२।
६८ वही, । ४१२।
६९ वही, । ४१२।
७० का०प्र० गु हिन्दी व्याकरण। ४१२।
७१ वही। ४/२
७२ वही। ४१२

यह तो कोई बड़ा प्रतापी जान पड़ता है। (शकु०)
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय। (रहीम)
अस कछु समुझि परत रघुराया। (मानस)

अकर्मक क्रिया के साथ 'पड़ना' का अर्थ 'घटना' होता है, जैसे—आ पड़ना, गिर पड़ना, कूद पड़ना, इत्यादि। उदा०—

देखो हमारी तपस्या में विघ्न आ पड़ा। (नासि०)
ऐसी नारी पाकर मैं उसके चरणों में गिर पड़ूँगा। (गोदान)
लड़खड़ाकर मुँह के बल गिर पड़े। (चिंता०)
कलयुग हमस्यूँ लड़ि पड्या। (कबीर)

'पड़ना' के बदले कभी-कभी 'बनना' क्रिया के साथ उसी अर्थ में 'आना' क्रिया प्रयुक्त होती है, यथा—

उसकी छवि देखते ही बन आती है।
देखे है बनि आवे। (सूर० भ्रमरगीत)
बन आती है—बन पड़ती है।

(ज) डालना—यह क्रिया केवल सकर्मक क्रियाओं के साथ प्रयुक्त होता है। इस क्रिया से बहुधा उग्रता का बोध होता है,[73] यथा मार डालना, काट डालना, तोड़ डालना, फोड़ डालना आदि।

और कंस ने वसुदेव से बालक ले मार डाला। (प्रेम०)
एक बकरा खाकर हजम कर डालते थे। (गोदान)
किसी का घर खोदकर तालाब बना डालना तो मामूली बात है। (चिंता०)
सूर काढ़ि डार्यौ हौ ब्रज तें दूध माझ की माखी। (सूर० भ्रमर गीत)

(झ) रखना—इस क्रिया का प्रयोग बहुधा कम होता है। इसका अर्थ 'लेना' क्रिया के समान होता है,[74] जैसे रोक रखना, छोड़ रखना, सुन रखना इत्यादि।

---

७३ का०प्र०गु० ; हिन्दी व्याकरण ४१२।
७४ वही। ४१२

(१६) निश्चयबोधक क्रिया—पूर्ण क्रियाबोधक कृदन्त के अनन्तर लेना, देना, डालना और बैठना अवधारणबोधक सहायक क्रियायें जोड़ने से कार्य के विषय में निश्चय का बोध होता है। ये क्रियायें प्रायः सकर्मक क्रियाओं के साथ वर्तमानकालिक कृदन्त में बने हुए का [illegible] में ही आती हैं[79], यथा-

यदि कोई वस्तु उठाए लिए जाता हो। ([illegible]०)

कहै दृति यह रावरी सबगुन बिन गुन माल। (बिहा०)

(१७) नामबोधक क्रिया—ऐसी क्रियायें संज्ञा या विशेषण के संयोग से निष्पन्न होती हैं[80], यथा-भस्म होना, भस्म करना, स्वीकार करना, मोल लेना इत्यादि।

पुनरुक्त संयुक्त क्रियायें—कभी-कभी वक्ता एक ही अर्थ के द्योतन के लिये समान अर्थ या ध्वनि वाली दुहरी क्रियाओं का प्रयोग करता है। ऐसी क्रियाओं को पुनरुक्त संयुक्त क्रिया के नाम से अभिहित किया जाता है, यथा—समझना-बूझना, लाप-पात, [illegible] फिरत, खेलत डोलत इत्यादि। उदा०—

चरत फिरत निधरक मृग छौना। (रामु० १।१५।६४)

सरजू तट खेलत-डोलत हैं। (तुलसी० कवि०)

नारदमुनि यों समुझाय बुझाय चले गये। (प्रेम०)

बहुत सुन्दर लीप पोत आप गंगा के तीर जा बैठी। (नासि० १५)

उक्त संयुक्त क्रियाओं में से आवश्यकता बोधक, आरम्भबोधक, अवधारण बोधक, शक्तिबोधक, पूर्णताबोधक, नामबोधक और नित्यता बोधक क्रियाओं का प्रयोग कर्मवाच्य में होता है। भाववाच्य में केवल नामबोधक और पुनरुक्त अकर्मक क्रियायें प्रयुक्त होती हैं—जैसे, उसका दुःख देखकर मुझसे रहा नहीं जाता। तुमसे चला फिरा नहीं जाता।

●

७९—का० प्र० गु० : हिन्दी व्याकरण ४१६।

८०—वही, ४२०, २१।

उपसंहार

जिस प्रकार भाषा की मुख्य इकाई वाक्य है, उसी प्रकार वाक्य का प्राणभूत तत्त्व क्रिया है। वाक्य की विधेयता क्रिया के द्वारा ही संभव है। अनेक वैयाकरणों ने तो क्रिया के मूल रूप धातु को, जैसा कि पहले ही बतलाया गया है, प्रकृति की संज्ञा दी है और उसकी सत्ता को सर्वव्यापी बतलाया है। कुछ वैयाकरणों ने तो यहाँ तक कहा है कि अकेले क्रिया में वाक्य निर्माण की शक्ति निहित है। क्रियाविशेषण क्रिया की विशेषता बतलाते हैं। इसी प्रकार उपसर्ग तथा निपात का संज्ञा अथवा क्रिया से अलग कोई अस्तित्व नहीं। वे इनसे पृथक् होकर निरर्थक हो जाते हैं। क्रियाओं के द्वारा काल, भाव, दशा तथा अन्य अनेक अर्थ सूचित होते हैं। वे संज्ञा विशेषण, अव्यय की भाँति भी प्रयुक्त होती हैं।

क्रियाओं के मुख्य दो रूप प्राप्त होते हैं—तिङन्त और कृदंत। तिङन्त रूपों का प्रयोग बहुधा काल-रचना में होता है और कृदंत संज्ञा, विशेषण व अव्यय की भाँति प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत में तिङन्त रूपों का पर्याप्त प्रसार होने के कारण कृदंत रूपों का प्रयोग काल-रचना में उतना महत्त्व नहीं रखता था, जितना आज हिंदी में। हिंदी में कृदंतों का प्रयोग, विशेषण, अव्यय के अतिरिक्त काल-रचना में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जाता है, गया, गया है आदि कृदंतज रूप हैं, जोकि वर्तमान, भूत आदि कालों की सूचना देते हैं। जाता हुआ, गया हुआ, क्रमशः वर्तमानकालिक और भूतकालिक कृदंतज रूप विशेषणवत् प्रयुक्त होते हैं।

हिंदी की समापिका और असमापिका दो क्रियायें क्रमशः काल-रचनागत और कृदंतगत प्रयुक्त होती हैं। परंतु असमापिका क्रिया के सम्बन्ध में भाषावैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं है। हिंदी के अधिकांश व्याकरणों में काल-रचना में प्रयुक्त होने वाली क्रियाओं को समापिका तथा कृदंतवत् प्रयुक्त होने वाली क्रियाओं को असमापिका क्रिया के नाम से अभिहित करने की स्वीकृति दी गई है। कुछ भाषावैज्ञानिक कृदंतज रूपों को क्रिया नहीं मानते, जबतक कि वे काल-रचना में प्रयुक्त न हुए हों, उन्हें वे संज्ञा, विशेषण या अव्यय की संज्ञा देते हैं। बात तथ्य की जरूर है, परंतु कृदंतज रूप चाहे वे

वाक्य में काल-रचना की शक्ति रखते हों, अथवा संज्ञा, विशेषण, अथवा अव्ययवत् प्रयुक्त हुए हैं, उनका मूल रूप ढूंढने पर हम पाते हैं कि दोनों रूप धातु से ही बनते हैं, यथा—लड़का जाता है, 'जाता हुआ लड़का दिखाई दिया'। इन वाक्यों में प्रयुक्त 'जाता है' और 'जाता हुआ' दोनों का मूल रूप एक ही धातु 'जा' है। अतः यह कहना बड़ी भूल की बात होगी कि कृदन्त रूपों को धातुरूपों (क्रिया रूपों) के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

अधिकांश भाषाओं में हम यह पाते हैं कि काल रचना क्रिया रूपों द्वारा ही मिलती है। प्रायः समस्त वैयाकरणों को यह बात इतनी स्वाभाविक प्रतीत हुई कि उन्होंने काल विभाग को क्रिया का मुख्य-लक्षण ही मान लिया। लेकिन अनेक भाषायें ऐसी हैं, जिनकी अनेक क्रियायें काल रूपान्तर नहीं रखतीं। अंग्रेजी की Must and ought ऐसी ही क्रियायें हैं जोकि आधुनिक रूप में (आधुनिक अंग्रेजी में) केवल एक काल-रखता हैं। इसके विपरीत क्रियाओं के अतिरिक्त दूसरे शब्दों द्वारा भी काल व समय की सूचना मिलती है, यथा—१६ अक्तूबर, १९६७ को प्रात ६ बजे।[1] अतः क्रिया का अध्ययन केवल काल रचना के ही आधार पर नहीं होना चाहिए अपितु उसके प्रयोग पर भी सम्यक् विचार कर उसकी व्याख्या होनी चाहिए।

धातु क्रियाओं के बीज हैं, जो अंकुरित होकर अनेक शाखाओं प्रशाखाओं में विभक्त होकर विविध रूपों को जन्म देते हैं। इनमें विभिन्न प्रत्ययों के संयोग से अर्थद्योतन की क्षमता ले आते हैं। धातुओं के मुख्यतया दो रूप मूल और यौगिक उपलब्ध होते हैं। संस्कृत व्याकरण में मूल और प्रत्ययांत धातुयें (णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त और नाम धातु) पाई जाती थीं। णिजन्त (प्रेरणार्थक) और नाम धातुओं के पर्याप्त प्रयोग हिन्दी में तो मिलते ही हैं, परन्तु यौगिक धातुओं का एक रूप 'संयुक्त धातुयें' भी यहाँ उपलब्ध हैं, जोकि अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। संयुक्त धातु रूपों के छिटपुट उदाहरण अपभ्रंश व पुरानी हिन्दी की कृतियों में पाये जाते हैं। हिन्दी में संयुक्त धातुओं (संयुक्त क्रियाओं) के प्रचुर उदाहरण

१—Jespersen–Philosophy of Grammar page 155.

मिलते हैं। इन संयुक्त क्रियाओं से अवकाश, नित्यता, अपूर्णता, निरन्तरता अभ्यास, इच्छा आदि अनेक भाव सूचित होते हैं।

लिंग, पुरुष और वचन की दृष्टि से भी हिन्दी क्रियाओं का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत क्रियाओं में लिंग के फलस्वरूप कोई रूपान्तर नहीं होता है। वहाँ पुल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग सबके लिये एक ही रूप चलते हैं। पुरुष और वचन की दृष्टि से अवश्य रूपांतर होते हैं। हिन्दी में 'लिंग' एक समस्या बन गई है। यहाँ लिंग, पुरुष और वचन तीनों के अनुसार क्रिया में रूपान्तर दृष्टिगोचर होते हैं। हिन्दी में कर्तृ, कर्म और भाववाच्य रूप हिन्दी क्रियाओं के अध्ययन में आवश्यक हाथ रखते हैं। 'रामने पुस्तक पढ़ी' जैसे प्रयोग संस्कृत की पद्धति पर (रामेण पुस्तक पठितम्) कर्मवाच्य की भाँति दिखाई देते हैं, परन्तु वास्तव में इनकी रचनागत मान्यता कर्तृवाच्य के अन्तर्गत ही आती है, हिन्दी क्रियाओं की शृंखला प्रा॰ भा॰ आ॰ से सम्बद्ध है, अतएव उसी क्रम से [प्रा॰ भा॰ आ॰, म॰ भा॰ आ॰, पुरानी हिन्दी, मध्ययुगीन हिन्दी, आधुनिक हिन्दी (खड़ी बोली)] प्रस्तुत प्रबन्ध में विचार किया गया है।

सहायक ग्रन्थ

संस्कृत

१ पाणिनि —अष्टाध्यायी

२ यास्क —निरुक्त

३ पतजलि —महाभाष्य

४ जगदीश —शब्दशक्ति प्रकाशिका

५ हेलाराज —भर्तृहरि वाक्यपदीयम्

६ प० गोपालशास्त्री नेने —वैयाकरणभूषणसार

७ सूर्यनारायण शुक्ल —वैयाकरण सिद्धान्त लघुमजूषा

८ मथुराप्रसाद दीक्षित —वररुचि प्राकृत प्रकाश

९ अनन्तदेव —मीमांसा यायप्रकाश

१० पण्डितराज श्री वेणीमाधव शास्त्री–व्युत्पत्तिवाद

११ वासुदेव —राजशेखर-कर्पूरमजरी

हिन्दी

१ कामता प्रसाद गुरु —हिन्दी व्याकरण (सशोधित सस्करण) नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

२ किशोरीदास वाजपेयी —हिन्दी शब्दानुशासन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

३ धीरेन्द्र वर्मा —ब्रजभाषा व्याकरण, रामनारायण लाल, इलाहाबाद।

४ तेस्सितोरी —पुरानी राजस्थानी (अनु॰ डॉ॰ नामवर सिंह) नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

५ बाबूराम सक्सेना —दक्खिनी हिन्दी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

६ हजारीप्रसाद द्विवेदी एव विश्वनाथ त्रिपाठी —सदेशरासक, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई।

७ धीरेन्द्र वर्मा —हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग।

८ उदयनारायण तिवारी —हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग।

९ नामवर सिंह —हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

१० उदयनारायण तिवारी —भोजपुरी भाषा और साहित्य, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।

११ श्याम सुन्दरदास —भाषा विज्ञान, तृतीय संस्करण, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

१२ बाबूराम सक्सेना —सामान्य भाषा विज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

१३ श्याम सुन्दरदास —हिन्दी भाषा और साहित्य।

१४ आर० पिशेल —प्राकृत भाषाओं का व्याकरण (अनु० डॉ० हेमचन्द्र जोशी) बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना।

१५ रामचन्द्र शुक्ल —जायसी ग्रन्थावली, नागरी प्रचारणी सभा, काशी।

१६ भोलाशंकर व्यास —संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन, भारतीय ज्ञान पीठ, वाराणसी।

१७ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी —पुरानी हिन्दी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

१८ भोलाशंकर व्यास —प्राकृतपैंगलम् (भाषाशास्त्रीय और छन्द शास्त्रीय अनुशीलन) भाग २

१९ शिवप्रसाद सिंह —सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य

२० टी० बरो —संस्कृत भाषा (अनु० डा० भोलाशंकर व्यास)

२१ सुनीति कुमार चाटुर्ज्या —भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी

२२ शिवप्रसाद सिंह —कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा, साहित्य भवन, लिमिटेड, इलाहाबाद।

8 R Hoernle —A comparative Grammar of the Gaudian Languages London 1880

9 S K Chatterji —The Origin and Development of Bengali Language Calculta 1926

10 P L Vaidya —Hem Chandra's Prakrit Grammar poona 1928

11 S K Chatterji —Ukti-Vyakti Prakarana of Damodara Bombay, 1953

12 N B Divatia —Gujarati Language and Literature Poona 1921.

13 G A Grierson —Linguistic Survey of India

14 P C Chakravarti —The Linguistic Speculation of Hindus

15 Otto Jespersen —Philosophy of Grammar

16 Aristotle —Poetics

17 Sayce —The Science of Language

18 Whitney —Sanskrit Grammar

19 M R Kale —Higher Sanskrit Grammar

20 A Macdonell —A Vedic Grammar for students, Oxford University Press

21 A Barua —Introduction to Pali

22 W Geiger —Pali Literature and Language

23 R L Turner —Nepali Dictionary 1931

24 S H Kellog —Grammar of Hindi Language 1876

25 J Beams —Comparative Grammar of Modern Aryan Languages of India

26 R N Vale —Verbal composition in Indo Aryan poona